स्वतंत्रता-संग्राम के ९० वर्ष

—**—

लेखक

श्रीकृष्णदास

—**—

संपादक

निर्मल राम मेहता

—**—

इन्डिया पब्लिशर्स, इलाहाबाद

मूल्य ४॥)

अपनी माई को

सानुरोध

निवेदन

इतिहास लिखना कठिन काम है। निकट-भूत का इतिहास लिखना और भी कठिन; क्योंकि विभिन्न धाराओं और शक्तियों का मूल्यांकन करना आसान नहीं है। फिर भी मेरे मित्र श्रीकृष्णदास ने यह महत्व पूर्ण तथा दुस्तर कार्य सफलता पूर्वक किया इसके लिये हमें प्रसन्नता है।

'स्वतंत्रता-संग्राम के ९० वर्ष' १८५७ के प्रथम महान क्रान्ति से आज तक होने वाले स्वाधीनताभिमुख जन-संघर्षों का क्रमबद्ध इतिहास है।

लेखक ने आदि से अन्त तक न्याय, सच्चाई और राजनैतिक समझ से काम लिया है। पर्याप्त अध्ययन, मनन, चिन्तन के बाद वर्णित विषय को सजाने और सँजोने में लेखक ने अपनी अध्यवसायी प्रवृत्ति का ही परिचय नहीं दिया है, बल्कि उसने आज की राजनैतिक परिस्थिति में, क़दम फूँक कर चलने वाले राजनीति के विद्यार्थियों के हाथ में एक ऐसा इतिहास दे दिया है जिसे पढ़ कर वे अतीत की ज़मीन पर खड़े हो, वर्तमान अवस्था का पूरा अध्ययन कर सकें और अपने देश की जनता के लिये कल्याणकर मार्ग चुन सकें।

इस समय जब कि केन्द्र में अस्थायी राष्ट्रीय सरकार का निर्माण हो चुका है और उससे बड़ी-बड़ी आशायें बँधने लगी हैं; साथ ही, खेतो पर काम करने वाले, और मिलों में पसीना बहाने वाले अपनी रोटी और अपने अधिकारो की माँग ज़ोरदार ढंग से कर रहे हैं, इस पुस्तक का महत्व और भी बढ़ जाता है ।

हमें .खुशी है कि हम पुस्तक को इस कठिन समय में इस रूप में निकाल सके । हमें इसका विश्वास है कि हमारे साथी इस राजनैतिक इतिहास से पूरा लाभ उठावेंगे ।

—संपादक

विषय-सूची

—:o:—

अस्थायी राष्ट्रीय सरकार के प्रमुख सदस्य
जवाहर लाल नेहरू

१

हमारा देश

[हमारा देश—धर्म और जातियाँ—भाषायें—देशी रियासतें, पूँजीवाद का आगमन—पूँजीवाद की उन्नति (सिद्धान्त)—गाँवों पर पूँजीवाद का असर—किसानों में श्रेणियाँ—अमीर किसान—मध्यम श्रेणी के किसान, ग़रीब किसान; शहरों पर पूँजीवाद का असर—साहूकारी-पूँजीवाद—औद्योगिक पूँजीवाद—मध्यम श्रेणी—मज़दूर—विद्यार्थी ।]

हमारा देश एक किसान देश है। जिस में क़रीब सात लाख गाँव हैं। सारे देश की आबादी लगभग ४० करोड़ है। सारी आबादी इन गाँवों में और थोड़े से शहरों में बँटी है। इस देश के क़रीब ८५% आदमी गाँवों में रहते हैं। बाक़ी १५% में से क़रीब १०% तो आमतौर से शहरों में रहते हैं और ५% शहर और गाँव दोनों में रहते हैं। हिन्दुस्तान के बड़े बड़े शहर जैसे कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, लाहौर, कराची और कानपूर में लाखों आदमी रहते हैं। जिनमें मिल मज़दूर से लेकर बड़े से बड़े हाकिम शामिल हैं। देहातों में किसान, ज़िमीदार, छोटे छोटे सेठ साहूकार और बनिये तथा बड़े बड़े ताल्लुक़ेदार और राजा रहते हैं। हिन्दुस्तान में क़रीब ढाई करोड़ मज़दूर रहते हैं (अमेरिका ऐसे उद्योग-

प्रधान देश में इससे आधे मज़दूर हैं!)। ये मज़दूर मिलों, फैक्टरियों तथा और दूसरी जगहों में काम करते हैं। ढाई करोड़ में से दो करोड़ ऐसे हैं जो बहुत छोटे कारख़ानों में काम करते हैं।

धर्म और जातियाँ

यहाँ धर्म और जातियाँ भी बहुत हैं। प्रधान तो हिन्दू और मुसलमान ही हैं। परन्तु सिक्खों, ईसाइयों और पारसियों की संख्या कम होते हुये भी राजनीतिक दृष्टि से उनका महत्व कम नहीं हैं। हिन्दू क़रीब ३१ करोड़ हैं। इनमें ६ करोड़ अछूत भी शामिल हैं। मुसलमानों की तायदाद क़रीब ९ करोड़ है। इनमें धार्मिक कट्टरपन है। इनमें चार प्रधान वर्ग हैं—सुन्नी, शिया, खोजा और बोहरा। इनमें से बहुतों के ऊपर हिन्दू संस्कृति का असर पड़ा है। सच तो यह है कि पिछले एक हज़ार वर्षों के सहजीवन ने दोनों में एक हद तक सांस्कृतिक एकता ला दी है। विशेष कर गाँवों में हिन्दू मुसलमान में भेद करना अक्सर मुश्किल हो जाता है। हिन्दू और मुसलमानों में मूलतया कोई झगड़ा नहीं है। परन्तु साम्प्रदायिक नेताओं ने स्वार्थ वश दोनों में मनमुटाव पैदा कर दिया है। इसका विषद वर्णन आगे आयेगा।

सिक्ख संख्या में बहुत कम हैं। इनके अन्दर एकता है और अपने 'ग्रन्थ साहब' पर अटूट विश्वास है। ईसाई और पारसी भी संख्या में बहुत कम हैं। पारसी ज़ोरोआस्टर के मानने वाले हैं और आग की पूजा करते हैं। ये अधिकतर व्यापारी होते हैं। टाटा आइरन वर्क्स इन्हीं का है।

इस देश में कई भाषायें हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यहाँ क़रीब २२२ भाषायें हैं। परन्तु इनमें से प्रधान

भाषाएँ

हिन्दी, उर्दू, बँगाली, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम्, गुरुमुखी और पश्तो हैं। हिन्दी और उर्दू को छोड़कर और सभी भाषायें प्रान्तीय हैं, लेकिन बँगाली और गुजराती बहुत ही भरी पूरी भाषायें मानी जाती हैं। हिन्दी और उर्दू को एक नाम से पुकारने के लिये हिन्दुस्तानी कहा जाता है। इस हिन्दुस्तानी भाषा को बोलने या समझने वाले इस देश में कम से कम १५ करोड़ आदमी हैं। इस बात पर किसी भी देश की कोई भी भाषा गर्व कर सकती है। हिन्दुस्तानी शब्द का प्रचार अंग्रेजों ने अधिक किया। अब देश के राष्ट्रीय विचारों वाले नेता इसका प्रचार काफ़ी कर रहे हैं। राष्ट्रीय एकता के लिये भाषा की एकता होना ज़रूरी है। इधर कुछ दिनों से हिन्दी और उर्दू का झगड़ा उठ खड़ा हुआ है। परन्तु कोई राष्ट्रीयतावादी इस झगड़े को पसन्द नहीं करेगा। हिन्दी और उर्दू बहिनें हैं। काफ़ी हद तक, दोनों का मूल श्रोत एक है, उनका विकास भी साथ साथ हुआ है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही दोनों भाषाओं का प्रयोग, करते हैं। यों तो हिन्दी का प्रचार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, आर्य समाज आदि ने अधिक किया, तथा उर्दू का प्रचार अंजुमनये तरक्क़ीये उर्दू, उस्मानिया तथा अलीगढ़ युनिवर्सिटी के विद्वानों तथा धार्मिक मौलानाओं ने किया। फिर भी, जहाँ तक जनता का सम्बन्ध है, दोनों भाषाओं के लिये उनमें प्रेम है। हिन्दी भी हमारी है, उर्दू भी। दोनों के बीच में

झगड़ा पैदा करने से साम्प्रदायिकता बढ़ती है, लाभ कुछ नहीं होता। साहित्य में, चाहे हिन्दी, उर्दू का कोई भेद कर ले, परन्तु व्यवहार में तो दोनों के मेल से ही काम चलेगा। इसी व्यवहारिक भाषा को 'हिन्दुस्तानी' कहा जाता है। हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय एकता के लिये हिन्दुस्तानी आवश्यक है।

देशी रियासतें

हिन्दुस्तान में ५६२ देशी रियासते हैं। इनमें अधिक बहुत छोटी हैं। ६९०,००० वर्ग मील इन रियासतों का क्षेत्र है। क़रीब २५% भारत के लोग इन रियासतों में रहते हैं। इन रियासतों में अब भी एक तन्त्र राज्य है। इनकी अवस्था बहुत ही गिरी हुई है। यहाँ की निरक्षरता और ग़रीबी भयानक है। ५६२ रियासतों में से केवल ४० में हाईकोर्ट हैं। केवल ३० में धारा सभायें हैं। लेकिन ये धारा सभायें केवल नाम मात्र की हैं। सारी शक्ति अब भी राजाओं, मन्त्रियों और अंग्रेज़ी रीजेन्टों के हाथ में है। प्रजातन्त्रवाद का नाम भी यहाँ नहीं है (हाँ, थोड़े दिनों से कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने प्रजा मण्डल आदि का संगठन किया है)।

सब से बड़ी देशी रियासत निज़ाम हैदराबाद है। यहाँ की आबादी क़रीब डेढ़ करोड़ है। यह रियासत ८२,६९८ वर्ग मीलों में फैली हुई है। यहाँ की सालाना आमदनी केवल कर से ९,५०,००००० रु० है। कहा जाता है कि हैदराबाद के निज़ाम संसार के सब से बड़े धनिकों में से एक हैं। यहाँ ९२% हिन्दू रहते हैं।

हिन्दुस्तान की सब से छोटी रियासत बिलवारी है, यहाँ कुल २७ आदमी रहते हैं। यह देशी रियासत १·६५ वर्ग मील में फैली हुई है (!) यहाँ का सालाना कर ८० रु० है। ये दो मिसाल केवल इस लिये लिये गये कि हम यह जान सकें कि इन रियासतों की आमदनी और आबादी में कितनी भिन्नता है।

जैसा कि हम कह चुके हैं, इन रियासती जगहों में वर्तमान शिक्षा तथा संस्कृति का कोई विशेष असर नहीं पड़ा है। ट्रैवनकोर और मैसूर को छोड़, और सभी रियासतें इतनी पिछड़ी हैं कि उनको अन्य भारत की स्थिति तक लाना एक समस्या हो जायेगी। व्यक्ति पूजा, धार्मिक अन्ध विश्वास, निरक्षरता, ग़रीबी, सभी यहाँ हैं।

इन रियासतों के शासक स्वयं अकर्मण्य और विलासी हैं। सुशासन से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। जनता की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति हो इससे इनका कोई सरोकार नहीं है। ये स्वयं विदेशी सरकार के ग़ुलाम हैं और अपनी जनता को स्वयं अपना ग़ुलाम बनाये रखना चाहते हैं। विदेशी सरकार के देशी समर्थकों में इनका स्थान प्रमुख है !

पूँजीवाद का आगमन

पिछले पृष्ठों में हमने भारतीय जनता का विश्लेषण तीन तरह से किया। धार्मिक, सामाजिक और भाषा की दृष्टि से। अगले पृष्ठों में हम आर्थिक और राजनैतिक दोनों दृष्टियों से भारतीय समाज की बनावट का अध्ययन करेंगे।

अंग्रेज़ी पूँजीवाद ने साम्राज्यवाद का रूप धारण कर भारत पर हमला किया और उस पर पूरा अधिकार जमा लिया। इससे भारत की पुरानी आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था टूट और बिखर गई। इसका असर भारत के उद्योग धन्धों पर भी पड़ा। पूँजीवादी ज़माने में शहरों का महत्व बढ़ा। विज्ञान ने प्रगति को आसान बनाया। देश की छाती पर रेल की पटरियाँ बिछ गईं और उस पर धड़धड़ाते इंजन दौड़ने लगे। मिलों और फ़ैक्टरियों ने धुँआ उगलना शुरू किया। सारे हिन्दुस्तान में हलचल मच गई। सामन्तवादी युग समाप्त हो गया।

यहाँ हम चन्द शब्दों में पूँजीवाद की उन्नति तथा उसके भारत में आगमन की कहानी कहेंगे।

पूँजीवाद की उन्नति (सिद्धान्त)

सामन्तवाद की उपयोगिता एक हद तक पहुँचकर ख़त्म हो जाती है। तब वह प्रगति के मार्ग में रोड़े अटकाता है। कुछ दिनों बाद उसके ही आन्तरिक विरोधों और असंगतियों के कारण पूँजीवाद का जन्म होता है। पूँजीवाद शुरू में क्रान्तिकारी तथा युगपरिवर्तनकारी रूप धारण करके आता है। वह प्राचीन रूढ़ियों को नष्ट कर देता है। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था को समाप्त कर देता है। प्राचीन संकीर्णता की शृङ्खलाओं को तोड़ फेंकता है। वह समाज की सारी व्यवस्था बदल देता है। वैज्ञानिक ढंग पर समाज का नवनिर्माण करता है और प्रगति में पूरी सहायता देता है। मनुष्य समाज को नई ज़िन्दगी, नई आज़ादी और नई सामाजिक व्यवस्था देता है। सारे संसार को एक सूत्र में बाँध देता है।

अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रचार करता है। परन्तु उसकी भी मूल भित्ति-शोषण ही है, इसी लिये सामन्तवाद की तरह उसकी उन्नति में भी एक स्थिति आ जाती है जब कि उसकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है। इसकी असंगतियाँ ही अन्त में इसका नाश करती हैं।

परन्तु सामन्तवाद और पूँजीवादी में एक विशेष अन्तर है। सामन्तवाद अपने अन्तिम दिनों में मरणासन्न और निष्प्राण हो जाता है। उसमें इतनी शक्ति ही नहीं रहती कि वह आत्म रक्षा के लिये स्वयं प्रयत्न कर सके। पूँजीवाद में ऐसी बात नहीं है। पूँजीवाद विज्ञान का सहारा लेकर चलता है। वह अन्त तक विज्ञान के भरोसे अपने को शक्तिशाली बनाये रखता है। विज्ञान के ही कारण धन, जन, हथियार, सभी उसके पास रहते हैं। वह अपनी आखिरी साँस तक जीवित रहने के लिये लड़ता रहता है। उसका तो अन्त तभी होता है जब उसके विरोध में संगठित जनता उठ खड़ी हो, साथ ही, स्वयं उसकी असंगतियाँ भी उसको एक मिनट भी टिकने न दें।

आज से लगभग ढाई सौ साल पहिले कुछ अंग्रेज़ व्यापारी भारतवर्ष में आये। आते ही उन्होंने प्रतियोगी फ्राँसीसी, पोरचूगीज़ आदि को हराया और भारत से व्यापार करने लगे। धीरे धीरे इन्होंने हाथ पैर फैलाना शुरू किया। पहिले तो इन्होंने कुछ जगहें स्थानीय शासकों से किराये पर लीं, फिर धीरे धीरे इन्होंने जमना शुरू किया। '(Divide et Empera) आपस में लड़ाओ और राज्य करो' की नीति का पालन करते हुये उन्होंने सारे भारत पर

धीरे धीरे अधिकार जमा लिया। सन् १८५७ ई० के ग़दर के बाद इनका पूरा अधिकार हिन्दुस्तान पर हो गया। इसी समय कम्पनी के हाथों से शासन सूत्र महारानी विक्टोरिया ने अपने हाथों में ले लिया। इतने दिनों बाद भारत का शासन सूत्र पूरी तौर से विदेशी पूँजीवादी सत्ता के हाथ में आ गया। इसका असर आर्थिक दृष्टि कोण से हमारे देश पर क्या पड़ा ?

गाँवों पर पूँजीवाद का असर

पूँजीवाद की उन्नति के साथ साथ सस्ते से सस्ता माल जनता को मिलने लगा। बाज़ार बढ़ने लगे। घर के बने सामान को छोड़कर लोग मिलों और फ़ैक्टरियों की चीज़ों को पसन्द करने लगे। ये चीज़ें उनको सस्ती और मज़बूत पड़ती थीं। पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था ने हिन्दुस्तान की आर्थिक व्यवस्था को ख़त्म कर दिया। गाँवों में बने हुये मालों के बाज़ार उजड़ने लगे। यह युग ईस्ट इन्डिया कम्पनी के ज़ुल्मों का युग था। देश में रेलगाड़ियाँ दौड़ने लगीं। तार, डाकख़ाना, इत्यादि का भी प्रबन्ध हुआ। कोयले और लोहे की खानें खुलने लगीं। शहर आबाद होने लगे और मज़दूर मिलों में काम करने लगे। ध्यान रहे कि इन सारी मिलों और उत्पादन के साधनों पर अधिकतर अंग्रेज़ी पूँजीपतियों का ही अधिकार था।

गाँव के उद्योग धन्धे जब नष्ट हो गये तो इनमें लगे हुये मज़दूर फिर खेती करने लगे और उसी से अपना पेट भरने लगे। इसके पहिले ५०% जनता ही खेती पर निर्भर रहती थी। परन्तु उद्योग धन्धों के नष्ट होने से ७१% जनता खेतों पर निर्भर रहने

लगी। इस प्रकार भूमि पर बोझ बढ़ गया। पहिले ज़मीन जोतने के लिये सस्ते में मिल जाती थी। पर जब माँग ज़्यादा हो गई तो ज़मीन का भाव भी चढ़ गया। इधर पैदावार में बढ़ती नहीं हुई। वैज्ञानिक ढंग से भूमि को अधिक उर्वरा बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया। इसका नतीजा यह हुआ कि गाँवों की दशा बिगड़ती गई। गाँवों की स्वयं पूरक (Self-sufficient) आर्थिक व्यवस्था नष्ट हो गई।

गाँवों की आर्थिक व्यवस्था, सामन्तवादी ज़माने की आर्थिक व्यवस्था थी। पूँजीवाद के आने से इस व्यवस्था के मूल पर कुठाराघात हुआ और आज गाँवों में कई प्रकार के किसान हैं।

किसानों में श्रेणियाँ:
अमीर किसान

गाँव की आबादी के १०% आदमी अमीर होते हैं। ये प्राचीन आर्थिक व्यवस्था से लिपटे रहना चाहते हैं। परन्तु जब नई व्यवस्था आ ही जाती है तो उससे यही फ़ायदा उठाते हैं। यही लोग कहीं ज़िमींदार, कहीं ताल्लुक़ेदार और नवाब कहे जाते हैं। साधन युक्त होने के कारण ये शोषण सफलता पूर्वक कर सकते हैं। इनके पीछे शोषण की एक परम्परा होती है। इस लिये इनको शोषण करने तथा संगठित किसान आन्दोलन को दबाने में आसानी होती है। इनकी सहायता सरकार भी करती है।

ये भी गाँवों की कुल आबादी के २५% होते हैं। इनके ऊपर भी पूँजीवाद का कम ही असर होता है।

मध्य श्रेणी के किसान

प्रथम श्रेणी के किसान तो अपने हाथ से काम भी नहीं करते। परन्तु ये लोग किसानों

के साथ साथ थोड़ा बहुत काम कर लेते हैं। इनके पास भी काफ़ी ज़ाती जायदाद होती है। ये लोग पूँजीवादी लोगों के साथ मिल कर सामन्तवाद का ख़ात्मा करना चाहते हैं। इसी लिये ये लोग राष्ट्रीय युद्ध में भी भाग लेते हैं। इनको अपनी ज़मीन पर नाज़ होता है। कांग्रेस का असर गाँवों में इन्हीं लोगों के द्वारा है। वहाँ के वे स्वाभाविक नेता हैं।

ग़रीब किसान

इनकी संख्या ६०% है। इनके पास ख़ुदकी ज़मीन नहीं के बराबर होती है। ये ज़मीन किराये पर लेते हैं और उसका कर देते हैं। ये लोग सारा कारबार अपने हाथों से ही करते हैं। किसानों में क्रान्तिकारी आन्दोलन इन्हीं के संगठन से बढ़ सकता है। ये लोग अधिक संख्या में कांग्रेस के निकट आते जा रहे हैं। ये सामन्तवाद के विरोधी और स्वयं प्रगतिवादी होते हैं।

ऊपर हमने देहात की जनता को तीन हिस्सों में बाँटा है। अगर हम इसी दृष्टि कोण से अपने सूबे को देखें तो हमें मालूम हो जायेगा कि किस प्रकार यह तीन श्रेणियाँ जान बूझ कर हमारे बीच में क़ायम रखी गई। ये राजे महराजे, ज़िमींदार और ताल्लुक़े-दार इसी पूँजीवादी सरकार की देन हैं। जिनका पेशा प्रगतिशील क्रान्तिकारी आन्दोलन के बीच में रोड़े अटकाना हो गया है बीच के किसान प्रगति से सहानुभूति रखते हैं। और आज की कांग्रेस के रीढ़ हैं। परन्तु आगे के आन्दोलन की असली ताक़त ६०% ग़रीब किसानों पर निर्भर होगी। वे ही क्रान्तिकारी युद्ध में अन्त तक साथ देंगे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी जब भारत में आई तो उसने यहाँ की आर्थिक व्यवस्था की बुनियादें हिला दीं। नये नये तबक़े पैदा हुये, नई नई श्रेणियाँ पैदा हुईं। पहिले तो साहूकार-पूँजीवादियों का जन्म हुआ। ये वह लोग थे जो अंग्रेज़ी माल हिन्दोस्तान में बेचा करते थे। ये लोग अंग्रेज़ी पूँजीवाद के हिन्दोस्तानी दलाल थे। इन लोगों ने अपनी पूँजी सरकारी बैंकों में जमा किया, साथ ही उसमें शेयर वग़ैरह भी लेने लगे। इन लोगों को *साहूकार-पूँजीवादी* कहा जाता है। ये विदेशी शासन सत्ता के सुदृढ़ स्तम्भों में माने जाते हैं।

पूँजीवाद का शहरों पर असर

साम्राज्यवाद कभी यह पसन्द नहीं करता कि इसके बाज़ारों में उसका कोई भी प्रतियोगी आये। इसी लिये, अंग्रेजों ने शुरू में ही फ्रांसीसी, पोर्चूगीज़ आदि प्रतियोगियों को मार भगाया। साथ ही, उन्होंने यह भी प्रयत्न किया कि इस देश में ही कोई ऐसी श्रेणी पैदा न हो जाये जो उत्पादन और शोषण में उसका मुक़ाबला करे। देशी पूँजीवाद को किसी प्रकार की सहायता देना स्वयं साम्राज्यवाद के स्वार्थों के विरुद्ध था। इसी लिये भारत के पूँजीवादी हमेशा दबाये गये। उनको औद्योगिक उन्नति के लिये शासकों की ओर से कभी भी प्रोत्साहन नहीं मिला। यहाँ तक कि पिछली लड़ाई (१९१४-१८) तक भारत ऐसे साधन-युक्त देश में औद्योगिक उन्नति न्यून ही थी।

भारतीय पूँजीवाद केवल अपने बूते पर फला फूला है, इसी लिये वह साम्राज्यवाद का विरोधी है और उससे सुविधायें

(Concessions) लेने की कोशिश करता रहता है। हमारे राष्ट्रीय-आन्दोलन को इसकी सहानुभूति प्राप्त है। *औद्योगिक-पूँजीवाद* साहूकारी-पूँजीवाद से अधिक प्रगतिशील है। वह साम्राज्यवाद विरोधी रुख़ रखता है। और बहुत हद तक साम्राज्यवाद का विरोध करता है। परन्तु वह सही मानों में क्रान्तिकारी नहीं हो सकता क्योंकि वह कई प्रकार के आर्थिक कारणों से साहूकारी-पूँजीवाद और कुछ हद तक सामन्तवाद के साथ बँधा हुआ है। जहाँ वह साम्राज्यवाद का विरोध करता है वहीं वह जन-क्रान्ति से घबराता भी है। यही उसकी साम्राज्यवाद-विरोधी (परन्तु पूर्णतया क्रान्तिकारी) नीति का कारण है। इस नीति में अवसर के अनुसार गर्मी और नर्मी आती रहती है। दबाव डाल कर सुविधायें लेने की नीति को मानने वाली इस श्रेणी का भारत की वर्तमान राजनैतिक स्थिति पर असर है। *मध्यम श्रेणी* के लोग तीन हिस्सों में बाँटें जा सकते हैं :—

(१) वे लोग जो कि अच्छे अमीर घराने के हैं। इनको अपनी बौद्धिक उन्नति करने की सारी सुविधायें मिलती हैं। आम तौर से ये लोग पूँजीपतियों और बड़े ज़िमींदारों के बेटे होते हैं। इनका रहन-सहन, इनकी विचार-धारा सभी कुछ ऐसी हैं जिससे ये हिन्दुस्तानियों के प्रति सहानुभूति रखना ज़रूरी, बात नहीं समझते। इनका रुख़ राष्ट्र विरोधी और प्रति क्रियावादी होता है। हमारे I. C. S. के लोग अपने हित के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने में और साम्राज्यवाद की नींव मज़बूत करते रहने में सब के आगे रहे हैं। हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी-शासन के ये सन्तरी हैं, और साम्राज्यवाद की रक्षा करना अपना प्रथम कर्तव्य समझते हैं।

इन्हीं लोगों के लिये पं० जवाहर लाल नेहरू ने देहरादून जेल से छूटते ही कहा था कि, "It is difficult for intelligent people to obey these thoroughly incompetent men." श्री सम्पूर्णानन्द जी ने इनको 'क़ब्र खोदने वाला' grave digger (साम्राज्यवाद का) कहा था !

जवाहर लाल जी के अनुसार ये लोग ग़ैर ज़िम्मेदार, हृदय-हीन और बिल्कुल नाक़ाबिल होते हैं। विदेशी आलोचक भी इस Steel frame-work of British bureaucracy (नौकरशाही के इस फ़ौलादी चौखटे) की तारीफ़ करते हैं !

(२) ये लोग अधिकतर बाबूगिरी करते हैं। इनकी रोज़ी तभी चल सकती है जब कि पूँजीवाद समृद्धिशाली रहे। इनको भारतीय पूँजीवाद का ही सहारा है। ये भी राष्ट्रीय आन्दोलन में शासन-विरोध की हद तक सहायता देते हैं, परन्तु सामाजिक क्रान्ति से घबराते हैं। ये पूर्णतया क्रान्तिकारी आन्दोलन के साथी नहीं हो सकते। इन्हीं लोगों में हमारे वकील, स्कूलों के मास्टर, तथा इसी प्रकार का पेशा करने वाले अन्य लोग हैं। कांग्रेस का स्थानीय नेतृत्व आज इन्हीं के हाथों में है।

(३) ये शहर के छोटे मोटे दुकानदार और अपनी हाथ की कमाई खाने वाले लोग हैं। शहरों में इनकी तीन-चौथाई आबादी होती है। ये पूँजीवादी स्वार्थों का भी भला चाहते हैं। साथ ही श्रम जीवियों के क्रान्तिकारी आन्दोलन का भी समर्थन करते हैं। परन्तु ज्यों ज्यों श्रम जीवियों की लड़ाई उग्र, गंभीर और मज़बूत होती जाती है त्यों त्यों ये उसके हामी होते जाते हैं। साथ ही दिनों दिन ये

साम्यवादी ढंगों को अपनाने लगते हैं। क्रान्तिकारी मज़दूरों के ये साथी हैं।

मज़दूर

इनके पास अपनी कुछ जायदाद नहीं होती। स्थिर स्वार्थ इनके नहीं होते। किसानों के पास ज़मीनें होती हैं। उनको छोड़ना वह पसन्द नहीं करते। परन्तु मज़दूरों के पास खोने के लिये ग़रीबी के सिवाय और कुछ नहीं है। इस श्रेणी को पूँजीवाद पैदा करता है। उत्पादन के तरीक़े स्वयं इनमें एकता पैदा कर देते हैं और इनको संगठित वना देते हैं। प्रत्यक्षरूप से, एक साथ ही, मिलों और फैक्टरियों में इनका शोषण होता है। इसी लिये इनका क्रान्तिकारी संगठन आसान होता है। चूँकि मिलों और फैक्टरियों में पूँजीवाद को बनाये रखने के साधन तैय्यार किये जाते हैं इस लिये यहीं के क्रान्तिकारी मज़दूर सीधे सीधे पूँजीवाद से लोहा भी ले सकते हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन में इनका प्रगतिशील और मज़बूत सहयोग रहता है। राष्ट्रीय युद्ध को समाजवादी-सामाजिक-युद्ध में परिणत करने की क्षमता इन्हीं में है। ग़रीब तबक़े के किसानों के सहयोग से ये समाजवादी समाज की नींव डालने में सफल हो सकते हैं, (रूस में ऐसा ही हुआ है)। ज्यों ज्यों इनका संगठन बढ़ता जाता है राष्ट्रीय आन्दोलन की गति में तीव्रता और सार्वजनिकता आती जाती है।

हिन्दुस्तान में मज़दूरों की संख्या काफ़ी है। धीरे धीरे उनका संगठन भी हो चला है। पहिले जब कि कांग्रेस और इनका सहयोग नहीं हुआ था; मज़दूर सभायें अपना अलग से काम किया

करती थीं। परन्तु ज्यों ज्यों जागृति बढ़ती जा रही है और मज़दूरों में सजगता आती जा रही है और कांग्रेस जनवर्ग के निकट पहुँचती जा रही है त्यों त्यों इन दोनों का सम्बन्ध निकट और घनिष्ट होता जा रहा हैं।

विद्यार्थी

यहाँ, इस अध्याय में केवल एक और समुदाय का ज़िक्र कर देना है। इस समुदाय का संगठन शुरू हो गया है। अखिल भारतीय विद्यार्थी संघ हिन्दुस्तान के विद्यार्थियों की प्रतिनिधि संस्था है। अधिकतर विद्यार्थी उन ग़रीब घरानों के होते हैं जो राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ सहानुभूति रखते हैं। इस समुदाय का श्रेणी-आधार पर संगठन नहीं हो सकता, इसका कारण यह है कि इनका पेशा तो विद्यार्थी जीवन के बाद ही निश्चित होता है। फिर भी आमतौर से ग़रीब, शोषित, जोशीले और नौजवान होने के कारण ये राष्ट्र के काम आते हैं। चीन इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है। पहिले हमारे देश में असंगठित रूप से विद्यार्थी आन्दोलन चलता था। जब से इस समुदाय का संगठन हुआ तभी से इस संस्था ने सक्रिय रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन का साथ देना शुरू कर दिया।

२

ग़दर के बाद

[ग़दर—बृटिश शासन के तीन सिद्धान्त—साम्प्रदायिक मनमुटाव बढ़ाना—देश की आत्मा की हत्या—स्वतन्त्रता का अपहरण—साम्प्रदायिक पुनरोज्जीवन—हिन्दू पुनरोज्जीवन—मुस्लिम पुनरोज्जीवन—दार्शनिक राष्ट्रीयतावाद—कांग्रेस का जन्म, पृष्ठभूमि—नागरिक अधिकारों का अपहरण—किसानों की दुर्दशा—ह्यूम महाशय के प्रयत्न—बम्बई की कांग्रेस—कांग्रेस की उन्नति पर सरसरी नज़र।]

सन् १८५७ में हिन्दुस्तान में एक बग़ावत हुई। इसको समझने के लिये हमें कम्पनी के शासनकाल को ध्यान में रखना चाहिये। कम्पनी ने आते ही यहाँ के उद्योग धन्धों को नष्ट कर दिया। गाँव की आर्थिक व्यवस्था नष्ट कर दी। करोड़ों आदमियों को बेकार कर दिया। भूमि के ऊपर बोझ बढ़ गया, किसान तबाह होने लगे। देशी रियासतें एक एक करके हरा दी गईं। और, धीरे धीरे कम्पनी तथा सरकारी हाथों में देश के शासन की बागडोर चली गई। मुग़ल साम्राज्य का प्रदीप बुझ गया, साथ ही अन्य रियासतों का महत्व भी घट गया। सारा देश ग़ुलाम हो गया। इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिये म्रियमाण सामन्तवाद ने आख़िरी कोशिश की। पूँजीवाद शक्तिशाली साबित हुआ, सामन्तवाद की हार हुई।

अंग्रेज़ी लेखक इस युद्ध को बग़ावत कहते हैं परन्तु यह ग़लत है। यह कुछ सिरफिरे देशी नरेशों की छिट फुट बग़ावत नहीं थी, बल्कि सामन्तवाद की अन्तिम और संगठित कोशिश थी अपने को जीवित रखने के लिये। इस युद्ध में भारतीय सामन्तवाद को धार्मिक जनता से भी सहायता मिली थी। हज़ारों सिपाही इस युद्ध में काम आये थे।

ग़दर को जिस प्रकार से दबाया गया इसका हृदयस्पर्शी वर्णन 'भारत में अंग्रेज़ी राज' नामी पुस्तक में है। यहाँ हम इसका ज़िक्र नहीं कर सकते।

जब यह बग़ावत दबा दी गई तो नये ढंग से शासन प्रणाली में परिवर्तन किया गया। सारा देश सीधे सीधे बृटिश सरकार के अधिकार में कर लिया गया। कम्पनी ख़त्म हो गई। महारानी विक्टोरिया भारतवर्ष की साम्राज्ञी बनाई गई। अब सारा हिन्दुस्तान पूरी तौर से अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद की आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के नीचे आ गया।

बृटिश शासन के तीन सिद्धान्त

ग़दर से निश्चिन्त हो जाने के बाद, शासन सम्बन्धी प्रबन्धों की तरफ़ हमारे शासकों का ध्यान गया। तीन सिद्धान्तों पर इनके शासन की नींव पड़ी।

(१) इस देश के दो प्रधान सम्प्रदायों को लड़ाते रहना। सन् १८५७ से सन् १९०६ तक इसी नीति को बर्ता गया। बाद में कर्ज़न के ज़माने में इसमें परिवर्तन हो चला था। हिन्दुओं को हर प्रकार से बढ़ावा दिया गया। उनको नौकरियाँ अधिक दी गईं। फ़ौजों में तथा और दूसरे सरकारी स्थानों में इनको ही जगहें

मिलीं। शायद ग़दर में हिन्दुओं का साथ देने के कारण ही मुसलमानों को यह सज़ा जी गई। परन्तु जब हिन्दुओं में राजनीतिक चेतना अधिक हो गई तो सरकार उससे नाराज़ हो गई और उसने मुसलमानों को बढ़ावा देना शुरू किया। आज तक सरकार अपनी इसी नीति पर डटी है। इसका कुफल यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानों में मनमुटाव बढ़ गया। सरकार की इसी दुर्नीति के कारण आज साम्प्रदायिक समस्या इतना विकट रूप धारण कर हमारी तरफ़ घूर रही है।

(२) भारतीय आत्मा की हत्या। इस विषय में पहला काम शासकों ने यह किया कि सेना को साम्प्रदायिक तथा पंगु बना दिया। सेना का शासन सूत्र और उसका संगठन अंग्रेज़ों के ही हाथों में रहा। उन्होंने हिन्दुस्तानी पल्टनों पर विश्वास करना छोड़ दिया। आपस में ईर्ष्या और मनमुटाव बढ़ाने के लिये पल्टनों का साम्प्रदायिक नाम करण किया, जैसे राजपूत रेजीमेन्ट, सिक्ख पल्टन, गुर्खा पल्टन, पठान पल्टन आदि। केवल मामूली शस्त्रों का प्रयोग इनको सिखाया गया। इनकी तनख़ाहें कम कर दी गईं और इनको हर तरह से गोरी पल्टन के सामने ज़लील करने की कोशिश की गई। पिछले ९० सालों से जो ख़र्चा इन फ़ौजों के ऊपर हो रहा है, उसको अध्ययन करने से ज़ाहिर हो जाता है कि कितना पक्षपात पूर्ण व्यर्वहार हमारे शासकों ने फ़ौजी मामलों में किया है। इस प्रकार एक पंगु सेना बना कर इस लिये तैयार की गई कि वह अगले आने वाले बग़ावतों का गोरी पल्टन के नेतृत्व में दमन करे।

(३) स्वतन्त्रता का अपहरण । जनता को भी अच्छी तरह से दबाया गया। ग़दर में भाग लेने वाले ख़ान्दानों की हस्ती मिटा दी गई, गोरों को शरण देने वालों को भरपूर इनाम मिला। आज के सैकड़ों ताल्लुक़ेदार और ज़मींदार उसी देशद्रोह के चिन्ह स्वरूप हमारे छाती पर दाल दल रहे हैं। आर्म्स ऐक्ट के अनुसार हथियारों का रखना ग़ैर क़ानूनी हो गया। जनता निरस्त्र हो गई। उसके पास आत्म रक्षा के लिये भी हथियार नहीं रह गये। उन दिनों थोड़े से प्रेस भी थे। इनके ऊपर भी नाना प्रकार के रोक लगा दिये गये, जिससे जनता अपने विचारों का भी प्रचार न कर सके। किसी को नौकरी, किसी को रियासत देकर शान्त कर लिया गया। धीरे धीरे बृटिश शासन सत्ता की पुनः स्थापना हो गई, पहले से अधिक भयानक और सुदृढ़ रूप में।

राजनीतिक स्वतन्त्रता का अपहरण हो जाने के बाद और ग़दर के फलस्वरूप काफ़ी सज़ा पाने के बाद देश की निगाह सामाजिक सुधारों की तरफ़ गई। हालाँकि, इसके बहुत पहिले ही राजाराम मोहन राय और केशवचन्द्रसेन के नेतृत्व में इस प्रकार के आन्दोलन चल चुके थे, परन्तु ग़दर के बाद इसने एक संगठित और अखिल भारतीय रूप लिया।

इस साम्प्रदायिक पुनरोज्जीवन की दो शाखायें हुईं। एक हिन्दू और दूसरी मुस्लिम।

हिन्दू शासित होने के कारण मुसलमानी ज़माने में काफ़ी विशृङ्खल हो गये थे। गोस्वामी तुलसीदास आदि ने इसी असंगठित हिन्दू जनता को एकता का मन्त्र दिया था। परन्तु

धीरे धीरे कम्पनी के ज़माने में फिर हिन्दू जनता सो गई और उसको जगाने के लिये ब्रह्मसमाज आदि को जन्म लेना पड़ा। आगे चल कर जब साम्प्रदायिकता ने ज़ोर पकड़ा और विदेशी शासन ने अपने करिश्मे दिखाने शुरू किये तब ऋषि दयानन्द सरस्वती ने जन्म लेकर वेदों के मन्त्रों से भारत वसुन्धरा को अभिमन्त्रित करना शुरू किया। दयानन्द जी में हिन्दू पुनरोज्जीवन का पुष्प प्रस्फुटित हुआ। धार्मिक और सामाजिक एकता के लिये हिन्दू जनता को संगठित करने का प्रयत्न शुरू हुआ। छूत अछूत के भेद भाव को मिटाने का भी प्रयत्न हुआ। प्राचीन गुरुकुलों, धार्मिक प्रवचनों और सामाजिक जीवन की ओर हिन्दू जनता का ध्यान खींचा गया। हिन्दू घरानों में फिर से वेद मन्त्रों का प्रचार, हवन, संध्या आदि संगठित रूप से प्रारम्भ हुआ। इसके साथ ही संस्कृत और हिन्दी का प्रचार भी बढ़ा। हिन्दी हिन्दुओं की भाषा थी। उसको पढ़ना, उसी को इस्तेमाल करना, कर्तव्य माना गया। शुद्धि और संगठन का काम ज़ोरों पर होने लगा। साम्प्रदायिक दृष्टि से, हिन्दू जनता में एक नई जान आ गई। साथ ही, विदेशी सरकार का भी विरोध धीरे धीरे होने लगा। ऋषि दयानन्द के भाषणों में विदेशियों का विरोध करने, अपने देश को स्वतन्त्र करने, देशी चीज़ों का इस्तेमाल करने आदि का ज़िक्र मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दुओं में इस 'पुनरोज्जीवन' की नई जान फूँकने का श्रेय ऋषि दयानन्द को है। पंडित मदन मोहन मालवीय

हिन्दू पुनरोज्जीवन

ने सनातन धर्म, हिन्दू सभा आदि की स्थापना की। आज का काशी विश्व-विद्यालय इसी अर्ध-राजनीतिक, अर्ध-साम्प्रदायिक हिन्दू पुनरोज्जीवन को प्रतीक स्वरूप हमारे सामने है।

मुस्लिम पुनरोज्जीवन

ग़दर के बाद काफ़ी दिनों तक मुसलमानों के साथ बहुत अन्याय होता रहा। उनको हर प्रकार से दबाये रखने की कोशिश की गई। इस लिसे मुस्लिम समाज ने अपनी आत्म-रक्षा का उपाय सोचा। सर सैय्यद अहमद ख़ाँ ने, जो कि एक तीक्ष्ण बुद्धि वाले मुसलमान नेता थे, सोचा कि अगर मुसलमान दबे रहे और असंगठित रूप में ही उनको छोड़ दिया गया तो उनका सर्वनाश हो जायगा। उन्होंने सरकार का विरोध करना सम्भाव्य नहीं समझा। इस लिये नीति और प्रार्थनाओं के बल पर मुसलमानों को अधिकार दिलवाने का प्रयत्न वह करते रहे। मुसलमानों का एक दल ऐसा भी था जो प्रगतिशीलता नापसन्द करता था, उसको अंग्रेज़ी सभ्यता, रहन सहन, शिक्षा-दीक्षा, सब से नफ़रत थी। इस दल ने कभी मुसलमानों को अंग्रेज़ी शिक्षा दिलाना पसन्द नहीं किया। यह दल प्रभावशाली था, इस लिये सर सैय्यद को अपने प्रयत्नों में पूरी कामयाबी नहीं हुई। फिर भी वे काम करते रहे। आज की अलीगढ़ युनिवर्सिटी सर सैय्यद के ही परिश्रम का फल है।

जब आर्य समाज ने शुद्धि संगठन करना शुरू किया तो मुसलमानों के साम्प्रदायिक नेता मण्डली में खलबली मची। उसकी प्रतिक्रिया भी हुई। मुसलमानों को भी संगठित किया

जाने लगा। उनके भी सालाना जलसे होने लगे और धीरे धीरे मुसलमान जनता साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से संगठित होने लगी। दोनों में कशमकश बढ़ा। हिन्दू पुनरोज्जीवन ने मुसलमान विरोधी रूप धारण किया और मुसलमान पुनरोज्जीवन ने हिन्दू विरोधी रूप धारण किया। सरकार ने इस अवसर से खूब फ़ायदा उठाया। उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम विभेद ही सरकारी नीति की भित्ति बन गई।

इसका ज़रूरी नतीजा यह हुआ कि हिन्दू और मुसलमानों में स्थायी मनमुटाव हो गया। सन् ५७ को खून से सींची हुई एकता टूट गई। सन् १९०६ ई० में मुस्लिम हितों की रक्षा के लिये और मुस्लिम समाज के संगठन के लिये अखिल भारतवर्षीय मुस्लिम लीग का जन्म हुआ। इसके जन्म दाताओं में आगा खाँ महाशय भी थे, जो उन दिनों मुसलमानों के रहनुमा और वाईसराय लार्ड मिण्टो के विश्वास पात्र थे। सन १९०८ ई० में अखिल भारत-वर्षीय हिन्दू महासभा का भी जन्म हुआ। इसके जन्मदाताओं में पं० मदन मोहन मालवीय का नाम हिन्दू समाज में श्रद्धा के साथ लिया जाता है।

इस साम्प्रदायिक पुनरोज्जीवन का वही नतीजा हुआ जो होना था। साम्प्रदायिकता का विष राष्ट्रीयता की भावनाओं को नष्ट करने लगा। सदियों की अर्जित राष्ट्रीय एकता घोर साम्प्रदा-यिकता की बलिवेदी पर चढ़ा दी गई।

इसी पुनरोज्जीवन की एक तीसरी धारा भी निकली। इसके गुरु साहित्य की दृष्टि से स्वर्गीय श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी माने जा सकते हैं। 'आनन्दमठ' पुस्तक में हमें इसका थोड़ा निखरा हुआ

रूप मिलता है। 'आनन्दमठ' की एक ज़माने में बड़ी प्रतिष्ठा थी। इसको भारतीय विप्लववाद की बाईबिल या गीता मानते थे। धीरे धीरे इस धारा ने उग्र रूप धारण किया। ह्यूम साहब को जब इस गुप्त परन्तु संगठित दल का पता चला तो वे घबराये और उन्होंने इसकी चर्चा उस समय के वाईसराय से की। इसी बात को ध्यान में रख कर उन्होंने एक ऐसी संस्था को जन्म देना चाहा जो वैधानिक रूप से सरकार की ग़लतियों को समझावे। इसी प्रकार कांग्रेस का जन्म हुआ। हाँ, तो वह गुप्त संगठन बढ़ता गया। स्वतन्त्रता की भावना से ओत-प्रोत इस दल ने अपना हाँथ पैर फैलाना शुरू किया। लोकमान्य तिलक ने उग्र रूप से सरकार का विरोध किया। इससे इस दल को भी उत्साह मिला। 'गणेश पूजा' आदि की बातें तो अब इतिहास की चीज़ें हैं, परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दुओं का वह दल जो अब भी प्राचीन हिन्दू समृद्धि का सपना देखता था, संगठन करता ही गया। इनका संगठन गुप्त था और ये लोग शस्त्र के प्रयोग में विश्वास करते थे। कहा जाता है कि श्री अरविन्द घोष इन लोगों के आध्यात्मिक नेता थे।

दार्शनिक राष्ट्रीयतावाद

उस समय बंगाल में गुप्त पार्टियाँ दो थीं। 'युगान्तर' और 'अनुशीलन'। गीता का अध्ययन, काली की पूजा और गुप्त षडयन्त्र, इनका काम था। इस कार्य में कितने ही होनहार नवयुवक काम आये। बंग-भंग के ज़माने में इस आन्दोलन ने एक भीषण रूप धारण

गुप्त पार्टियाँ

किया। कितने ही नौजवान फाँसी के तख़्तों पर झूल गये, उनके हाथ में गीता या भारत माता की प्रतिमा मरते समय तक रहती थी।

थोड़े से विश्लेषण से ही हमें पता चल जायेगा कि यह आन्दोलन शुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं था। अंग्रेज़ों की नीति कुछ बदल चली थी। इधर इनकी दयादृष्टि मुसलमानों की ओर हो चली थी। बाहर के देशों में भी गुप्त षड्यन्त्रों का बोलबाला था, मेज़िनी, गैरी बाल्डी, क्रोपाटकिन आदि अपने यहाँ के नौजवानों को राष्ट्रीयता की शिक्षा दे रहे थे। हिन्दुस्तान में सन् ५७ के ग़दर को लोग भूले नहीं थे। आज़ादी की चिनगारी धीरे धीरे सुलग रही थी। लार्ड कर्ज़न ने अपने कारनामों से सूखे घावों को हरा कर दिया। महाराष्ट्र, बंगाल और कुछ हद तक यू० पी० और बिहार में इसी की प्रतिक्रिया के रूप में गुप्त संगठनों का प्रारम्भ हुआ। इन लोगों के सामने भविष्य के भारत का कोई स्पष्ट नक़शा नहीं था। इनके सिद्धान्त भी वैज्ञानिक ढंग से परिमार्जित नहीं हुये थे। ये लोग दार्शनिक-राजनीतिक-क्रान्तिकारी थे। इनकी राजनीति में आध्यात्मिकता का पुट था। उस समय के काग़ज़ात देखने से हमें इस बात के काफ़ी प्रमाण मिलते हैं। इनका ढंग आगे चल कर विप्लववादियों ने अपनाया, परन्तु उनका दृष्टिकोण अधिक वैज्ञानिक और राजनीतिक था।

हिन्दू पुनरोज्जीवन के इस अर्ध-राष्ट्रीय गुप्त आन्दोलन का अध्ययन बड़ा ही मनोरंजक और उत्साहवर्धक है।

काँग्रेस का इतिहास भारतीय राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संग्राम का इतिहास है। काँग्रेस के जन्म का पूरा महत्व समझने के लिये हमें

उसकी पृष्ठ-भूमि का अध्ययन करना पड़ेगा। हमने यह देखा है कि ग़दर के सैकड़ों साल पहिले से ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी, हिन्दुस्तान पर, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार बढ़ाती आ रही थी।

काँग्रेस का जन्म

ग़दर के बाद सारा भारत पूर्णरूप से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के नीचे आया। इसके पहिले भी पार्लियामेन्ट ने जब जब कम्पनी को नया चार्टर दिया, उसको शोषण करने के लिये अधिक से अधिक अधिकार भी मिलते गये। साथ ही पार्लियामेन्ट ने अपना सीधा सम्बन्ध भारतवर्ष से रखने का प्रयत्न जारी रखा। कुछ सुधार भी हुये। सती प्रथा को बन्द किया गया। ठगों की लूटमार को रोका गया आदि, आदि। परन्तु ये सुधार तो केवल इसलिये थे कि शासन करने में आसानी हो।

अधिकारों का अपहरण

उन दिनों प्रेस बहुत कम थे। जो थे भी वह अंग्रेजों के हाँथ में थे। इन प्रेसों पर अधिक सख़्ती नहीं थी क्योंकि सरकार को इनसे कोई ख़तरा नहीं था। लेकिन ज्यों ज्यों प्रेसों की संख्या बढ़ती गई और सरकार की आलोचना होने लगी त्यों त्यों सरकार का भी रुख़ कड़ा पड़ने लगा। लार्ड लिटन के ज़माने में प्रेसों की सारी आज़ादी Gagging Act द्वारा छीन ली गई। मेटकाफ़ के ज़माने से प्रेसों को जो थोड़ी बहुत आज़ादी मिलती चली आई थी अब ख़त्म हो गई। इसी ज़माने में हथियार ग़ैरक़ानूनी क़रार दिये गये और उनका रखना जुर्म हो गया। हिन्दुस्तानियों और योरोपियन लोगों में भेद किया गया और

हर मामले में हिन्दुस्तानियों को नीचा देखना पड़ता था। उसी ज़माने में अकाल पड़ा। लाखों आदमी खाने के वग़ैर मर गये। विशेषज्ञों का कहना है कि लोग इसलिये नहीं मर गये कि खाने के सामान की कमी थी बल्कि इसलिये कि अत्यधिक शोषण के कारण उनकी क्रय शक्ति ख़त्म हो गई थी। सरकार ने इस समय कोई भी मदद इन लोगों की नहीं की। एक तरफ़ तो देश की दुर्दशा हो रही थी और लाखों आदमी भूखों मर गये दूसरी तरफ़ दिल्ली दरबार का आयोजन हुआ। करोड़ों रुपया फूँक दिया गया और रानी विक्टोरिया भारत की साम्राज्ञी बनाई गईं।

किसानों की दुर्दशा

इस ओर किसानों की हालत बिगड़ती ही जा रही थी। कचहरियों में ख़र्चा बहुत होता था, न्याय महँगा हो गया। पुलिस की नृशंसता बढ़ती जा रही थी। लगान के कारण किसानों की रीढ़ टूटी जा रही थी। मुहकमा जंगलात के क़ानूनों ने जानवरों का जीना असम्भव कर दिया। किसान पूरी तरह तबाह हो गये। हथियार उनसे छीन लिये गये और जंगली जानवरों से भी अपनी रक्षा करना उनके लिये कठिन हो गया। जनता क्षुब्ध हो उठी, बग़ावत के सिवाय उसके पास और कोई रास्ता नहीं रह गया। देश में प्रतिहिंसा की भावनायें फिर के जागृत होने लगीं। लिटन के शासन काल में यह दशा हो गई कि किसी भी दिन देश में बग़ावत हो सकती थी।

इसी ज़माने का ज़िक्र करते हुये सर विलियम वेडरबर्न ने लिखा है :—"नौकरशाही ने नई सुविधायें ही देना अस्वीकार नहीं

किया, बल्कि मौक़ा पाने पर सदियों की मिली हुई आज़ादी को फिर से छीनना शुरू किया। सभायें करना, प्रेस की आज़ादी, म्युनिस्पल स्वशासन के अधिकार, विश्वविद्यालयों की आज़ादी, सभी पर रोक लगाई गई और जनता की आज़ादी का अपहरण किया जाने लगा। इस प्रतिक्रियावादी रुख़ ने पुलिस की सहायता से एक ऐसी परिस्थिति लादी जिससे क्रान्ति हो जाना असम्भव नहीं था।"

ह्यूम महाशय के प्रयत्न

इतना ही नहीं, ह्यूम महाशय को ऐसे काग़ज़ात भी मिल गये थे जिनके सहारे हिन्दुस्तान की क्षुब्ध अवस्था का उन्हें पता लग गया था। कितने ही शहरों, ज़िलों और तहसीलों तक में इन गुप्त दलों का संगठन हो गया था। ऐसा मालूम पड़ता था कि कुछ ही दिनों में सारे देश में एक संगठित ग़दर होने वाला है। इन काग़ज़ात में 'व्यक्तियों की हत्या,' सरकारी बैंकों का लूटना, 'बाज़ारों में उथल पुथल मचाना' आदि सब प्रोग्राम थे। मालूम नहीं यह क्षुब्धता संगठित क्रान्ति का रूप ले सकती अथवा नहीं, परन्तु यह तो निश्चय ही था कि सारे देश में एक भयानक उथल पुथल मच जाती। उस अवस्था में 'राष्ट्रीय बग़ावत' कोई असम्भव चीज़ नहीं थी।

ह्यूम महाशय इस स्थिति को अच्छी तरह समझते थे। इनको इस बात की चिन्ता थी कि सन् ५७ की तरह फिर हिन्दुस्तान में कहीं ग़दर न हो जाय। शान्ति प्रिय होने के नाते वे ख़ून-ख़च्चर से घबराते थे। इसी समय नये वाईसराय लार्ड रिपन आये।

रिपन महाशय लिटन की तरह प्रतिक्रियावादी नहीं थे। उन्होंने देशी अखबारों पर से रोक हटा ली। कई तरह के नये सुधार किये और स्वशासन-विभाग सम्बन्धी नये क़ानून बनाये। हमें यह याद रखना चाहिये कि इस समय (१८७५ ई०) हिन्दुस्तान में लगभग ४७५ पत्र पत्रिकायें निकलतीं थी। जन साधारण की आवाज़ को आसानी से अनसुनी नहीं किया जा सकता था।

बम्बई की काँग्रेस

इसी पृष्ठ-भूमि पर काँग्रेस का विचार ह्यूम महाशय के दिमाग़ में उठा। यह कहना बिल्कुल ठीक नहीं है कि ह्यूम महाशय ही पहिले व्यक्ति थे जिनके दिमाग़ में एक अखिल भारतीय सार्वजनिक संस्था क़ायम करने का ख़याल आया हो। इसके पहिले ही सन १८७७-७८ ई० में श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने भारत के कुछ हिस्सों का भ्रमण किया था, और एक सार्वजनिक संस्था क़ायम करने की कोशिश की थी। ह्यूम महाशय जब वाईसराय लार्ड डफ़रिन के पास इस प्रस्ताव को लेकर गये उस समय उनके दिल में इस संस्था को पूर्णतया राजनीतिक रूप देने का विचार नहीं था, परन्तु वाईसराय महोदय के कहने से उन्होंने अपने विचारों में परिवर्तन और परिवर्धन किये। यह भी निश्चय हुआ कि बंगाल, मद्रास, बम्बई, यू० पी० आदि के प्रसिद्ध राजनीतिक नेताओं को आमन्त्रित करके, पूना में, १८८५ ई० के बड़े दिन की छुट्टियों में, एक कान्फ्रेंस की जाय और वहीं एक संगठित संस्था को जन्म दिया जाय। कुछ कारणों से कान्फ्रेंस पूना में न होकर बम्बई में हुई। इसी संस्था का

नाम काँग्रेस पड़ा। इसके पहिले सदर, बंगाल के प्रसिद्ध नेता श्री उमेशचन्द्र बनर्जी थे। इसमें बंगाल, मद्रास, बम्बई, सी० पी०, यू० पी आदि लगभग सभी सूबों के प्रतिनिधि शामिल थे। इनकी संख्या लगभग ७० थी।

काँग्रेस राष्ट्रीय पुनरोज्जीवन की प्रतीक बनकर आई। आरम्भ में इसका रूप बिल्कुल 'सरकार का विरोधी दल' का था, जिसका काम था सरकार की ग़लतियाँ बताना और उसको सचेत करते रहना।

काँग्रेस की उन्नति

इस प्रकार हमने देखा कि बम्बई में, ह्यूम महाशय के अथक प्रयत्नों के कारण, उस समय के वाईसराय का आशीर्वाद मिलने के बाद, काँग्रेस का जन्म हुआ। आरम्भ में काँग्रेस एक छोटी सी राजनीतिक संस्था थी। जैसे एक छोटा पौधा अच्छी खाद पाकर काफ़ी बड़ा पेड़ हो जाता है, उसी प्रकार हमारी काँग्रेस भी, एक छोटी सी सुधारवादी राजनीतिक संस्था से बढ़कर आज देश की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण राष्ट्रीय संस्था बन गई है और अब वह सारे देश का प्रतिनिधित्व करने का सही दावा करती है।

काँग्रेस पिछले ५५ सालों में बहुत बदल गई है। ज्यों ज्यों देश के अन्दर राष्ट्रीय चेतना बढ़ती गई त्यों त्यों काँग्रेस भी शक्तिशाली होती गई। वह दिनों दिन अधिक प्रगतिशील भी होती गई। पहिले तो उसे सरकार का आशीर्वाद प्राप्त था, परन्तु धीरे धीरे सरकार का रुख़ बदलने लगा और १० ही बरस के अन्दर सरकार उससे बिल्कुल नाराज़ हो गई। लाला जी, विपिन चन्द्र पाल और

लोकमान्य तिलक के प्रवेश ने काँग्रेस को उग्र रूप प्रदान किया। वंग-भंग आन्दोलन भारत के राष्ट्रीय इतिहास में अपना महत्व पूर्ण स्थान रखता है। इसके बाद सन् १९०७ ई० के बाद से काँग्रेस नर्म दल वालों के हाथों में चली गई। गोखले आदि नर्म विचार वालों का काँग्रेस में बोल-बाला हो गया। युद्ध के ज़माने में काँग्रेस ने कोई विशेष उग्रता नहीं दिखाई। श्रीमती एनीबेसेन्ट ने इसी समय 'होम-रूल लीग' को स्थापित किया।

इस युग के बाद 'गाँधी युग' आरम्भ होता है। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद हिन्दुस्तान के राजनीतिक क्षेत्र में गाँधी जी का स्थान धीरे धीरे सुदृढ़ हो चला था। उनका विचार सरकार से लोहा लेने का था, क्योंकि सरकार ने महासमर समाप्त होने के बाद अपने वादों को पूरा नहीं किया। जलियान वाले बाग़ के मामले ने भारत में एक हल चल मचा दी। सारा देश क्षुब्ध हो उठा। युद्ध के बाद उद्योग धन्धों को धक्का लगा। बेकारी बढ़ गई। किसान और मज़दूर परीशान हो गये। इसी समय महात्मा गाँधी ने जन आन्दोलन का नारा दिया। भारतीय राष्ट्रीय इतिहास में प्रथम बार इस प्रकार किसी नेता ने देश की सारी जनता को आन्दोलन छेड़ने के लिये आमन्त्रित नहीं किया था। महात्मा गाँधी हिन्दुस्तान में प्रथम बार क्रान्तिकारी जन-नायक के रूप में राष्ट्रीय क्षेत्र में आये।

इस आन्दोलन के बाद सन् १९३०-३२ का आन्दोलन चला। इस आन्दोलन का रूप ही दूसरा था। सन् १९२० के आन्दोलन से इस आन्दोलन में काफ़ी भिन्नता थी। इस आन्दोलन के फल

स्वरूप एक समाजवादी धारा भी प्रवाहित हुई। काँग्रेस समाज-वादी दल का संगठन इसी ज़माने में हुआ। कम्युनिस्ट पार्टी ने भी अपने रुख़ को बदला और दोनों के परिश्रम से समाजवादी विचार धारा का पूरा प्रचार सारे देश में हुआ।

उधर असेम्बली के चुनाव में काँग्रेस सफल हुई। सन् १९३७ के चुनाव में भी काँग्रेस शामिल हुई और इस विजय को देखकर स्वयं काँग्रेस वाले अचम्भे में आ गये। इसके बाद सूबे में काँग्रेसी सरकारें बनी, दो साल बाद इनको स्तीफ़ा देना पड़ा और फिर व्यक्तिगत-सत्याग्रह का आन्दोलन चला। इसके बाद १९४२ की घटना हुई। अगले अध्यायों में हम विषद रूप से आज तक के राष्ट्रीय आन्दोलन के भिन्न भिन्न युगों का अध्ययन करेंगे।

—:❀:—

३

काँग्रेस का विकास

राष्ट्रीय आन्दोलन के अंकुर—मनमुटाव—लार्ड कर्ज़न—बंग भंग और उसका महत्व—स्वदेशी आन्दोलन—हिंसात्मक प्रतिक्रिया—श्री खुदीराम बोस—तिलक जी—काले क़ानून—कुछ सुधार—नर्म दल की काँग्रेस—हिन्दू-मुस्लिम एकता—होम रूल—चम्पारन—खेड़ा—अहमदाबाद के मज़दूर—जनता के गाँधी जी।

राष्ट्रीय आन्दोलन के अंकुर

भारत में, अंग्रेजी शासन का इतिहास प्रतिक्रिया और सुधार की एक अविरल गाथा है। "प्रतिक्रिया हमेशा सुधार के पहिले हुई है—" डा० पट्टाभि सीतारामैय्या (काँग्रेस का इतिहास)।

अगले पृष्टों में हम यह देखेंगे कि यह कथन कितना सत्य है। लार्ड डफरिन ने आरम्भ में काँग्रेस को आशीर्वाद दिया था। लेकिन ज्यों ज्यों काँग्रेस बढ़ती गई वह सरकारी सहानुभूति खोती गई। आगे चल कर सर आकलैण्ड कालविन (गवर्नर-यू० पी०) ने यह सलाह दी कि, "काँग्रेस को राजनैतिक झमेलों में नहीं पड़ना चाहिये, वल्कि उसे समाज सुधार की ओर ध्यान देना चाहिये।"

काँग्रेस की बढ़ती को आकलैण्ड ख़तरनाक समझते थे। उन्होंने यह भी कहा कि काँग्रेस का यह दावा कि वह सारे देश का प्रतिनिधित्व करती है सही नहीं है। वह समझते थे कि सरकार

के ख़ैरख़्वाह लोगों और राष्ट्रीय नेताओं में घृणा पैदा होगी। इसका जवाब ह्यूम महाशय ने यों दिया था, "यह घृणा तो पहिले से ही मौजूद है, इसको कम करना और ख़त्म करना यही तो हमारा काम है। काँग्रेस आन्दोलन का विरोध तो केवल ऐंग्लो-इन्डियन, असंस्कृत लोग और अवसरवादी ही कर सकते हैं।" उसी समय यह भी कहा गया कि मुसलमान काँग्रेस से अलग हैं, साथ ही मुसलमानों को ठस बुद्धि वाला कहा गया था।

ह्यूम महाशय ने कहा, "यह दोनों बातें झूठ हैं, आपस में लड़ाई कराके शासन करने की यह नीति घृणित है। मुसलमानों में ही सर सालार जंग, जस्टिस बद्रउद्दीन तैय्यब जी और जस्टिस सैयद-महमूद ऐसे बुद्धिमान लोग मौजूद हैं—ये सभी काँग्रेसवादी हैं। काँग्रेस उसी प्रकार भारत का प्रतिनिधित्व कर सकती है जिस प्रकार केवल १०% वोटों की भित्ति पर निर्मित बृटिश पार्लियामेंन्ट बृटिश साम्राज्य का प्रतिनिधित्व कर सकती है। जहाँ तक समाज सुधार का प्रश्न है, काँग्रेस का काम केवल समाज सुधार नहीं हो सकता। वह तो आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी प्रकार के सुधारों लिये प्रयत्नशील है।"

मनमुटाव

सरकार और काँग्रेस में मन मुटाव बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि इलाहाबाद के अधिवेशन में ख़ेमा गाड़ने के लिये भी स्थान मिलना मुश्किल पड़ गया था। श्रीमती एनी बेसेन्ट ने लिखा है कि, "मद्रास अधिवेशन (१८८७ ई०) में एक महाशय ज़िलाधीश की आज्ञा तोड़ कर काँग्रेस में शामिल होने चले आये थे। बाद में अमन

क़ायम रखने के लिये उनसे २००० रु० की ज़मानत माँगी गई थी।"

बंगाल सरकार ने सन् १९१० ई० में यह विज्ञप्ति प्रकाशित की कि "केन्द्रीय सरकार की आज्ञानुसार, सरकारी नौकरों को दर्शकों की हैसियत से भी काँग्रेस के अधिवेशनों में जाना मना है, साथ ही इन सभाओं की कार्यवाही में भाग लेने की आज्ञा भी नहीं है।" इसी ज़माने में सरकारी आज्ञानुसार प्रेसों के ऊपर फिर प्रतिबन्ध लगना शुरू हो गये। आज्ञा न मानने वालों को सख़्त से सख़्त सज़ा की धमकी दी गई। उधर मुसलमानों को काँग्रेस का विरोध करने के लिये उभारा जाने लगा।

इस तरह सरकार और काँग्रेस में स्थिर रूप से अनबन हो गई। होम चार्जेज़ (गृह-कर) ७० लाख पौंड से बढ़ाकर १ करोड़ साठ लाख पौंड कर दिया गया था। सन् १८९७ ई० में १२४ (अ) और १५३ (अ) की धारायें ताज़ीरात हिन्द में बढ़ा दी गईं। आपको जानकर विस्मय होगा कि दफ़ा १०८ और १४४ पहिले पहिल राजनीतिक कार्यकर्ताओं पर लगाई गई थीं। प्रेसों पर विशेष सेन्सर बैठा दिये गये और प्रेस कमेटियाँ क़ायम कर दी गईं। महाराष्ट्र और बंगाल पर ज़ुल्म किये जाने लगे। इसी ज़माने में हमारे राजनीतिक नेता लोकमान्य तिलक को सज़ा दी गई।

लार्ड कर्ज़न

ऐसी स्थिति में लार्ड कर्ज़न का आगमन हुआ। लार्ड कर्ज़न उन व्यक्तियों में हैं जो अँग्रेज़ी हुकूमत के असली रूप को दिखला गये हैं। उन्होंने आकर कलकत्ता कारपोरेशन के अधिकारों को छीना,

ऊँची शिक्षाओं को अधिक से अधिक महँगी बनाया, बंगाल को दो हिस्सों में बाँटा और दिल्ली सरकार को देश का बड़ा दुश्मन बनाया। हिन्दुस्तानियों को इन्होंने "झूठा और बेईमान" ठहराया।

भारत के राष्ट्रीय इतिहास में यह काल बहुत महत्वपूर्ण है।

बंग-भंग और उसका महत्व

प्रथम बार ग़दर के बाद हिन्दुस्तानियों में राष्ट्रीयता की भावना इतने ज़ोरों से फैली थी। इसकी पृष्ठभूमि क्या थी? ऊपर थोड़े में हमने इसका वर्णन किया है। उन दिनों सुरेन्द्रनाथ बनर्जी 'पब्लिक सर्विसेज़' के पीछे पड़े हुये थे। आपको मालूम होगा कि विक्टोरिया महारानी के एलान के अनुसार सरकारी नौकरियों में किसी प्रकार का भेद भाव नहीं किया जा सकता था। परन्तु ३५ वर्षों के अन्दर केवल २० हिन्दुस्तानी आई० सी० एस० हो पाये थे, इसी ज़माने में १००० से ऊपर अँग्रेज़ आई० सी० एस० हो चुके थे।

पुलिस कमीशन ने ऐसा इन्तज़ाम किया कि 'विशेष नौकरियों' में हिन्दुस्तानियों का पहुँचना ही असम्भव हो गया। व्यापारियों के सामने कर्ज़न ने साफ़ साफ़ कह दिया कि 'शासन शोषण का दामन-चोली का साथ है।' व्यापारी स्वभावत: इस कथन से तमतमा उठे। देश के विद्वान, समाज सुधारक, नेता और जन सेवक क्षुब्ध हो उठे। इसी मौक़े पर बंग-भंग का आयोजन हुआ। बँगला भाषा भाषी बंगालियों को दो टुकड़े में बाँटने की नीति ने सारे देश में एक नई लहर पैदा कर दी। बंगाल में हड़तालों और सभाओं का ज़ोर बढ़ा। सरकार की तरफ़ से सख्तियाँ बढ़ीं और

जनता में जागृति आई। विद्यार्थियों पर सख़्ती की गई। राजनीति में भाग लेने से उन्हें रोका गया। सम्मानित नागरिकों को बेइज़्ज़त और ज़लील किया गया। सर बी० .फुलर (उस समय के बंगाल के गवर्नर) ने यहाँ तक कह दिया कि " .खून का बहाना ज़रूरी हो गया है "। गुरखा पलटनें तक बुला ली गईं। यह नृशंसता उस समय हो रही थी जब कि हिंसा का नाम भी कहीं नहीं था। जनता कड़ी पड़ती गई और बंगाल के इस जागृति ने शीघ्र सार्वदेशिक रूप धारण कर लिया। बंगाल का सवाल सारे देश का सवाल हो गया। जगह जगह स्थानीय प्रश्नों को लेकर आन्दोलन जारी हो गये। नहर क़ानून के सवाल को लेकर पंजाब में शोर मचा, लालाजी और भगतसिंह के चाचा सरदार अजित सिंह निर्वासित कर दिये गये। इसी ज़माने में पहिले पहिल 'स्वराज' शब्द का प्रयोग दादा भाई नौरोज़ी ने कलकत्ते वाले अधिवेशन में किया।

स्वदेशी आन्दोलन

विद्यार्थियों के ऊपर सख़्तियाँ हुईं। वे स्कूलों और कालेजों से निकाले जाने लगे। इसकी प्रतिक्रिया में सरकारी स्कूलों का बायकाट होने लगा। साथ ही राष्ट्रीय विद्यालय भी खुलने लगे। 'बंग जातीय परिषद्' नाम की एक संस्था सर गुरु दास बनर्जी के नेतृत्व में चली। इसी की देख रेख में पूर्वी बंगाल में २४ राष्ट्रीय हाई स्कूल खुल गये। इन स्कूलों का आदर्श राष्ट्र सेवा के लिये राष्ट्रीय विचारों वाले विद्यार्थियों को दीक्षित करना था।

बाबू बिपिन चन्द्रपाल ने अपने राष्ट्रीय साप्ताहिक 'न्यू

इण्डिया' (New India) द्वारा राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय शिक्षा, और नव जीवन का प्रचार किया। उन्होंने देश भर में भ्रमण करके जनता को जागृत किया।

सन् १९०७ में स्वदेशी आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा। इसके तीन नारे थे स्वदेशी, बायकाट और राष्ट्रीय शिक्षा। ७ अगस्त १९०५ ई० को ही विदेशी वस्तुओं के बायकाट का नारा बुलन्द कर दिया गया था। अब धीरे धीरे इसने ज़ोर पकड़ा। लाखों रुपये के कपड़े सड़कों पर फूँक दिये गये। बाज़ारों में विदेशी कपड़ों का बिकना मुश्किल हो गया। गाँव के बने कपड़े इस्तेमाल किये जाने लगे। इस आन्दोलन से गाँवों के उद्योग धन्धों को बड़ी सहायता मिली। साथ ही राष्ट्रीय-देशी-पूँजीवाद ने भी फ़ायदा उठाया। उसने बाज़ारों को स्वदेशी कपड़ों तथा दूसरे सामान से पाट दिया। स्वदेशी की भावना दिन पर दिन गहरी होती गई। सरकार ने खुल कर अत्याचार किये। उसका विश्वास गोखले ऐसे नर्म नेताओं पर से भी उठ गया। यह आन्दोलन उनके लिये एक भयानक वस्तु थी। इसको दबाने के लिये कोई दक़ीक़ा बाक़ी नहीं रखा गया।

हिंसात्मक प्रतिक्रिया

दमन का अन्त शासकों के लिये हमेशा बुरा ही होता है। बंग-भंग के ज़माने में सरकार के दमन ने ही बिपिन चन्द्रपाल और अरविन्द घोष को जनता का नेता बना दिया। बिपिन बाबू ने स्वदेशी आन्दोलन का प्रचार किया। अरविन्द बाबू हिंसा में विश्वास करते थे। उनकी राष्ट्रीयता आध्यात्मिकता का पुट लिये हुये थी। गीता से ही उनको प्रेरणा मिलती थी। वे

विदेशी हुकूमत को शैतानी हुकूमत कहते थे और उनका कहना था कि ऐसी सरकार को ख़त्म करने के लिये हर उपाय नीतिपूर्ण और उचित है।

अरविन्द बाबू का यह कथन नौजवानों को जंच गया। गुप्त हिंसात्मक आन्दोलन का संगठन जोरों से होने लगा। बंगाल में ही नहीं, बंगाल के बाहर, ख़ास तौर से सी० पी०, यू० पी०, और महा राष्ट्र में इस आन्दोलन ने विशेष ज़ोर पकड़ा। उस समय शक्ति-प्रयोग ही इन लोगों का आदर्श था। इस नीति का प्रचार करने के लिये तीन पत्र निकले थे, 'युगान्तर' 'संध्या' और 'वन्देमातरम्'। सरकार ने इन सब को बन्द कर दिया, परन्तु गुप्त रूप से इनका प्रकाशन होता ही रहा। अरविन्द बाबू के ऊपर मुक़दमें चले थे। बाद में वे पान्डीचेरी में एक आश्रम बना कर वहीं रहने लगे और राजनीति से अलग हो गये।

खुदीराम बोस

मुज़फ़्फ़रपुर के ज़िला मैजिस्ट्रेट मि० किंग्सफ़ोर्ड की हत्या करने का षणयन्त्र किया गया। परन्तु ज़रा सी ग़ल्ती के कारण, किंग्स फ़ोर्ड तो बच गये परन्तु उनके स्थान पर दो स्त्रियों की मृत्यु हो गई। इसी जुर्म में श्री खुदी राम बोस को फाँसी की सज़ा हो गई। फाँसी के समय खुदी राम की अवस्था १८ वर्ष थी। सारे देश में खुदी राम की तसवीर बँटी और उसको राष्ट्रीय संसार में ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ। 'युगान्तर' के स्तम्भों में खुलेआम शक्ति प्रयोग और हिंसा का प्रचार होता था। उसका सम्पादक एक नौजवान था। इस नौजवान का नाम था श्री भूपेन्द्र नाथ। ये स्वामी

विवेकानन्द के भाई थे। जब इनको काफ़ी लम्बी सज़ा मिली तो इन्होंने कहा कि "मेरे पीछे ३० करोड़ आदमी इस पत्र का सम्पदान करने के लिये मौजूद हैं।"

तिलकजी

१३ जुलाई १९०८ ई० को तिलकजी पकड़ लिये गये। ५ दिन केस चलने के बाद उनको ६ साल की सज़ा हुई। सन् १८९७ ई० की सज़ा में तिलकजी को ६ महीने की छूट मिली थी। उस बाक़ी सज़ा को भी इसी सज़ा के साथ जोड़ दिया गया। उसी ज़माने में आन्ध्र देश तथा दूसरे स्थानों में भी गिरफ़्तारियाँ हुईं। राजद्रोहात्मक भाषण देने पर उन दिनों ५ साल की सज़ा आमतौर से हुआ करती थी। राजद्रोहात्मक भाषण धीरे धीरे कम होने लगे। उनका स्थान बम पिस्तौल ने लिया।

काले क़ानून

सख्तियाँ अधिक से अधिक मात्रा में बढ़ती गईं। नये नये क़ानून बनने लगे। राजद्रोहात्मक सभा क़ानून, प्रेस ऐक्ट आदि जनता के विरोध करते हुये भी पास किये गये। दो साल बाद 'क्रिमिनल ला अमेन्डमेन्ट ऐक्ट' पास किया गया। इसी काले क़ानून ने हमारे देश के हज़ारों उभरते हुये नौजवानों की ज़िन्दगी बर्बाद की है। उसी समय गोखले ने सरकार को आगाह किया था कि "उसकी बेवकूफ़ियों से नौजवान हाथ के बाहर हुये जा रहे हैं और उनकी करनी की ज़िम्मेदारी अब बुज़ुर्गों पर नहीं रहेगी।"

इधर हत्या का प्रोग्राम चलता रहा। लन्दन में, एक आम सभा म, तरुण मदन लाल ढींगरा ने सर कर्ज़न विली की हत्या

कर डाली। सारे देश में तहलक़ा मच गया। मि० जैक्सन भी नासिक में मारे गये। काँग्रेस ने इस भयानक स्थिति की ओर सरकार का ध्यान बार बार दिलाया, पर उसकी आवाज़ सरकार ने न सुनी।

सरकार ने कुछ थोड़े बहुत सुधार भी किये। मिन्टो-मार्ले-सुधार के अनुसार केन्द्रीय सरकार तथा बम्बई, मद्रास की प्रान्तीय सरकारों में हिन्दुस्तानियों की संख्या बढ़ा दी गई। लेकिन इस सुधार को देश ने कोई महत्व नहीं दिया।

कुछ सुधार

१२ दिसम्बर १९११ ई० में दिल्ली में शाही दरबार हुआ। इस दरबार के अन्त में बादशाह ने ऐलान किया:—

"मैंने वाईसराय की राय से भारत की राजधानी को भी कलकत्ते से हटा कर दिल्ली कर दिया है, इसके फलस्वरूप बंगाल सूबा में एक गवर्नर रखने का निश्चय किया है। विहार, छोटा नागपुर और उड़ीसा के लिये लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर रहेगा। आसाम में एक कमिश्नर रहेगा......यह हमारी हार्दिक इच्छा है कि इन परिवर्तनों से हमारी प्यारी जनता को अधिक से अधिक समृद्धि और प्रसन्नता हो।"

बंगाल इतने त्याग, बलिदान और आन्दोलन के बाद फिर एक हो गया। इसके बाद के सालों में कुछ शान्ति हुई। लेकिन अब भी भारत इस ज़माने के काले क़ानूनों को भूला नहीं था। इसका प्रमाण हमें लार्ड हार्डिन्ज के ऊपर फेंके गये बम की घटना से मिलता है।

एक तरफ़ जहाँ देश में राष्ट्रीय आन्दोलन उग्र रूप से चल रहा था दूसरी तरफ़ नर्मदल वालों ने सूरत अधि-

नर्मदल की काँग्रेस

वेशन के बाद काँग्रेस पर अधिकार कर लिया। लोकमान्य उन दिनों जेल में थे, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि नेता धीरे-धीरे ठन्डे पड़ चले और काँग्रेस की प्रगतिशील उग्रता में कमी आ गई। काँग्रेस इन लोगों के हाथ में १९१९ ई० तक किसी न किसी रूप में रही, हालाँकि सन् १७ के बाद काँग्रेस में फिर उग्रता आ रही थी। तिलक सन् १६ के काँग्रेस अधिवेशन में शामिल हुये। कुछ दिनों बाद गोखले की मृत्यु हो गई। इसी समय शासन सुधार का एलान हुआ और बाद में मान्टेग्यू-चैम्सफ़ोर्ड सुधार आया। इस सुधार को कुल देश ने पसन्द नहीं किया। जो बिल्कुल नर्मदल के थे उन्होंने इसका अधिक विरोध नहीं किया, परन्तु दूसरे लोगों ने इसका विरोध किया। डा० बेसेन्ट ने इसी शासन-विधान के बारे में कहा था कि, "शरीफ़ अँग्रेज़ों को ऐसा विधान नहीं देना चाहिये और शरीफ़ हिन्दुस्तानियों को उसे स्वीकार भी नहीं करना चाहिये।"

हिन्दू-मुस्लिम एकता होमरूल

इस ज़माने में जो सब से बड़ी चीज़ हुई वह थी हिन्दू-मुस्लिम एकता। लखनऊ अधिवेशन में हिन्दू-मुस्लिम एकता हो गई और सन् १९०६ में जो दुर्नीति लार्ड मिन्टो ने चलाई थी उसे इस एकता ने ख़त्म कर दी। इस अधिवेशन में तिलक, खापर्डे, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, रासबिहारी घोष, राजा साहब महमूदाबाद, मि० जिन्ना, गाँधीजी और मि० पोलक सभी उपस्थित थे।

इस अधिवेशन के बाद से काँग्रेस और मुस्लिम लीग ने एक साथ मिल कर काम करना शुरू किया। दोनों के अधिवेशन साथ साथ होने लगे। इसी ज़माने में होमरूल की सदा उठी। श्रीमती एनी-बेसेन्ट ने होमरूल का नारा दिया। देश भर में फिर सरगर्मी शुरू हुई। १५ जून सन् १७ में श्रीमती एनीबेसेन्ट, अरुन्डेल और वाडिया पकड़ लिये गये। इनका अख़बार 'कामनवील' आगे चलकर ज़ब्त कर लिया गया। उन दिनों जिन्ना साहब होमरूल लीग के मेम्बर थे और इस पत्र के लिये लेख लिखा करते थे। इन लोगों की गिरफ़्तारी पर सारे देश में हलचल मच गई। लोग सत्याग्रह तक करने को तैय्यार हो गये। सारे प्रान्तीय काँग्रेसों ने एक स्वर से सत्याग्रह का समर्थन किया। परन्तु काँग्रेस और मुस्लिम लीग के संयुक्त अधिवेशन ने इस प्रोग्राम को स्वीकार नहीं किया। कहा जाता है श्रीमती एनी बेसेन्ट स्वयं इसको नहीं चाहती थीं। कारण कि उसी समय सरकार के रुख़ में परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा था। कैबिनेट की तरफ़ से मि० मान्टेग्यू ने एलान किया कि 'अब अधिक से अधिक हिन्दुस्तानी सरकारी विभागों में लिये जायेंगे, साथ ही स्वशासन की संस्थाओं को उन्नति करने का हर एक मौक़ा दिया जायेगा, जिससे बृटिश साम्राज्य में भारत एक ज़िम्मेदार सरकार को पा सके।' इसी एलान के बाद एलाहाबाद अधिवेशन ने आन्दोलन का प्रस्ताव छोड़ दिया।

जब कि इधर होमरूल का आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था, गाँधी जी थोड़े से कार्यकर्ताओं को साथ लेकर चम्पारन ज़िले

के किसानों की तक़लीफ़ों की जाँच कर रहे थे। अप्रैल सन् १७ ई०

चम्पारन में गाँधी जी

में गाँधी जी पकड़ लिये गये। उन्होंने अपना 'क़ैसरेहिन्द' का मेडल वापस कर दिया। जब गाँधी जी मजिस्ट्रेट के सामने पेश किये गये, उन्होंने जुर्म क़बूल कर लिया। हिन्दुस्तान के इतिहास में यह पहिली चीज़ थी। मजिस्ट्रेट घबरा गया। उसने अन्त में गाँधी जी को छोड़ दिया। गाँधी जी ने २०,००० किसानों की गवाहियाँ लीं। जब सरकार की ओर से इसी बात की जाँच के लिये कमीशन बिठाया गया तो गाँधी जी भी उसके मेम्बर बनाये गये। कमीशन ने एक स्वर से किसानों की बातों को सही मान लिया और किसानों की तक़लीफ़ों को दूर करने के लिये समझौते की एक सूरत निकाली। धीरे धीरे नील की उपज ख़त्म होने के साथ साथ इन प्लान्टर्स का भी नामोनिशान मिट गया, जो कि किसानों का .खून चूसना ही अपना धर्म समझते थे। इसी ज़माने से राजेन्द्र बाबू गाँधी जी के भक्त हो गये।

इसके बाद सन् १८ ई० में खेड़ा का सवाल उठ खड़ा हुआ।

खेड़ा

यहाँ यों तो किसानों की विजय सैद्धान्तिक रूप से हो गई, परन्तु कुछ कारणों से उनका विशेष लाभ न हो सका। इसी आन्दोलन में सरदार वल्लभ भाई पटेल अपनी वकालत छोड़कर गाँधी जी के साथ आ गये। इसी आन्दोलन में गुजरात के लोगों ने पहिले-पहिल .खुशी .खुशी जेल जाना, जुर्माना देना और सख्तियाँ उठाना सीखा।

अहमदाबाद के मज़दूर

इसी समय गाँधी जी ने अहमदाबाद के मज़दूरों को भी संगठित किया। श्रीमती अनसुइया बेन साराभाई कुछ दिन पहिले ही से मज़दूरों की सेवा किया करती थीं। उसी ज़माने में मजदूरों और मिल मालिकों में झगड़ा हुआ। गाँधी जी ने बीच बिचाव किया, परन्तु इसका नतीजा कुछ नहीं हुआ। इसके बाद गाँधी जी ने कोई ठोस क़दम बढ़ाने का निश्चय किया। उन्होंने सारे ज़रूरी क़ाग़ज़ात देख डाले। उनका अध्ययन करने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि मज़दूरों की मज़दूरी में कम से कम ३५% बढ़ती होनी चाहिये। मिल मालिक २०% से अधिक मानने के लिये तैय्यार नहीं थे। इसलिये समझौता न हो सका और उन्होंने २२ फ़रवरी १९१८ ई० से 'लाक-आउट' (मिलों को थोड़े दिन के लिये चलाना बन्द करना) एलान कर दिया। एक पेड़ के नीचे गाँधी जी ने मज़दूरों की सभा की और वहीं यह निश्चय हुआ कि जब तक माँगें पूरी न हो जाँय मज़दूर मिलों में स्वयं नहीं जायेंगे। दो हफ़्ते बाद मज़दूरों में कुछ कमज़ोरी आने लगी। उनके बच्चे भूखों मरने लगे। गाँधी जी ने एलान किया कि जब तक मज़दूर अपने वादों पर टिके रहने को तैय्यार न हो जायेंगे वे न तो खाना खायेंगे न किसी सवारी पर चढ़ेंगे। इससे सारे देश में सनसनी फैल गई। सारे देश के नेताओं ने मिल मालिकों को गाँधी जी का प्राण बचाने के लिये अपील की। चार दिन बाद सुलहनामा हो गया और ३५% की बढ़ती तनख़ाहों में कर दी गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधी जी पहिले व्यक्ति थे जो कि जनता में मिलकर उनकी तक़लीफ़ों को दूर करने के लिये सरकार से लोहा लेने को तैय्यार हो जाते थे। यही कारण है सारे हिन्दुस्तान में उनका नाम शीघ्र ही फैल गया और धीरे धीरे तीन-चार साल बाद वे काँग्रेस के कर्णधार बन गये। अगले पृष्ठों में हम गाँधी जी का विशेष अध्ययन करेंगे।

जनता के गाँधीजी

४

गाँधी-युग (१)

पृष्ठ भूमि—युद्ध के बाद की स्थिति—गाँधी जी जन नायक—आन्दोलन का धार्मिक रूप—जलियानवाला बाग़ (अमृतसर)—घटना का विवरण—अन्य स्थान—लाहौर—गुजरान वाला—कसूर—शेख़ूपुरा—पंजाब के बाहर अन्य स्थान—प्रतिक्रिया—काँग्रेस जाँच कमेटी—अमृतसर की काँग्रेस—अमृतसर से नागपूर—ख़िलाफ़त का प्रश्न—सुधारों का प्रश्न—हन्टर कमिटी की रिपोर्ट—असहयोग के बीज—नागपूर की काँग्रेस।]

इस अध्याय में हम पिछले २० साल के राजनीतिक आन्दोलन का अध्ययन करेंगे। ये २० साल हमारे राष्ट्रीय इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इसके कई कारण हैं। इसी युग में पहली बार अखिल भारतीय दृष्टि से सरकार का सक्रिय और संगठित विरोध जनबल के भरोसे शुरू हुआ। पुराने सुधारवादी नेता, जो केवल भाषण के द्वारा सरकार की नीति में परिवर्तन करना चाहते थे, धीरे धीरे काँग्रेस से अलग होने लगे। साथ ही वे लोग जो सक्रिय आन्दोलन में विश्वास करते थे धीरे धीरे काँग्रेस पर अधिकार जमाने लगे।

युद्ध समाप्त हो चुका था। भारत के उद्योग धन्धों की हालत

अबतर थी। बेकारी ज़ोरों से बढ़ती जा रही थी। किसान, मज़दूर तथा मध्य श्रेणी के लोग युद्ध के बाद की मन्दी के कारण क्षुब्ध हो उठे थे। देश की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल थी। सरकार की तरफ़ से भी कोई ऐसा काम नहीं किया गया जिससे आम जनता के जीवन में स्थिरता आती।

युद्ध के बाद की स्थिति

युद्ध के ज़माने में जो कुछ एलान किया गया था, उसमें से कुछ भी पूरा नहीं किया गया। मान्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड-सुधार से देश को सन्तोष नहीं हुआ। पुलिस के अधिकार बढ़ा दिये गये। तथा कथित क्रान्तिकारियों को गिरफ़्तार करना और सज़ा देना शुरू हुआ। राजद्रोहात्मक कार्यों के लिये नज़रबन्दी, ज़ब्ती और जुर्माना सभी कुछ खुलेआम होने। लगा। एक हाईकोर्ट की भी स्थापना हुई। इस कोर्ट का काम था क्रान्तिकारियों को सज़ा देना। कोर्ट के फ़ैसले की अपील भी नहीं हो सकती थी। इक़बाली गवाहों को सरकार की ओर से सुविधायें दी जाती थीं। मुक़दमों में प्रारम्भिक जाँच करने का काम पुलिस के हाँथों में दे दिया गया। रौलेट रिपोर्ट की जो चीज़ें जनता के सामने आईं उनको देखकर सारे देश में तहलक़ा मच गया। सभी दलों और नेताओं ने इसका विरोध किया। १९-१-१९१९ ई० को रौलेट बिल सुप्रीम कौंसिल में रखा गया।

जब यह बिल पास हो गया तब गाँधी जी ने एलान किया कि इसके विरोध में वे सत्याग्रह करेंगे। सरकार के सामने ऐसी

परिस्थिति कभी नहीं आई थी। साथ ही देश भी उस समय इस प्रकार के सत्याग्रह का आदी नहीं हुआ था। इस लिये दोनों तरफ़ विस्मय हुआ। लेकिन जनता को गाँधी जी पर विश्वास हो चला था। जनता को दक्षिण अफ़्रीका का आन्दोलन याद था और खेड़ा तथा चम्पारन का मामला भी ताज़ा ही था। सरकार के रुख़ से जनता में काफ़ी असंतोष था। महात्मा जी राष्ट्र की नाड़ी पहिचानते थे। श्रीमती बेसेन्ट तथा दूसरे नेताओं के मना करने पर भी गाँधी जी विचलित न हुये। उन्होंने सत्याग्रह का एलान कर दिया। उन्होंने सारे देश में भ्रमण करके जनता को अपना मन्तव्य समझाया। जनता ने महात्मा गाँधी में एक क्रान्तिकारी और प्रगतिशील नेता देखा। उस समय एक सरकारी रिपोर्ट में गाँधी जी के बारे में यह लिखा था :—

गाँधी जी जन-नायक

"मि० गाँधी ऊँचे आदर्शों के मानने वाले और परम निस्वार्थी माने जाते हैं। जब से उन्होंने दक्षिण अफ़्रीका में हिन्दुस्तानियों की तरफ़ से लड़ाई ली, तब से उनके देशवासियों में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गई। वे एक धार्मिक सन्यासी के समान पूजे जाने लगे। इनकी शक्ति का एक कारण यह भी है कि इनके मानने वाले सभी धर्मों और सम्प्रदायों के लोग हैं। ....पीड़ित व्यक्तियों और वर्गों का साथ देने के कारण ये जन प्रिय हो गये हैं। बम्बई सूबे के शहर और देहात में इनका पूरा असर है। वहाँ तो इनकी पूजा होती है।"......

गाँधी जी ने खुलेआम शक्ति प्रयोग का विरोध किया और उनको विश्वास था कि वे सविनय अवज्ञा आन्दोलन से ही सरकार

भारतीय जन-आन्दोलन के आदि नायक

को रौलट बिल लौटाल लेने के लिये मजबूर कर देंगे। इन्होंने १८ मार्च को रौलेट बिल के सम्बन्ध में एक प्रतिज्ञापत्र प्रकाशित किया जो इस प्रकार है :—

"इस बात को अच्छी तरह समझ करके कि १९१९ का इण्डियन क्रिमिनल ला अमेन्ड मेन्ट बिल नं० १ और क्रिमिनल ला इमर्जेन्सी पावर्स बिल नं० २ अन्यायपूर्ण हैं, ये न्याय और स्वाधीनता के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं और ये एक व्यक्ति के उन प्रारम्भिक अधिकारों का हनन करते हैं जिन पर सारे भारत तथा राज्य की भी रक्षा निर्भर है, हम कहते हैं कि ज्योंही ये बिल क़ानून का रूप धारण करेंगे और जब तक ये वापस न ले लिये जायेंगे, हम इनको मानने से इनकार कर देंगे, साथ ही हम उन क़ानूनों को भी नहीं मानेंगे जिनको बाद में बनने वाली कमेटी बनायेगी। हम यह भी कहते हैं कि अगले संघर्ष में हम सत्यता का अनुसरण करेंगे और किसी के जान माल के साथ हिंसा नहीं करेंगे* (भावार्थ)।

आन्दोलन का धार्मिक रूप

इतना ही नहीं, महात्मा जी ने इस आन्दोलन को शुरू करने के पहिले एक बड़ा उपवास आत्म शुद्धि के लिये किया। गाँधी जी का यह ढंग बहुत से नेताओं को पसन्द नहीं आया। वे इस प्रकार की चीज़ों के आदी नहीं थे। राजनीति और उपवास से क्या सम्बन्ध? पर धार्मिक भारत पर इसका बड़ा असर पड़ा। महात्मा जी की आवाज़ सारे भारत में पहुँच गई। ३० मार्च १९१९ ई० को सारे भारत में हड़ताल करने का निश्चय हुआ। यह भी एलान हुआ कि उस दिन सारे देश में उपवास और प्रार्थना हो।

* (India, 1919)।

बाद में यह तारीख़ बदल दी गई और इस काम के लिये ६ मार्च निश्चय हुआ। दिल्ली में इस तिथि परिवर्तन की ख़बर नहीं पहुँच सकी। वहाँ जलूस भी निकले और हड़तालें भी हुईं। इसी जलूस में स्वामी श्रद्धानन्द ने पुलिस की गोली के सामने अपना सीना खोल दिया था। बाद में कुछ गड़बड़ी हो जाने से गोली भी चली थी। इस समय सबसे बड़ी बात यह थी कि हिन्दू और मुसलमानों में एका था। साथ साथ जलूस निकलते थे और सभायें होती थी। छोटे बड़े सभी हिन्दू मुसलमान एक थे।

जलियान वाला बाग़

आगे हम एक ऐसी दुर्घटना का वर्णन करने जा रहे हैं जो भारत के राष्ट्रीय इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। पंजाब में अमृतसर एक शहर है। इसके बीच में जलियानवाला बाग़ स्थित है। यह बाग़ चारों तरफ़ ऊँची दीवारों से घिरा हुआ है। भीतर जाने के लिये केवल एक छोटा सा रास्ता है। दीवाल के चारों तरफ़ नागरिकों के मकान हैं। अमृतसर में काँग्रेस की तैय्यारी हो रही थी। डा० किचलू और डा० सत्यपाल एकाएक मैजिस्ट्रेट द्वारा १०—४—१९१९ ई० को बुलाये गये और वहाँ से ग़ायब कर दिये गये। जनता में यह ख़बर फैल गई। लोगों ने मैजिस्ट्रेट से बातें करनी चाही परन्तु गारद के पहरों के कारण वे वहाँ तक नहीं पहुँच सके। ढेले चले, गोलियाँ चलीं। जनता को तैश आया। वापस आते समय उन्होंने नेशनल बैंक की कोठी को जला दिया और इसके योरोपियन मैनेजर को मार डाला। कुल ५ अँग्रेज़ मारे गये। रेलवे तथा दूसरे मकानों पर भी हमले

हुये। शहर का इन्तज़ाम फौज के हाथ में दे दिया गया। याद रखने की बात है कि १३ अप्रैल तक मार्शलला लागू नहीं किया गया था, हालाँ कि १० अप्रैल से ही इस क़ानून की पाबन्दी होने लगी थी।

१३ अप्रैल को जलियान वाला बाग़ में एक सभा हुई। लगभग २०,००० जनता सभा में आ गई। उसी समय जनरल डायर १०० हिन्दुस्तानी और ५० अंग्रेज़ी सिपाहियों को लेकर दरवाज़े पर आ गये। उस समय हंसराज का भाषण हो रहा था। हन्टर कमेटी के सामने जेनरल डायर ने बयान देते समय कहा कि उन्होंने "भीड़ को छँट जाने के लिये दो तीन मिनट का समय दिया था"। जो कुछ भी हो दो या तीन मिनट में २०,००० जनता का छँट जाना असम्भव था। विश्वास किया जाता है कि बिना छँटने का का मौक़ा दिये ही डायर ने गोली चलाने का हुक्म दिया था। १६०० राउण्ड फ़ायर किये गये, गोली चलना तभी बन्द हुआ जब गोलियाँ पास में नहीं रह गईं। सरकारी रिपोर्टों के अनुसार ४०० से ऊपर आदमी मारे गये और क़रीब २,००० घायल हुये।

डायर ने अपने बयान में कहा "मैंने पहिले ही डुग्गी पिटवा दी थी कि शहर में कोई भी सभा नहीं हो सकती। फिर भी लोगों ने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया। इसके लिये मैं उनको सबक़ सिखा देना चाहता था, जिससे बाद में वे मेरे ऊपर हँस न सकें। मैं गोली चलाता ही जाता, लेकिन मैं मजबूर हो गया, मेरे पास गोलियाँ रह ही नहीं गईं। मैं अपने साथ आर्मर्ड कार भी ले गया था, लेकिन उसे पीछे से छोड़ देना पड़ा।"

यह तो हुई उस बाग़ की बात। जलियान वाला में कितने आदमी मरे इसका ठीक अन्दाज़ नहीं लगाया जा सकता, लेकिन

जब सरकारी रिपोर्ट से ४०० आदमी मरे मान लिये गये तब आसानी में यह कहा जा सकता है कि इससे कई गुना अधिक आदमी मारे गये होंगे। घायलों की तायदाद भी २,००० से कहीं, अधिक रही होगी। इस घटना के बाद जो ज़ुल्म ढाया गया उसको पूरा लिखना असम्भव है। इस पर कई किताबें लिखी जा चुकी हैं।

अमृतसर में पानी और बिजली के कनेक्शन काट दिये गये। चौराहों पर खुले आम कोड़े बरसाये गये। पेट के बल लोगों को रेंगवाया गया। तीसरे दर्जे का रेलवे का टिकट बन्द कर दिया गया। दो आदमियों का साथ साथ चलना बन्द हो गया। सब की साइकिलें छीन ली गई। ज़बरदस्ती दूकानें खोलवाई गईं और चीज़ों का भाव फ़ौजी अफ़सरों ने मुक़र्रर कर दिया। गाड़ियाँ ज़ब्त कर ली गई। शहर भर में कोड़ा मारने के लिये टिकटियाँ बनाई गई। २९८ आदमियों को मार्शलला कमीशन के सामने पेश किया गया। साधारण क़ानूनी कार्रवाई भी नहीं की गई। इनमें से ५१ को फाँसी की सज़ा हुई। ४६ को काला पानी मिला, २ को दस साल की सज़ा मिली, ७९ को सात साल की सज़ा मिली, १० को पाँच साल की सज़ा मिली, १३ को तीन साल की सज़ा मिली और ११ को इससे कम की सज़ा मिली। इस प्रकार २१८ आदमियों को भिन्न भिन्न प्रकार की सज़ायें मिली। दूसरे फ़ौज़ी अफ़सरों ने भी सजायें दीं। इन अफ़्सरों ने ५० आदमियों को तरह तरह की सज़ायें दीं। दूसरे मैजिस्ट्रेटों ने भी मार्शलला के मुताबिक १०५ आदमियों को सज़ायें दीं।

घटना का विवरण

हन्टर कमिटी के एक सदस्य जस्टिस रेंकिन ने पूछा, "क्षमा कीजियेगा जेनरल, अगर मैं आपसे कह पूछूँ कि क्या डर के कारण तो आपने ऐसा नहीं कर डाला ?"

जेनरल डायर ने कहा, "नहीं, ऐसा नहीं था। मुझे भयानक कर्तव्य पालन करना पड़ा। मैं समझता हूँ कि मैंने दया का बर्ताव किया। मैं चाहता था कि अच्छी तरह से और जोरों से गोली चलाऊँ, जिससे फिर कभी मुझे या और किसी को कभी गोली न चलानी पड़े। मैं समझता हूँ सम्भवतः बिना गोली चलाये ही मैं भीड़ को तितर बितर कर देता, लेकिन वे फिर वापस आते और मुझ पर हँसते, और मैं समझता हूँ कि ऐसा करने से मैं अपने को ही मूर्ख बनाता।"

बाद में सर माइकेल ओ डायर ने भी तार भेजकर डायर से कहा था कि, "तुमने ठीक किया। लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर तुम्हारे काम की हामी भरते हैं। इन्हीं सर माईकेल ओडायर को सन् १९३९ में लन्दन के कैक्सटन हाल में उद्धमसिंह ने गोली से मारकर जलियाँ वाला बाग़ का बदला लिया था।

ऊपर हमने जो कुछ भी कहा है वह हन्टर कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर है। पाठकों को याद रखना चाहिये कि डायर के ही ये शब्द हैं और इसी के इनाम स्वरूप उसे विलायत में तलवार भेंट की गई थी तथा वह नाना उपाधियों से विभूषित किया गया था।

परन्तु इतने से ही यह रक्त रञ्जित कहानी समाप्त नहीं होती। अमृतसर की घटना तो है ही, गुजरानवाला, लाहौर,

क़सूर, रावलपिण्डी आदि जगहों पर कर्नल जान्सन, बासवेल स्मिथ, कर्नल ओब्रियान तथा दूसरे अफ़सरों ने ज़ुल्म ढाये। लाहौर में, मार्शलला सब से अधिक सख़्ती से बर्ता गया, ८ बजे रात को बाहर निकलने पर गोली मारी जा सकती थी, कोड़े बरसाये जा सकते थे, वग़ैरह। दुकान न खोलने पर गोली मार देने का हुक्म था। दूकानों के माल को लूट लेना और लुटा देना रोज़मर्रा की चीज़ थी। कालेज के लड़कों को चार दफ़ा दिन में, दूर दूर तक जाकर हाज़िरी देनी पड़ती थी। मोटर साइकिलें या दूसरी सवारियाँ छीन ली गईं या जब्त कर लीं गईं। बिजली का कनेक्शन काट दिया गया।

अन्यस्थान

पढ़े लिखे लोग क्रान्तिकारी तथा राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेते थे, इसलिये वकीलों, प्रोफ़ेसरों और अन्य मध्यम श्रेणी के लोगों को सज़ा दी गई। १६ से २० वर्ष तक के लड़कों पर अधिक सख़्ती की गई। लाहौर में उन दिनों साये में भी १०८° गर्मी रहती थी, ऐसी भयानक गर्मी में उन्हें १९, २० मील रोज़ाना हाजिरी देने के लिए चलना पड़ता था। किसी कालेज के दीवार पर लगी हुई मार्शलला की नोटिश फट गई, इस पर उस कालेज के प्रिन्सिपल और सभी प्रोफ़ेसरों को गिरफ़्तार कर क़िले के 'एक कोने में' बन्द कर दिया गया।

गुजरान वाला में बमों की वर्षा की गई और मेशिनगन से गोली चलाई गई। सरकार ने बतलाया इससे केवल ९ आदमी मरे और १६ घायल हुए। हवाई हमले किस प्रकार हुये उसका भी क़िस्सा है। कर्नल ओब्रियान ने कमेटी के सामने बयान देते

समय स्वयं माना है कि, "जहाँ कहीं भी भीड़ मिली गोली चलाई गई।"

लेफ्टिनेंट डाडकिन्स ने एक खेत में बीस किसानों पर हवाई जहाज़ से गोली चलाई। जब तक सबके सब भाग नहीं गये गोली चलती रही। आगे चलकर आपने देखा कि एक मकान के सामने एक भीड़ खड़ी है और भीड़ से एक आदमी कुछ कह रहा है। इन्होंने भीड़ पर एक बम गिरा दिया क्योंकि इनको "विश्वास था कि भीड़ न तो किसी शादी की बारात है, न जनाज़े का जलूस'। मेजर कार्वी ने एक भीड़ पर इसलिये बम मारा कि वे समझते थे कि यह भीड़ लूट मार करके कहीं से आ रही है या कहीं जा रही है। उन्होंने आगे बयान किया:—

"भीड़ भागी जा रही थी, उसको तितर बितर करने के लिये मैंने गोली चलाई। जब भीड़ छँट गई तब मैंने गाँव पर ही मशीनगन द्वारा गोला बारी करनी शुरू कर दी। मेरा अनुमान है कि कुछ घरों में गोलियाँ लगी होंगी। मैं दोषी और निर्दोषी में भेद नहीं कर सकता था। मैं केवल २०० फ़ीट ऊपर था और आसानी से जो कुछ कर रहा था देख सकता था। गोली इसलिये नहीं चलाई गई कि नुक़सान हो, गोली तो गाँव वालों की भलाई के लिये चलाई गई थी।"

ये समझते थे कि "थोड़े आदमी को मार देने से इतना तो फ़ायदा होगा ही कि लोग फिर इकट्ठे न होंगे।" इसके बाद ये शहर की तरफ़ गये रास्ते में लोगों पर ये बम गिराते, गोली चलाते चले जा रहे। बम वर्षा उन पर हुई जो "भागने की कोशिश कर रहे थे"। इन्हीं महाशय का यह हुक्म था कि "जो लोग सवारी पर

हों अफ़सरों को देखकर उतर जायें, जो छाता लगाये हों वे अपना छाता अफ़्सरों को देखकर नीचा कर लें।" यह इसलिये किया गया था कि "लोग समझ लें कि वे अब नये मालिकों के तावेदार हैं।"

रास्ते भर क़ैदियों की भीड़ बेड़ियों की झंकार से इधर उधर के सूने घरों को गुंजरित करती हुई चली जा रही थी, भीड़ बढ़ती ही जाती थी। ओब्रियान जिसको भी रास्ते में पाते थे गिरफ़ार कर लेते थे। हिन्दू और मुसलमान क़ैदियों का जोड़ा बनाकर हथकड़ी से बाँध दिया जाता था। कहा जाता है कि हिन्दू और मुसलमान अपनी एकता के ही कारण इस प्रकार बेइज्जत किये गये थे। क़ैदियों की इस भीड़ में एक प्रसिद्ध रईस भी थे जिन्होंने किंग जार्ज स्कूल क़ायम करने के लिये एक लाख रुपये का दान किया था। इन्होंने युद्ध फ़ण्ड में भी काफ़ी चन्दा दिया था।

२०० आदमियों को बिना गवाही शहादत के सजा दे दी गई। इनमें से कितनों को कोड़ों की सज़ा दी गई थी। कमीशन ने भी २२ को फाँसी की सज़ा १०८ को काले पानी की सज़ा और दूसरों को १० वर्ष और इससे नीचे की सज़ा दी।

कसूर में भी अत्याचार कम नहीं हुआ। आम जगहों में फाँसी के अड्डे बनाये गये, जिससे कि लोग भय भीत हो जायें। रेलवे के पास लोहे का पिंजड़ा बनवाया गया जिसमें एक साथ १५० आदमी बन्द किये जा सकते थे, यह पिंजड़ा जनता के सामने नुमायश के लिये आदमियों को भरकर रखा जाता था। जनता की शिनाख़्त के लिये बाक़ायदे परेड लगता था। खुले आम कोड़े

बरसाये जाते थे। घुटनों तक नंगा करके आदमियों को कोड़ों से मारा जाता था। इसके चित्र आज भी मौजूद हैं। ओब्रियान महोदय ने तो एक शादी के बारात पर कोड़े बरसवाये थे, पर यहाँ क़सूर में रण्डियों के सामने कोड़ों की मार का प्रदर्शन किया गया। यहाँ पर लोगों को इस बात के लिये भी मजबूर किया गया कि वे माथा ज़मीन पर टेक कर चलें।

शेख़ूपुरा में और सब अत्याचारों के साथ ही एक और भी विशेष बात हुई। यहाँ छोटे मासूम बच्चों को भी नहीं छोड़ा गया। झण्डे को सलामी देने के लिये इनको भी तीन दफ़ा जाना पड़ता था। ५ और ६ वर्ष के बच्चे भी जबरन् ले जाये जाते थे। बच्चे रास्ते में बेहोश हो जाते थे और कई तो लू और थकान के कारण मर भी गये। बच्चों को यह कहने के लिये मजबूर किया जाता था कि, "मैंने कोई जुर्म नहीं किया। मैं कोई जुर्म नहीं करूंगा। मुझे पछ-तावा है, मुझे पछतावा है, मुझे पछतावा है।"

सर चिमन लाल सितलवाड के पूछने पर मेजर स्मिथ ने कहा कि, "जहाँ तक मेरा अधिकार था मैंने मार्शलला लागू किया। छोटे छोटे बच्चों को भी परेड में शामिल होना पड़ता था।"

कर्नल ओब्रियान ने अपनी गवाही में कहा, "मैंने एक दिन परेड में जाते हुये बच्चों को देखा, उसमें से एक बच्चा बेहोश हो गया। मैंने इसके बारे में अधिकारियों को लिख भी दिया। मालूम नहीं इसके फलस्वरूप उस बच्चे पर और अधिक सख़्ती की गई या नहीं।" यह पूछने पर कि "क्या यह बच्चों पर आवश्यकता से अधिक सख़्ती नहीं थी"—ओब्रियान महाशय ने कहा, "नहीं।"

इसी समय अहमदाबाद, बीरमगाँव, नदियाद, कलकत्ता आदि स्थानों में बेचैनी फैली थी। क़रीब क़रीब इन सब जगहों में जनता और पुलिस से मुठभेड़ हुई। जनता ने हिंसा भी की। जहाँ कहीं भी बलवे हुये या जनता ने जोश और रोष का प्रदर्शन किया वहीं पर पुलिस, फ़ौज तथा सरकार की तरफ़ से जोरदार प्रतिक्रिया हुई। इस प्रतिक्रिया ने भीषण, निर्दय, नृशंश और नीचता पूर्ण ढंग धारण किया।

पंजाब के बाहर अन्य स्थान

इस दुर्घटना की प्रतिक्रिया भी गम्भीर हुई। गाँधी जी ने मान लिया कि उन्होंने अपने देश वासियों को को पूर्णतया अहिंसात्मक समझ कर भयंकर ग़लती की। उन्होंने फ़ौरन सत्याग्रह आन्दोलन बन्द कर दिया। उन्होंने देशवालों से अनुरोध किया कि वे स्वदेशी का प्रचार करें और हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रश्न को अपनावें। अफ़गान युद्ध छिड़ जाने से पंजाब में किसी न किसी रूप में मार्शल ला बना ही रहा। इससे देश के नेताओं को बड़ा दुख हुआ। देश बन्धु ऐन्ड्रूज़ जब जाँच करने के लिये पंजाब जाने लगे तो उन्हें गिरफ़ार कर लिया गया। लाला हरकिशनलाल को, जो कि एक प्रसिद्ध महाजन और काँग्रेस मैन थे, देश निकाला दे दिया गया और उनकी ४० लाख की रियासत जब्त कर ली गई। इसी के बाद वाइसराय ने हन्टर कमिटी बिठाई और उसके जिम्मे जाँच का काम सौंपा।

प्रतिक्रिया

२० और २१ अप्रैल को काँग्रेस कमिटी की बैठक हुई और

श्री वी० जे० पटेल तथा श्री एन० सी० केलकर को विलायत भेजने का निश्चय हुआ। इसी ज़माने में 'यंग इण्डिया' पत्र निकला, पहिले इसको श्री जमनादास द्वारकादास ने निकाला था, बाद में गाँधी जी इसके सम्पादक हुये। काँग्रेस कमिटी ने अपनी तरफ़ से पंजाब हत्या काण्ड की जाँच के लिये एक कमिटी बनाई। इसमें बाद में गाँधी जी, ऐन्ड्रूज़ महोदय, स्वामी श्रद्धानन्द आदि भी शामिल हो गये थे। माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय ने प्रधान मंत्री, भारत मंत्री और लार्ड सिनहा को तार दिया कि मार्शल ला में जो सज़ायें दी गई हैं उनको अभी रोक दिया जाय और कमिटी की जाँच का इन्तज़ार किया जाये। १९ और २० जुलाई को कलकत्ते में यह निश्यच हुआ कि काँग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में ही किया जाये। काँग्रेस की तरफ़ से जो जाँच कमिटी बनी थी उसके सभापति पं० मोतीलाल नेहरू थे। बाद में जब वे काँग्रेस के सदर चुने गये तो उन्हें इस कमिटी से अलग होना पड़ा। इसी समय (२१ जुलाई) महात्मा गाँधी ने एक वक्तव्य देकर सत्याग्रह आन्दोलन वापस कर लिया। देश को महात्मा जी के वक्तव्य पर आश्चर्य तो हुआ, परन्तु और हो ही क्या सकता था।

कॉग्रेस जाँच कमेटी

पं० मोतीलाल जी, पं० मदनमोहन मालवीय और स्वामी श्रद्धानन्द जी ने जाँच शुरू की। बाद में श्री पुरुषोत्तमदास टन्डन और पं० जवाहरलाल भी इस कमिटी में शामिल हो गये। सरकारी जाँच का एलान हो गया। काँग्रेस की माँग पूरी नहीं की गई। फिर भी काँग्रेस ने उस जाँच कमिटी से सहयोग किया।

श्री सी० आर० दास कमिटी की तरफ़ से बहस करने के लिये बंगाल से आये। हन्टर कमिटी का रुख़ इतना ख़राब था कि काँग्रेस को उससे असहयोग करना पड़ा। बाद में काँग्रेस ने एक अलग जाँच कमिटी बनाई जिसके सदस्य पं० मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, गाँधी जी, फ़ज़लुलहक़ और अब्बास तैयब जी बनाये गये। इस कमिटी के मंत्री श्री के० सन्तानम थे। बाद में मोतीलाल जी का स्थान श्री एम० आर० जयकर ने लिया। इस कमिटी की पूरी रिपोर्ट काँग्रेस अधिवेशन के पहिले तैय्यार न हो सकी, परन्तु कमिटी ने उस समय इतना अवश्य कहा:—

"हन्टर कमीशन के सामने जेनलर डायर ने जो बातें मान लीं उनसे साफ़ ज़ाहिर होता है कि उनका १३ अप्रैल वाला कार्य सिवाय बेक़सूर बेबस, बेहथियार आदमियों और बच्चों की नृशंस, जान बूझ के हत्या के और कुछ नहीं था। यह हृदय हीन, कायरता पूर्ण क्रूरता वर्तमान युग में बेमिसाल है।"

अमृतसर की काँग्रेस

अमृतसर की काँग्रेस (१९१९) कई दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण थी। यहीं पर काँग्रेस का आगे आने वाला क्रान्तिकारी रूप पूरी तरह से निखरा था। पंजाब हत्याकाण्ड से देश भर में सनसनी फैली थी। आर्डिनेन्स आदि बनाने के जो अधिकार गवर्नरों को मिले थे उससे सबको नाराज़ी थी। नया शासन विधान पूर्णतया प्रतिक्रिया वादी था, उस पर किसी को पूरा सन्तोष नहीं था। इधर होमरूल लीग की कार्रवाई जारी थी। ये लोग गाहे बगाहे काँग्रेस की नुक़्ता चीनी किया करते थे। इनका

रुख प्रगतिशील नहीं रह गया था, बल्कि सुधारों का समर्थन करना ही इनका काम रह गया था। तिलक जी भी इस समय बदल गये थे, सुधारों का विरोध करना तो दूर रहा इन्होंने अब यह कहना शुरू कर दिया कि 'जो कुछ मिलता जाय ले लो और आगे के लिये कोशिश करते रहो'। यों तो राजनीति में इस नीति को बुरा नहीं माना जाता, परन्तु इसका असर अमृतसर में अच्छा नहीं पड़ा। दास बाबू ने इस अधिवेशन में प्रमुख पार्ट अदा किया। विषय निर्धारिणी समिति में अपना प्रस्ताव पास कराके आपने उसे खुले अधिवेशन में रखा। गाँधी जी एक नया पैरा जोड़ना चाहते थे। गाँधी जी और मालवीय जी सुधारों को कार्यान्वित करना चाहते थे। दास बाबू पूरा विरोध करना चाहते थे। बाद में दोनों में सुलह हो गई और दास बाबू का प्रस्ताव कुछ हेर फेर के साथ पास हो गया। पर इसमें कोई शक नहीं कि इस काँग्रेस में गाँधी जी की ही विजय हुई।

इस काँग्रेस में ५० प्रस्ताव पास हुये थे। जिसमें किसानों और मजदूरों का भी ज़िक्र आया था। ६००० प्रतिनिधि आये थे। ३६०००° जनता दर्शक की हैसियत से आई थी। १२०० किसान प्रतिनिधि भी शामिल हुये थे। पंजाब हत्या काण्ड के कारण अधिवेशन में बहुत जोश था। एक और विशेष बात हुई। गाँधी जी चाहते थे कि उस हत्याकाण्ड में जनता की तरफ़ से जो हिंसा हुई थी, उसकी निन्दा की जाय। विषय निर्धारिणी समिति में यह प्रस्ताव गिर गया। गाँधी जी को बहुत दुख हुआ। उन्होंने कहा कि अगर यह प्रस्ताव नहीं पास होगा तो वे काँग्रेस को छोड़

देंगे। इससे सारा वातावरण बदल गया और गाँधी जी का प्रस्ताव कुछ परिवर्तनों के बाद पास हो गया। गाँधी जी ने उस समय एक मार्मिक भाषण दिया दिया था जिसमें आपने कहा था कि "पागल पन की दवा पागल पन नहीं है, पागल-पन को तो बुद्धि-मत्ता से ही हराया जा सकता है।"

बाद के इतिहास में हम देखेंगे कि ज्यों-ज्यों आन्दोलन चलता गया गाँधी जी अहिंसा के मामले में हमेशा कड़े पड़ते गये। उससे देश को कई दफ़ा विस्मय हुआ और शायद नुक़सान भी, परन्तु गाँधी जी की ही बात हमेशा ऊपर रही। इसी ज़माने में स्वदेशी और चर्ख़ा पर विशेष ज़ोर दिया गया। इस काँग्रेस में किसानों और मज़दूरों के सवालों को भी उठाया गया था। विदेशों में रहने वाले भारतीयों के बारे में प्रस्ताव पास हुये थे। हफ़्ते भर तक अधिवेशन होता रहा। अधिवेशन में ही अली-बन्धु नज़र बन्दी से छूटकर आये। उनका शानदार स्वागत किया गया।

अमृतसर से नागपुर

अमृतसर काँग्रेस के बाद नागपुर का सालाना अधिवेशन हुआ। अमृतसर में जिस राज द्रोह के संगठित रूप का बीज बोया गया था वह नागपुर में एक सुन्दर पौधा हुआ। लेकिन उस पौधे के लिये जिस सिंचाई की ज़रूरत थी वह कलकत्ते के विशेष अधिवेशन में हुई। तीन सवाल इस समय देश के सामने थे: (१) खिलाफ़त का प्रश्न, (२) सुधारों का प्रश्न, (३) पंजाब हत्याकाण्ड का प्रश्न।

ख़िलाफ़त का प्रश्न मुसलमानों के लिये जीवन मरण का प्रश्न

था। इस सवाल का सम्बन्ध उनके धार्मिक विश्वास से था। मि० लायड जार्ज ने लड़ाई के आरम्भ में मुसलमानों को विश्वास दिलाया था कि 'उनके धार्मिक स्थानों की रक्षा ही नहीं की जायगी बल्कि उन पर ख़लीफ़ा का ही पूरा आधिपत्य रहेगा।' परन्तु अन्त में जब सुलह हुई तो बृटिश सरकार ने अपने वादों को भुला दिया। मुसलमान चाहते थे कि 'जज़रतुल-अरब' जिसमें कि मेसोपोटैमिया, सीरिया, अरेबिया, फ़िलस्तीन सभी शामिल हैं, ख़लीफ़ा के ही आधिपत्य में रहें। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। टर्की के सारे स्थान छीन लिये गये। थ्रेस ग्रीस को मिला, ब्रिटेन और फ्राँस ने टर्की साम्राज्य के सारे हिस्सों को बाँट लिया। सुल्तान एक बन्दी की भाँति रह गया। युद्ध में मुसलमानों ने अपना ख़ून बहाया, हज़ारों की बलि दी थी और करोड़ों रुपये दिये थे, उसके बदले में उन्हें यह इनाम मिला। मुसलमानों के साथ जो अन्याय हुआ इसके ऊपर हिन्दू भी रुष्ट थे (उस एकता के समय और आज के भारत में ज़रा अन्तर है)! १९ मार्च को यह निश्चय हुआ कि सारे देश में हड़ताल की जाय, और प्रार्थनायें हों। गाँधी जी ख़िलाफ़त आन्दोलन के नेता बने। उन्होंने असहयोग का नारा बुलन्द किया।

गाँधी जी के इस असहयोग के प्रोग्राम को देश ने अपनाया। इस तरह ख़िलाफ़त आन्दोलन और देश की आज़ादी की लड़ाई दोनों मिलकर एक हो गये। सन् १९२० के आन्दोलन के दो बहुत महत्वपूर्ण परिणाम हुये—एक तो हिन्दू-मुस्लिम एकता मज़बूत हुई और बहुत से मुसलमान काँग्रेस में आये और दूसरे जनता का

ध्यान पास पड़ोस के देशों की राजनीतक स्थिति की ओर अधि-काधिक गया।

हम देख आये हैं कि सुधारों से नेता वर्ग प्रसन्न नहीं था। केवल कुछ लोग ऐसे थे जो सुधारों को कार्यान्वित करना चाहते थे। देश सुधारों का विरोधी था। गाँधी जी भी अब सुधारों के विरोधी हो चले थे। ख़िलाफ़त और पंजाब हत्याकाण्ड ने उनकी सारी धारणा बदल दी थी और वे धीरे-धीरे अँग्रेज़ी सरकार के वादों पर से विश्वास खोने लगे थे।

इधर हन्टर कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। सारा देश विक्षुब्ध हो उठा और ओडायर के ज़ुल्मों की याद फिर ताज़ा हो आई। सरकार ने मार्शल ला को ठीक बताया और जेनरल डायर का समर्थन किया। सरकार ने यह मान लिया कि जेनरल डायर ने अपनी ड्यूटी की, हालाँ कि "उसने आवश्यकता से अधिक सख़्ती की।" इसी समय ३० मई को बनारस में अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी की बैठक हुई जिसमें सरकार की क्रूरता और अन्याय के लिये उसके प्रति घृणा का प्रस्ताव पास किया गया। मुसलमानों को इतना ताव आया कि क़रीब १८००० आदमी भारत छोड़ कर अफ़ग़ानिस्तान जाने को तैय्यार हो गये। अफ़ग़ानिस्तान की सरकार ने उनको अपने यहाँ आने से रोक दिया। बहुत-सी क्षति उठाने के बाद 'हिजरत' का प्रोग्राम बन्द हो गया।

अब असहयोग के लिये देश में अनुकूल वातावरण पैदा हो गया। १ अगस्त को गाँधी जी अलीबन्धु के साथ देश भर में प्रचार करने निकले। ४ सितम्बर, १९२० को कलकत्ते का विशेष अधि-

वेशन हुआ। क़रीब-क़रीब सभी प्रान्तीय कॉंग्रेस कमेटियों ने असहयोग का समर्थन किया, केवल बंगाल और मद्रास से पूरी सम्मति नहीं मिली। यू० पी० ने असहयोग का समर्थन करते हुये ड्यूक ऑफ़ कनॉट को बायकाट करने का प्रस्ताव भी पास किया। कलकत्ता का विशेष अधिवेशन महत्वपूर्ण था। गाँधी जी ने अपने प्रस्तावों में कौंसिलों के बायकाट को भी शामिल किया था। इसका विरोध लाला जी और देशबन्धु दास ने किया। फिर भी गाँधी जी का प्रस्ताव पास हो गया। 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग गाँधी जी ने अपने प्रस्ताव में किया था। गाँधी जी का प्रोग्राम था सरकारी उपाधियों को छोड़ देना, आनरेरी मजिस्ट्रेटी का त्याग करना, म्युनिस्पल तथा ज़िला बोर्डों की मेम्बरी से इस्तीफ़ा देना, सरकारी दरबारों तथा दूसरे मौक़ों पर अनुपस्थित होना, सरकारी स्कूल, कालेज, कचहरी आदि का बॉयकाट करना, उनके स्थान पर आज़ाद पचायतों, स्कूलों आदि का निर्माण करना। मेसोपोटैमिया में जाने के लिये किसी प्रकार से भी तैय्यार न होना और विदेशी वस्त्रों का बायकाट करना।

उन प्रोग्रामों के संचालन के लिये अधिक से अधिक आत्म नियंत्रण, त्याग और क़ुर्बानी की ज़रूरत थी। बहुत काफ़ी विरोध के बाद गाँधी जी का प्रस्ताव पास हो गया। इसका असर भी हुआ। सरकार ने स्वयं इस बात को अपनी रिपोर्ट में माना है कि क़रीब ८०% आदमियों ने वोट नहीं दिया। कहीं-कहीं तो बैलेट बाक्स बिल्कुल ख़ाली ही लौट गये। सरकार ने भी इस आन्दोलन की

गम्भीरता को समझा और इसका मुक़ाबिला करने के लिये पूरी तैयारी की।

सन् १९२० की नागपुर की काँग्रेस में असहयोग आन्दोलन का रूप निखरा और उसने एक पौधे का रूप धारण किया। यही पौधा आगे चलकर एक विशाल वृक्ष बना। इस महान असहयोग आन्दोलन के प्रणेता गाँधी जी थे। नागपुर काँग्रेस के सदर वयोवृद्ध श्री सी० विजय राघवाचारियर थे। आपने कहा कि "आन्दोलन खिलाफ़त और पंजाब हत्याकाण्ड के लिये न चला कर 'स्वराज्य' के लिये चलाना चाहिये।" गाँधी जी ने इस राय को मान लिया।

नागपुर की काँग्रेस

इस तरह काँग्रेस का विश्वास बदला, काँग्रेस की नीति बदली, काँग्रेस का विधान बदला, काँग्रेस का रूप बदला, काँग्रेस में आमूल परिवर्तन हुआ। इसका सारा श्रेय गाँधी जी को है। कलकत्ते के प्रस्तावों को नागपुर में मान लिया गया और नागपुर ने भारत वर्ष में सक्रिय असहयोग का नारा दिया। चर्खा पर ज़ोर दिया गया। अहिंसा को महत्व प्रदान किया गया। आपस में पूरा सहयोग और सरकार से पूरा असहयोग का नारा दिया गया। जीवन के प्रत्येक अंग में अहिंसा का प्रयोग ठीक समझा गया। काँग्रेस का ध्येय "तमाम शान्तिपूर्ण व वैधानिक तरीक़ों से स्वराज्य लेना" माना गया। अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के ३५० सदस्य बनाये गये। इस प्रकार परिवर्तन होने से काँग्रेस के कार्यों में सुदृढ़ता आई।

नागपुर काँग्रेस के बाद हम भारतीय राष्ट्रीय इतिहास के उस

स्थल पर पहुँचते हैं जो अपना विशेष महत्व रखता है। इसी ज़माने में भारतीय राष्ट्रीयतावाद ने अपना जौहर दिखाया, भारतीय जनता ने संगठित रूप से सख्तियाँ सहीं और सरकार से लोहा लिया। हिन्दू-मुसलमानों में जो एकता स्थापित हुई उसको देखकर सरकारी अफ़सरों को दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी। राष्ट्र में नव जीवन, नवप्राण फूँकने का सारा श्रेय गाँधी जी को है। कहा जाता है कि वस्तु स्थिति ऐसी थी कि किसी न किसी प्रकार उभार होना आवश्यक था। परन्तु उस उभार और उफ़ान को संगठित रूप देना गाँधी जी का ही काम था। इसीलिये इस युग के प्रवर्तक गाँधी जी माने जाते हैं।

पाठकों ने ग़ौर किया होगा कि अमृतसर, कलकत्ते और नागपुर में गाँधी जी का ही हाथ सबके ऊपर रहा। उन्होंने काँग्रेस को नया मार्ग सुझाया, नई शक्ति दी। गाँधी जी भारतीय राष्ट्रीय इतिहास में प्रथमबार क्रान्तिकारी ढंग से जननायक के रूप में आये। अगले पृष्ठों में अब हम उनके असहयोग आन्दोलन का अध्ययन करेंगे।

—:❀:—

५

गाँधी–युग (२)

(असहयोग-आन्दोलन)

[बायकाट का आन्दोलन—चुनावों का बायकाट—शिक्षालयों का बायकाट—अदालतों का बायकाट—स्वदेशी आन्दोलन—पुलिस और फ़ौजों का बायकाट—मोपला बग़ावत—चिराला—चटगाँव—प्रिंस आफ़ वेल्स का आगमन—सुलहनामा—अहमदाबाद की काँग्रेस—पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव—बारदोली सत्याग्रह—चौरा चौरी—बन्दी गाँधी—गया काँग्रेस—१६२३ की मुख्य घटनायें—दिल्ली का विशेष अधिवेशन—१६२४, बेल गाँव की काँग्रेस ।]

गाँधी जी का असहयोग आन्दोलन सार्वदेशिक रूप लेकर चला था। जीवन के प्रत्येक अंग पर इसकी छाप पड़ी। हममें से कितने ही लोग उस ज़माने में छोटे बच्चे रहे होंगे। परन्तु आज भी काँग्रेस में ऐसे लोगों की संख्या अधिक है जो उस ज़माने में असहयोग आन्दोलन में शामिल हुये थे। जनता के सामने नया प्रोग्राम आया था। और उसे नये प्रकार का नेता मिला था। इस लिये नये जोश और हिम्मत के साथ जनता ने इस आन्दोलन में हिस्सा लिया। देश में इस कोने से उस कोने तक आज़ादी की लहर दौड़ गई। लोगों को विश्वास था एक साल में आज़ादी मिलेगी। गाँधी जी की आवाज़ घर घर पहुँची, हिन्दू, मुसलमान, अमीर,

गरीब, सभी ने इस आवाज़ को सुना। लोग बताते हैं कि हज़ारों की भीड़, जनता का पूरा सहयोग, हिन्दू मुस्लिम एकता, यह सब चीज़ें उसी ज़माने में देखने को मिलती थी। उस समय विद्यार्थियों का कोई संगठन नहीं था, फिर भी सहस्रों विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूलों और कालेजों का बायकाट किया, सैकड़ों मास्टरों और प्रोफ़ेसरों ने सरकारी विद्यालयों में पढ़ाना छोड़ दिया। वकीलों ने वकालत छोड़ी, कितने सरकारी अफ़्सरों ने अपनी नौकरियाँ छोड़ दीं। विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलीं और स्वदेशी वस्त्रों का इस्तेमाल शुरू हुआ। खद्दर का प्रयोग इसी ज़माने से शुरू हुआ। लोगों के रहन सहन में सादगी आई और सबको परिवर्तन, नव जीवन और नवोत्थान का अनुभव हुआ।

बॉयकॉट का आन्दोलन कई क्षेत्रों में था। सबसे महत्वपूर्ण

बायकाट

बायकाट चुनावों का हुआ। म्युनिस्पिैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, कौंसिल आदि का बायकाट काँग्रेस के प्रोग्राम में शामिल था। यह बायकाट बहुत सफल हुआ। कौंसिलों के चुनाव में क़रीब ८०% आदमी शामिल नहीं हुये। बहुत सी जगहों पर तो ख़ाली बैलेट बाक्स ही वापस गये। इस सफल बायकाट के कारण कौंसिलों तथा बोर्डों का महत्व बहुत कम हो गया।

शिक्षालयों का बायकाट भी बहुत सफल हुआ। सहस्रों की संख्या में विद्यार्थियों ने सरकारी शिक्षालयों का बॉयकॉट किया। प्रोफ़ेसरों तथा मास्टरों ने भी इस्तीफ़े दिये। साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा-लय भी सैकड़ों की तायदाद में खुले। कलकत्ते में नेशनल कालेज,

पटना में नेशनल कालेज, और बिहार विद्यापीठ, अलीगढ़ में नेशनल मुस्लिम युनीवर्सिटी, बंगाल में नेशनल युनिवर्सिटी, बनारस में काशी विद्यापीठ, गुजरात में गुजरात विद्यापीठ, महाराष्ट्र में तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, आन्ध्र में राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुई। हज़ारों की तायदाद में छोटे बड़े और भी राष्ट्रीय शिक्षा के केन्द्र खुले। इस प्रकार सारे देश में राष्ट्रीय विद्यालय खुल गये। इन शिक्षालयों में हिन्दुस्तानी का प्रयोग होता था और कताई बुनाई भी सिखाई जाती थी। हिन्दुओं को इस्लाम धर्म की भी शिक्षा दी जाती थी और मुसलमान गीता का अध्ययन किया करते थे। दोनों सम्प्रदायों के लोग एक दूसरे के धर्मों की इज़्ज़त करने लगे। मन्दिरों में मौलानाओं ने भाषण दिये और मस्जिदों में हिन्दू नेताओं ने तक़रीरें कीं। जलूसों में क़ौमी नारा, बन्देमातरम्, अल्ला हो अकबर, साथ साथ ही पुकारे जाते थे और हिन्दू, मुसलमानों ने मुक्त कण्ठ से ये नारे लगाये।

अदालतों के बायकाट के सिलेसिले में गाँवों में पंचायतें बनीं और वहाँ के मुक़दमें वहीं फ़ैसल होने लगे। शहरों में देहाती मुक़दमेबाज़ों की आमद कम हो गई। शहरों में भी पंचायतें होने लगीं। बड़े से बड़े मुक़दमें इन्हीं पंचायतों में फ़ैसल होने लगे। यह प्रोग्राम कितना सफल हुआ इसकी दो तीन मिसालें काफ़ी होंगी।

बात बनारस की है। वहाँ सुपरिन्टेन्डेंट पुलिस ने अपने बैरे को बेक़सूर मार दिया, उसने आकर काँग्रेस अदालत में प्रार्थना की कि उसके साथ न्याय होना चाहिये। काँग्रेस अदालत ने पुलिस

अफ़सर के पास हाज़िर होने के लिये सम्मन भेजा, उसने आने से इन्कार कर दिया। बाद में एक तरफ़ा फ़ैसला हुआ और उस अफ़्सर के ऊपर काँग्रेस अदालत ने १५) रु० जुर्माना किया, उस अफ़्सर ने रुपये देने से इन्कार कर दिया, इस पर तमाम बैरों, 'नौकरों' आदि ने उस अफ़सर ने यहाँ का काम करने से इन्कार कर दिया, मजबूर होकर सुपरिन्टेन्डेन्ट को १५) रु० जुर्माना अदा करना पड़ा।

इसी प्रकार चौक थाने के थानेदार ने एक मकान का किराया नहीं दिया और मकान छोड़ने से भी इन्कार कर दिया, इस पर काँग्रेस अदालत में मुक़दमा चला और थानेदार को उसका फ़ैसला मानना पड़ा। एक व्यक्ति ने बनारस के अदालत में इसी पर ७०,००० रु० का दावा किया। अदालत में उस आदमी की डिग्री हो गई। जो आदमी हार गया था, उसने काँग्रेस अदालत में अपील की। काँग्रेस अदालत ने दोनों में सुलह करा दिया और सब मामला तय हो गया। इस प्रकार की सैकड़ों मिसालें मिल सकती हैं जब कि हज़ारों रुपये के मुक़दमें काँग्रेस अदालत ने बिना किसी ख़र्च के तय करा दिये और दोनों पक्षों को काँग्रेस-अदालत के न्याय से सन्तोष हुआ।

सब से अधिक ज़ोर स्वदेशी आन्दोलन ने पकड़ा। होलियाँ जलाई गईं और विदेशी वस्त्रों और चीज़ों का बायकाट हुआ। चर्ख़े का प्रचार तेज़ी से हुआ और गाँव गाँव में जुलाहों ने कपड़े बिनना शुरू कर दिया। 'तिलक स्वराज्य फ़ण्ड' को जो चन्दे मिले उसमें अपील से १५ लाख रुपये अधिक आ गये। २० लाख चर्ख़े बन गये

और घर घर में चरखे चलने लगे। अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी ने यह निश्चय किया कि काँग्रेस के लोग विदेशी वस्त्रों का बिल्कुल बायकाट १ ली अगस्त से करें। खद्दर राष्ट्रीय बाना हो गया। स्वदेशी वस्तु का इस्तेमाल गौरवपूर्ण माना जाने लगा। विदेशी चीज़ों और कपड़ों को बुरी नज़र से देखा जाने लगा। मिल मालिकों से भी यह अपील की गई कि वे विदेशों का आर्डर पूरा करना बन्द कर दें और स्वदेशी वस्तुओं का उत्पादन आरम्भ करें। इन लोगों ने राष्ट्र की इस स्वदेशी-भावना से फ़ायदा उठाया और आज दिन सैकड़ों ऐसी मि[illegible] हैं [illegible] स्वदेशी कपड़ा बनाती हैं। हमारी यही स्वदेशी की भा[illegible] य पूँजीवाद की जन्मदात्री और उत्साहदायिका हुई।

पुलिस और फ़ौजों का बायकाट भी जनता का अधिकार माना गया। अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी ने साफ़ एलान किया "सरकारी नौकरियों और फ़ौजों से इस्तीफ़ा देने के लिये अपील करने का पूरा अधिकार जनता को है, क्योंकि सरकार ने जनता का विश्वास खो दिया है।" इसी एलान पर बहुत से पुलिस वालों और उनके अफ़सरों ने नौकरियाँ छोड़ दीं। सरकारी अफ़सरों ने ने भी बड़ी संख्या में इस्तीफ़े दे दिये।

मादक पदार्थों का बायकाट, पिकेटिंग और अपील के ज़रिये हुआ। धारवार, मातियान आदि स्थानों पर सरकार से मुठभेड़ हुई। थाना जिलाबोर्ड ने अपने यहाँ मादक पदार्थों का बिल्कुल मनाही कर दी। अखिल भारतीय काँग्रेस ने सभी जिला बोर्डों तथा शहर बोर्डों से इस प्रकार का निश्चय करने की अपील की।

इसी प्रोग्राम के विरोध में कई स्थलों पर सरकार ने ज़ुल्म किया। ऐसे स्थानों में धारवार, मातियान, गुन्टूर, चिराला, पेराला, केराला, सीमान्त प्रदेश आदि का नाम लिया जा सकता है। इसी सिलसिले में यू० पी० प्रान्त में पुलिस की तरफ़ से सख़्तियाँ हुईं और कई हल्क़ों में बात चली कि अब समय आ गया है कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन (Civil Disobedience Movement) शुरू कर दिया जाय। पर इस बात को काँग्रेस ने स्वीकार नहीं किया और देश को अधिक तैयारी के लिये चेतावनी दी। उसी समय प्रिन्स आफ़ वेल्स भारत में आने वाले थे। काँग्रेस ने निश्चय किया कि "उनके आने के सम्बन्ध में जो कुछ भी उत्सव हों उनमें जनता भाग न ले"।

मोपला बग़ावत

इसी बीच में कई और दुर्घटनायें हुईं। उनका भी थोड़े में ज़िक्र कर देना अनुचित न होगा। सबसे भयानक और दुःखप्रद घटना थी मलाबार प्रदेश की। मोपला बग़ावत के बारे में बहुत भ्रम फैला है। इसलिये इसका ज़िक्र कर देना ज़रूरी है। मलाबार प्रान्त में मोपला (मुसलमानों में एक कट्टर धार्मिक और पिछड़ा हुआ वर्ग) लोग रहते हैं। इनके पूर्वज अरब से आये थे। इन लोगों ने अपनी शादी ब्याह का सम्बन्ध स्थानीय लोगों से ही कर लिया। खेती और थोड़ा बहुत व्यापार करना इनका पेशा है। धार्मिक मामलों में ये लोग बहुत कट्टर होते हैं और अक्सर इनके दंगे होते रहते हैं। इनको दबाने के लिये सरकार को ख़ास क़ानून (Mopla Outrages Act) बनाने पड़े थे। सरकार आरम्भ से ही चाहती

थी कि मोपला लोगों तक असहयोग आन्दोलन की चिनगारी न पहुँचने पावे। लेकिन आन्दोलन केराला प्रान्त में पहुँच ही गया। जब यहाँ असहयोग के प्रचार के लिये श्री याकूब हसन, माधवन नैयर, गोपाल मेनन, मुई उद्दीन कोया आदि पहुँचे तो इन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। केरल प्रान्त में इस कारण जोश बढ़ गया। पुलिस की सख़्ती बढ़ी और काँग्रेस तथा ख़िलाफ़त के कार्यकर्ता बड़ी तादाद में गिरफ़्तार कर लिये गये। सरकार ने प्रान्त के उस हिस्से पर (बालवनाद और अरनाद तालुका) जहाँ मोपला लोगों की ही अधिक आबादी थी १४४ धारा लगा दी। मोपला लोगों के धार्मिक नेताओं (थुंगलों) की बेइज़्ज़ती की जाने लगी। मोपला लोगों ने इस पर बग़ावत शुरू कर दी। उनकी बग़ावत ने हिंसात्मक रूप धारण किया। मोपला लोगों के पास काफ़ी हथियार थे। बाक़ायदा एक फ़ौजी ढंग की लड़ाई शुरू हो गई। वहाँ मार्शल लॉ लगा दिया गया। मोपला-विद्रोह ने जल्दी ही साम्प्रदायिक रूप अख़्तियार कर लिया, और सैकड़ों बेक़सूर हिन्दू तलवार की घाट उतार दिये गये। आम लोगों के मकान भी जला दिये गये। अँग्रेजों के जान माल को भी ख़तरा पैदा हो गया, परंतु श्री एम० पी० नारायन मेनन के प्रयत्न से उनका कुछ नुक़सान नहीं हुआ। सरकार ने मेनन महाशय को बाद में राजबन्दी बनाया और राज-द्रोही क़रार देकर सन् १९२२ ई० में आजन्म काले पानी की सज़ा दे दी। मेनन महाशय सितम्बर सन् ३४ में अपनी पूरी सज़ा काट कर लौटे। मोपला-विद्रोह आरम्भ में राजनैतिक था, इसलिये काँग्रेस ने उसका समर्थन किया, परन्तु बाद में

उसने साम्प्रदायिक और हिंसात्मक रूप धारण किया, इससे देश को दुःख हुआ।

मोपला बग़ावत का असर देश की राजनीति पर बुरा हुआ। मोपलाओं ने बहुत से हिन्दुओं को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया था, इसके जवाब में हिन्दुओं ने शुद्धि आन्दोलन चलाया। इस तरह साम्प्रदायिक झगड़े बढ़ने लगे और अजमेर, मुल्तान, सहारनपुर, आगरा, इलाहाबाद, दिल्ली और कोहाट में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। हिन्दुओं ने महावीर दल और मुसलमानों ने अली दल तैय्यार किये। साथ ही साथ गाय के सवाल के अलावा मस्जिद के सामने बाजे का सवाल उठ खड़ा हुआ। इस तरह साम्प्रदायिक वैमनस्य का एक नया युग आया जिससे देश की आज़ादी की लड़ाई को बहुत नुकसान पहुँचा।

असहयोग की आवाज़ चिराला में भी पहुँची। स्वायत्त मन्त्री ने जब इस स्थान में म्युनिस्पैलिटी बनानी चाही तो लोगों ने इसका विरोध किया। गाँधी जी की राय मानकर लोगों ने उस स्थान को ही छोड़ दिया जहाँ म्युनिस्पैलिटी बन रही थी। आन्ध्र रत्न डी० गोपालकृष्णैया ने काफ़ी मेहनत से वहाँ के लोगों को जाकर एक दूसरे स्थान पर बसाया। चिराला के लोग बहुत दिनों तक झोपड़ियों में रहे। सरकार ने सारे नेताओं को पकड़ लिया। साल भर तक यह आन्दोलन चलता रहा, बाद में लोगों को फिर चिराला वापस आना पड़ा।

चटगाँव में इसी ज़माने में श्री सेन गुप्त की देख-रेख में मज़दूरों की एक बड़ी हड़ताल चली। काँग्रेस ने इस हड़ताल में १ लाख

रुपया ख़र्च किया, परन्तु जब सारे के सारे नेता पकड़ लिये गये तो यह हड़ताल भी टूट गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस असहयोग आन्दोलन ने देश भर में लड़ने एक का माद्दा पैदा कर दिया।

प्रिंस आँफ़ वेल्स का आगमन

ऐसी ही स्थिति में १७ नवम्बर, १९२१ ई० को प्रिन्स आफ़ वेल्स भारत आये। आप साल भर पहिले ही आकर नयी असेम्बली का उद्घाटन करने वाले थे परन्तु राजनैतिक वातावरण ने आपका आना रोक दिया। कॉंग्रेस ने बायकाट का निर्णय कर ही लिया था। जिस दिन आप बम्बई में आये वहाँ दंगा हो गया और ३५ आदमी इस दंगे में मारे गये। क़रीब ४०० आदमी घायल हुये। श्रीमती सरोजिनी नायडू और गाँधी जी के प्रयत्न करने पर भी यह दंगा बन्द न हो सका। महात्मा गाँधी को ५ दिन तक उपवास करना पड़ा। प्रिंस के आगमन के ही कारण सारे देश में स्वयं सेवक संगठन हो गया। इसके पहिले वालंटियर आन्दोलन असंगठित था और वह पूर्णतया राजनैतिक भी नहीं था। हाँ, खेलाफ़त—स्वयं सेवक संगठित थे और ड्रिल परेड भी करते थे। प्रिंस के आने के समय एकाएक सारे देश में स्वयं-सेवक संगठन ज़ोरों से हो गया। इसी आन्दोलन के कारण हज़ारों आदमी गिरफ़्तार हुये और जेल गये। देशबन्धु दास अपनी पत्नी के पास कलकत्ते में गिरफ़्तार हुये। यू० पी० और पंजाब में भी गिरफ़्तारियाँ शुरू हुईं। लाला जी, पं० मोतीलाल और पं० जवाहर लाल जेल भेजे गये। १४४ और १०८ दफ़ाओं को इस्तेमाल में लाया गया। इस

ज़माने में सबसे अधिक सख्ती बंगाल, यू० पी०, और पंजाब में हुई।

पं० मदन मोहन मालवीय और श्री मोहम्मद अली जिन्ना की मध्यस्थता में सरकार और काँग्रेस में सुलहनामे की बात-चीत तो चली पर असफल रही। इससे देश भर में बायकाट का प्रोग्राम ज़ोर शोर से चला और प्रिंस ऑफ़ वेल्स को कहीं भी स्वागत सत्कार जनता की ओर से नहीं मिला। इसी ज़माने में अहमदाबाद की काँग्रेस हुई।

सुलहनामा

अहमदाबाद काँग्रेस के बारे में कुछ लिखने के पहिले एक दो बातें और लिखनी हैं। प्रिंस आफ़ वेल्स के आगमन के समय बायकाट का प्रोग्राम जिस अद्वितीय सफलता से पूरा हुआ उससे तीन बातें साफ़ हो गईं। एक तो यह कि जनता को सरकार की बातों पर बिल्कुल भरोसा नहीं रह गया, दूसरी बात यह कि काँग्रेस देश की एक मात्र राष्ट्रीय संस्था हो गई, और तीसरी बात यह कि गाँधी जी देश के सर्वमान्य नेता हो गये। देश ने उनके प्रोग्राम को अपनाया। इन सब बातों को देखते हुये सन् २१ का ज़माना एक महत्वपूर्ण युग परिवर्तक ज़माना माना जाता है। यह संक्रान्तिकाल था। इसी समय लिबरलों और दूसरे लोगों ने काँग्रेस को छोड़कर लिबरल फ़ेडरेशन को जन्म दिया।

अहमदाबाद की काँग्रेस एक बड़े हलचल के ज़माने में हुई। गाँधी जी ने कहा था कि अगर देश ने उनके प्रोग्राम को पूरी तरह कार्यान्वित किया तो वे साल भर में स्वराज्य लादेंगे। साल ख़त्म होने वाला था और गाँधी जी के सारे प्रोग्राम यथा साध्य कार्या-

न्वित भी किये गये थे, फिर भी स्वराज्य की झलक दिखाई नहीं दी। ३०,००० राष्ट्र सेवक जेलों में बन्द थे। फिर भी जन-सत्याग्रह आरम्भ नहीं हुआ। गाँधी जी ने स्वयं माना है कि "जन आन्दोलन (सत्याग्रह) का क्या रूप होगा इस पर उन्होंने विचार भी नहीं किया था।" फिर क्या होगा? आगे काँग्रेस का क्या आदेश होगा? विचार किया गया कि लगान-बन्दी का आन्दोलन शुरू किया जाय। गुन्टूर और गुजरात में इसको शुरू करने की बात थी। इस अधिवेशन के सभापति श्री देशबन्धु चितरंजनदास थे, परन्तु वे जेल में थे इस लिये उनके स्थान पर हकीम अजमल खाँ ने सभापति का आसन ग्रहण किया। हकीम जी हिन्दू-मुस्लिम एकता की मूर्ति थे। यहाँ तक कि हिन्दू महासभा दिल्ली के कान्फ्रेन्स में आपही सभापति चुने गये थे। ऐसा व्यक्ति, जिस पर दोनों सम्प्रदायों का पूरा विश्वास हो, काँग्रेस के सभापति होने का अधिकारी था। हकीम जी ने थोड़े में ही अपना भाषण समाप्त किया, उसके बाद दासबाबू का भाषण पढ़ा गया। दासबाबू ने अपने अधिकार पूर्ण ढंग से देश की राजनैतिक परिस्थिति का विश्लेषण किया और देश को अधिक तैयारी करने के लिये आमंत्रित किया। अपने कहा—"हम सम्मान खोकर शान्ति नहीं चाहते। जब तक हमको अपने सभी मामलों को तय करने, अपने व्यक्तित्व को उन्नत करने और अपने भविष्य का निर्णय करने का अधिकार नहीं मिल जाता, हम समझौता नहीं कर सकते।

अहमदाबाद की काँग्रेस

दासबाबू के ये शब्द सामयिक ही नहीं थे, भविष्य निर्देशक भी थे। इस भाषण ने अहमदाबाद की काँग्रेस के लिये पृष्ठ भूमि का का काम किया। अधिवेशन का प्रधान प्रस्ताव असहयोग पर एक 'थीसिस' की तरह था। प्रस्ताव में कहा गया :—

"अब तक के असहयोग आन्दोलन से काँग्रेस को पूरा सन्तोष है, काँग्रेस यह निश्चय करती है कि जब तक कि पंजाब हत्याकांड और खिलाफ़त के जुल्म बन्द नहीं किये जायेंगे और 'स्वराज्य' की स्थापना नहीं हो जायेगी और जब तक कि भारत का शासन सूत्र ग़ैर ज़िम्मेदार हाथों से निकल कर जनता के हाथों में न आ जायेगा तब तक अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन चलता रहेगा। वाइसराय महोदय ने जो धमकियां दी हैं तथा उसके अनुसार सारे देश में जो सख्तियां शुरू हुई हैं, वालंटियर संगठन, सभा आदि करने में जो बाधायें उपस्थित की गई हैं, कांग्रेस कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार किया गया है और इस प्रकार खिलाफ़त और काँग्रेस के कार्यों को रोका गया है, इसका जवाब देने के लिये काँग्रेस का रोज़ मर्रा का काम रोककर, लोगों को वालंटियर संस्थाओं में भर्ती हो जाना चाहिये.........इस काँग्रेस को विश्वास है कि १८ वर्ष के ऊपर का प्रत्येक नौजवान इस संस्था में भर्ती हो जायेगा।.........यह काँग्रेस राष्ट्रीय विद्यालयों के बालिग़ विद्यार्थियों को आदेश देती है कि वे इस स्वयं-सेवक संस्था में फ़ार्म भर कर भर्ती हो जायँ......।"

इस प्रस्ताव को अध्ययन करने से हमको पता चल जाता है कि काँग्रेस ने दृढ़तापूर्वक सरकार के ज़ुल्मों का सामना करने का निश्चय कर लिया था और उसको देश की कर्तृत्वशक्ति पर भी पूरा विश्वास था।

मौलाना हसरत मोहानी ने पूर्णस्वतन्त्रता का प्रस्ताव रखा। इसको गाँधी जी मानने के लिये तैयार नहीं थे, काफ़ी वाद-विवाद के बाद प्रस्ताव गिर गया। गाँधी जी पूर्णस्वतन्त्रता चाहते थे, परन्तु उनको विश्वास नहीं था कि देश में इतनी एकता आ गई है कि वह पूर्णस्वतन्त्रता के बोझ को सम्भाल सके। उनका विचार था कि हिन्दू मुसलमानों में अभी अटूट एकता नहीं आई है। जब तक पूर्ण एकता क़ायम न हो जाय, तब तक न तो पूर्ण स्वाधीनता ही मिल सकती है, न उसको क़ायम ही रखा जा सकता है।

पूर्णस्वतन्त्रता

अहमदाबाद की काँग्रेस में एक ख़ास बात यह थी कि उल्माओं और मौलाना लोगों ने क़ुरान मजीद, शरीयत और हदीस के अनुसार प्रस्तावों का विश्लेषण करके उनको जनता के सामने रखा, मुस्लिम जनता को इस वजह से इन प्रस्तावों को समझने में बड़ी आसानी हुई।

अहमदाबाद की काँग्रेस ज्योंही समाप्त हुई, उसी समय देश के नेताओं का, जनवरी, १९२२ में एक सम्मेलन बम्बई में हुआ। काँग्रेस की ओर से केवल गाँधीजी इसमें शामिल हुये थे। इस सम्मेलन ने यह प्रयत्न किया कि किसी प्रकार सरकार और काँग्रेस में समझौता हो जाय। इस सम्मेलन ने यह निश्चय किया कि जब तक समझौता चलता रहे तब तक अहमदाबाद काँग्रेस द्वारा निश्चित सत्याग्रह आन्दोलन रोक दिया जाय। गाँधीजी ने यह स्वीकार कर

सर्वदल सम्मेलन

लिया। असहयोगियों तथा दूसरे वन्दियों को छोड़ने का भी प्रस्ताव पास हुआ। सरकार की अत्याचार पूर्ण नीति का विरोध किया गया और शीघ्र ही एक गोल मेज़ सम्मेलन की माँग पेश की गई, जिसके द्वारा खिलाफ़त, पंजाब हत्याकाण्ड और स्वराज्य का प्रश्न हल किया जाय। काँग्रेस की कार्यकारिणी ने इन प्रस्तावों को मान लिया, परंतु वायसराय ने सुलह की शर्तों को मानने से इनकार कर दिया। इसके बाद ही गाँधी जी ने अपना फरवरी १, १९२२ वाला पत्र वाइसराय के पास भेजा जिसमें आपने वाइसराय को सत्याग्रह आरम्भ करने की सूचना दी।

बारदोली-सत्याग्रह और चौराचोरी

गाँधीजी ने लगानबन्दी आन्दोलन के लिये बारदोली को चुना। गाँधीजी चाहते थे कि सारा देश बारदोली-प्रयोग को ध्यान से देखे। इसीलिये आपने और कहीं लगानबन्दी आन्दोलन शुरू करने की सम्मति नहीं दी। बाद में काफ़ी दबाव पड़ने पर आपने गुन्टूर तथा दूसरे स्थानों पर भी सत्याग्रह की इजाज़त दे दी।

बारदोली सूरत ज़िले में एक छोटा सा तालुका है, जिसकी आबादी उस समय ८७,००० थी। २९ जनवरी को यह निश्चय हुआ कि श्री विट्ठल भाई पटेल की अध्यक्षता में सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया जाय। बारदोली को इसलिये चुना गया था कि वहाँ के लोगों ने काँग्रेस की सारी शर्तों को मान ली थी। आन्दोलन पहिले ही शुरू हो जाता परन्तु बम्बई के दंगे और सर्वदल सम्मेलन के कारण तारीख़ बढ़ा दी गई।

बीच ही में एक और भी घटना हो गई। बात गोरखपुर

चौराचौरी की है। यहाँ जनता पुलिस से बिगड़ गई और आपस में मुठभेड़ हो गई। पुलिस थाने में आग लगने के कारण २१ कान्स-टेबिल और एक थानेदार की हत्या हो गई। ५ फ़रवरी १९२२ ई० की यह बात है। उधर मद्रास में जब प्रिंस ऑफ़ वेल्स पहुँचे तो वहाँ भी दंगा हो गया। बम्बई में दंगा हो ही चुका था जिसमें ५१ आदमी मरे थे और ४०० आदमी घायल हुये थे, इसलिये सारे देश में हिंसा का एक वातावरण पैदा हो गया था। जनता के ऊपर कोई नियन्त्रण नहीं रह गया था। कहीं कहीं लूट मार भी शुरू हो गई थी।

१२ फ़रवरी को बारदोली में काँग्रेस कार्यकारिणी की बैठक हुई और देश भर का जन आन्दोलन एकाएक रोक दिया गया। रचनात्मक कार्यों पर ज़ोर दिया गया, गुन्टूर ज़िले में, जहाँ कि ५% भी लगान अदा नहीं हुई थी, १० फ़रवरी तक सब लगान अदा करा दी गई। बारदोली-निर्णय से सबको संतोष नहीं हुआ, कुछ लोग गाँधी जी की बात बिलकुल सही मानते थे; दूसरे लोग केवल थोड़ी सी हिंसा हो जाने के कारण देशव्यापी आन्दोलन रोक देने के विरोधी थे। २४ और २५ फ़रवरी को दिल्ली में अखिल भारतीय काँग्रेस की बैठक हुई। इस बैठक ने बारदोली निर्णय को मान लिया लेकिन व्यक्तिगत सत्याग्रह की इजाज़त कुछ ख़ास जगहों के लिये दे दी। काँग्रेस ने सत्याग्रह में पूरा विश्वास फिर से प्रकट किया और उचित वातावरण पैदा होने पर सत्याग्रह आरम्भ करने की बात दुहराई। साथ ही रचनात्मक प्रोग्राम तेज़ी से चलाने की बात कही। व्यक्तिगत सत्याग्रह वाले प्रस्ताव से वे लोग बड़े परेशान

हुये जो यह चाहते थे कि किसी प्रकार गाँधी जी गिरफ़ार न हों। पं० मोतीलाल और लाला लाजपतराय इसलिये नाराज़ थे कि गाँधी जी ने चौराचौरी की ग़लती के कारण सारे देश को सज़ा दे दी। ये लोग आन्दोलन जारी रखना चाहते थे। गाँधी जी यह कहते थे कि जो जेल में हैं उनसे बाहर के आन्दोलन से कोई मतलब नहीं; बाहर के आन्दोलन के ज़िम्मेदार वे लोग हैं जो जेल के बाहर हैं और जिनको देश के वातावरण का व्यक्तिगत परिचय है। डा० मुन्जे, बाबू हरदयाल नाग सभी लोगों ने गाँधी जी का विरोध किसी न किसी रूप में किया। परन्तु इन लोगों का प्रस्ताव बहुमत से गिर गया और गाँधीजी की बात ही मानी गई।

बन्दी-गान्धी

१३ मार्च को गाँधीजी गिरफ़्तार कर लिये गये। सरकार ने फ़रवरी में ही उनको गिरफ़्तार कर लेने का निश्चय किया था, परन्तु वह मौक़ा ढूँढ़ रही थी। १८ मार्च को उनका मुक़दमा शुरू हुआ। सारे देश में सनसनी फैल गई, परन्तु गाँधीजी ने कह रखा था कि उनके पकड़े जाने के बाद देश में किसी प्रकार का प्रदर्शन नहीं होना चाहिये। देश ने उनके इस आदेश को मान लिया। देश में कोई प्रदर्शन नहीं हुआ। जब गाँधीजी १८ मार्च को कोर्ट में लाये गये उस समय का दृष्य हृदयग्राही और मार्मिक था। "गाँधीजी क़ानून की नज़रों में एक मुजरिम थे, परन्तु जब वे अपने शान्त और दुबले और अजेय शरीर पर मोटे खद्दर की लँगोटी लगाकर, अपने भक्त और साथी बन्दी शंकरलाल बैंकर के साथ पहुँचे, सारा कोर्ट

एकाएक उनके सम्मान के लिये उठकर खड़ा हो गया।" जब सज़ा पाकर गाँधीजी लौटने लगे उस समय लोगों की आँखों में आँसू आ गये थे।

गाँधीजी ने जो वक्तव्य कोर्ट के सामने दिया वह अपूर्व था, आज भी लोग उसको याद करते हैं। चौराचौरी के बारे में कहते हुये गाँधीजी ने कहा :—

"मैं जानता था कि मैं आग के साथ खेल रहा हूँ, यह जानते हुए भी मैंने इस ख़तरे को मोल लिया। अगर मैं आज़ाद हो जाऊँ तो मैं फिर भी ऐसा ही करूँगा, अगर ऐसा न करूँ तो मैं अपने कर्तव्य से च्युत हो जाऊँगा। यह तो विश्वास का एक अंश है। मुझे चुनाव करना था। या तो मैं उस व्यवस्था के सामने झुक जाता जिसने मेरे देशवासियों को अकथनीय नुक़सान पहुँचाया है या मैं अपने देशवासियों के आवेश के उभर जाने का ख़तरा उठाता। यह भी उस समय जब कि वे मेरे शब्दों की सचाई को समझते थे। मैं जानता हूँ कि मेरे देशवासियों ने कभी कभी मतवालेपन का काम किया है, मुझे इसके लिये बहुत दुःख है। मैं यहाँ मामूली सज़ा नहीं बल्कि सख्त से सख्त सज़ा के लिये आया हूँ। मैं दया की भिक्षा नहीं माँगता। मैं तो यहाँ इसलिये आया हूँ कि मुझे क़ानून के अनुसार, जानबूझ कर जुर्म करने के लिये और मेरे अनुसार, एक नागरिक का सबसे बड़ा कर्तव्य करने के मिये, अधिक से अधिक और सख्त से सख्त सज़ा दी जाय। जज महाशय, जैसा कि मैं अपने लिखित वक्तव्य में अभी कहने वाला हूँ, आपके सामने केवल दो ही रास्ते हैं, या तो आप अपने पद से इस्तीफ़ा दे दें या आप मुझे सबसे अधिक सख्त सज़ा दें, अगर आप समझते हैं कि जिस क़ानून के शासन में आप सहयोग दे

रहे हैं वह जनता की भलाई के लिये है। मैं आशा नहीं करता कि आपके अन्दर ऐसा परिवर्तन अभी हो जायेगा, परन्तु मेरे बयान के समाप्त होते तक शायद आपको इस बात की झाँकी मिल जायेगी कि मेरे मन के अन्दर कौन सा तूफ़ान उठ रहा है जिसने मुझे ऐसा मतवालेपन का काम करने के लिये मजबूर किया।"

लोकमान्य तिलक की तरह गाँधीजी को भी ६ साल की सज़ा हुई। बारदोली का सत्याग्रह अनिश्चित काल के लिये टल गया।

गाँधी जी की गिरफ़्तारी के बाद कई महत्व पूर्ण घटनायें हुईं।

गया काँग्रेस

अकाली दल का अहिंसात्मक सत्याग्रह गौरव पूर्ण था। इसके बाद गया काँग्रेस हुई। इस काँग्रेस में तीन तरह के ख़याल लोगों के दिमाग़ में थे। कुछ लोग यह चाहते थे कि काँग्रेस के प्रोग्राम में कोई परिवर्तन न हो। ये लोग गाँधी जी की अनुपस्थिति में काँग्रेस प्रोग्राम में कोई भी रद्दो बदल करना अनुचित समझते थे। दूसरे वे लोग थे जो कौंसिलों में जाकर अड़ंगा लगाना चाहते थे। इनका कहना था कि चुन लिये जाने के बाद राजभक्ति की शपथ न ली जाये और कौंसिलों में जाया भी न जाय। तीसरे वे लोग थे जो चुनाव पूरी तरह जीत कर कौंसिलों पर पूरा क़ब्ज़ा करना चाहते थे। काफ़ी विचार विनिमय और गर्मा गर्मी के बाद गाँधी जी के अनुयायी 'अपरिवर्तन वादियों' की जीत हुई, हालाँकि पं० मोतीलाल और दास बाबू ने उनका विरोध किया। कौंसिलों का बायकाट हुआ। कालेजों और कचहरियों का बायकाट ज्यों का त्यों जारी रहा। मज़दूरों के संगठन की बात तय हुई। दक्षिण

अफ्रीका और काबुल की काँग्रेस संस्थायें सम्मिलित कर ली गईं।

इस ज़माने में खिलाफ़त का प्रश्न ख़त्म हो गया। इधर काँग्रेस में 'परिवर्तन वादियों' और 'अपरिवर्तन वादियों' में विरोध बढ़ गया। दास बाबू ने अपना इस्तीफ़ा दाखिल कर दिया। साथ ही 'अपरिवर्तन वादियों' ने भी इस्तीफ़ा दे दिया। इससे बड़ी मुश्किल पड़ी। बाद में डा० अन्सारी की अध्यक्षता में काँग्रेस का काम चलता रहा। दास बाबू ने कहा था कि काँग्रेस में दो दल बना दिये जायँ। एक को रचनात्मक कार्य सुपुर्द किया जाय दूसरे को कौंसिलों का काम दे दिया जाय। इसका विरोध राजेन्द्र बाबू और उनके साथियों ने किया। इसी पर इस्तीफ़े की बात आई थी। इसके बाद दिल्ली का विशेष अधिवेशन हुआ।

१६२३ की घटनायें

इसके पहिले कि इस अधिवेशन की बात करें हमें नागपूर झण्डा सत्याग्रह की ओर भी नज़र डाल लेनी चाहिये। रष्ट्रीय झन्डा लेकर एक जलूस सिविल लाइन्स की ओर जा रहा था। १ ली मई, १९२३ ई० को वहाँ १४४ धारा लागू कर दी गई। स्वयं सेवकों ने कहा कि जहाँ कहीं भी वे चाहें वे झन्डा लेकर जा सकते हैं। इस पर बहुत सी गिरफ़्तारियाँ हुईं। सेठ जमना लाल जी भी गिरफ़्तार कर लिये गये। काँग्रेस कार्य कारिणी ने इस सत्याग्रह को आशीर्वाद दिया। सारे भारत में आम जनता में झन्डा लेकर जलूस निकलने लगे और सभायें होने लगीं। इस सत्याग्रह ने धीरे धीरे अखिल भारतीय रूप धारण कर लिया। सारे देश के

सत्याग्रही नागपूर में जमा होने लगे। श्रीयुत वल्लभ भाई पटेल यहाँ के इन्चार्ज बनाये गये। पटेल बन्धुओं ने इस सत्याग्रह के चलाने में बहुत काम किया। १८ जुलाई को पहिले से एलान करके जलूस निकाला गया। जलूस बे रोक टोक निकल गया और सत्याग्रहियों की जीत हुई।

दिल्ली का विशेष अधिवेशन (१६२३)

इस अधिवेशन के सभापति मौलाना अबुल कलाम आज़ाद हुये। उन्हीं दिनों मौलाना एक उद्‌भट विद्वान, प्रसिद्ध देश भक्त और ईश्वर भीरु मुसलमान माने जाते थे। आप की न्याय प्रियता और निष्पक्षता पर दोनों दलों को विश्वास था। यहीं पर कौंसिलों में जाने वालों को आज़ादी मिल गई। चुनावों में भाग लेने, वोट देने और चुनाव में पूरी तरह कामयाब होने का प्रयत्न करने की इजाज़त मिल गई। कौंसिल विरोधी प्रचार बन्द कर दिया गया। साथ ही रचनात्मक कार्यों पर विशेष ज़ोर दिया गया।

इसके बाद कोकोनाडा में वार्षिक अधिवेशन हुआ। उसके सभापति मौलाना मोहम्मद अली साहब थे। इस समय हिन्दू-मुस्लिम एकता की नीव हिल चली थी। मौलाना मोहम्मद अली ने अपने भाषण में सुलह और शांन्ति का सन्देश देश को दिया। इसी अधिवेशन में भारतीय खद्दर बोर्ड खद्दर के उत्पादन और क्रय-विक्रय के इन्तज़ाम के लिये बनाया गया।

इस ज़माने में कुछ महत्व पूर्ण घटनायें हुईं उनका थोड़े में ज़िक्र कर दिया जाता है। इसी ज़माने में गाँधी जी छोड़ दिये

गये । कौंसिलों में स्वराज्य पार्टी की विजय हुई। बंगाल में अनिर्वचनीय सख्तियाँ हुईं । सुभाष बाबू और अन्य अच्छे काँग्रेस कार्यकर्ता गिरफ़ार हो गये। देश में कई स्थानों पर साम्प्रदायिक दंगे हुये। गाँधी जी ने प्रायश्चित्त स्वरूप २१ दिन का उपवास किया। दिल्ली में एकता-सम्मेलन हुआ।

सन् १९२४

इस वक्त केन्द्रीय असेम्बली में ४५ स्वराजिस्ट पहुँच गये थे। नेशलिस्ट पार्टी के सहयोग से उन्होंने सरकार को कई दफ़े करारी हार दी। देश की राजनीति में भी स्वराजिस्टों का बोलबाला था गोकि गाँधी जी इन से सहमत नहीं थे। बेलगाँव की काँग्रेस में इन्हीं का ज़ोर रहा।

बेलगाँव की काँग्रेस १९२४ में हुई। इसके सभापति स्वयं गाँधी जी थे। यहाँ पर दोनों विचारों के काँग्रेस वालों में गहरा मतभेद हुआ। असहयोग का प्रोग्राम क़रीब क़रीब समाप्त हो गया और स्वराजिस्टों का बहुमत रहा। बायकाट का प्रोग्राम उठा लिया गया और कपड़ों को छोड़ कर हर प्रकार के चीज़ों पर से रोक उठा ली गई। चर्खा पर विशेष ज़ोर दिया गया। गाँधी जी ने घरेलू उद्योग धन्धों को तरक़्क़ी देने की बात कही। अछूतोद्धार पर ज़ोर दिया और एकता के प्रश्न को फिर से सामने रखा। यहीं पर 'अगर ज़रूरत पड़ी तो ब्रिटेन से सारा सम्बन्ध तोड़ लेने की बात, गाँधी जी ने कही। इस काँग्रेस से ही गाँधी युग समाप्त होता है। पाठक पूछेंगे क्यों ? क्या बेलगाँव के बाद गाँधी जी का

बेलगाँव की काँग्रेस

असर काँग्रेस पर कम हो गया ? क्या इसके बाद काँग्रेस ने गाँधी जी के वसूलों को हमेशा के लिये छोड़ दिया ? क्या देश ने गाँधी जी की आज्ञाओं को मानने से इनकार कर दिया ? इन सब का उत्तर है, नहीं ? फिर भी गाँधी युग समाप्त हो गया। बेलगाँव काँग्रेस के बाद राजनीतिक परिस्थिति बदल गई। पहिले तो स्वराजिस्टों का ज़ोर रहा, बाद में लाहौर में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हुआ। नये नये प्रकार के सवाल देश के सामने उठते गये। नई नई विचार धाराएँ भी आतीं गईं और नये नये लोग चित्रपट पर आते गये। इसमें कोई शक नहीं कि बेलगाँव के बाद आज तक गाँधी जी ही काँग्रेस के कर्णधार रहे और जब तक गाँधी जी जीवित रहेंगे वे अपने स्थान पर ही बने रहेंगे, परन्तु, इतना होते हुये भी, जो धारायें भिन्न भिन्न श्रोतों से निकल कर काँग्रेस के समुद्र में आ मिलीं, जो शक्तियाँ इस समय के बाद काँग्रेस में आईं उनका असर देश पर स्थायी रूप से पड़ा। काँग्रेस के शब्द कोष में नये शब्दों का प्रयोग हुआ, राजनीतिक अवस्था में नई पेचीदगियाँ पैदा हुई, दृष्टि कोण में नये परिवर्तन और विस्तार हुये। काँग्रेस समाजवादी दल का जन्म और उसके प्रोग्राम गाँधीवादी विचार धारा और कार्य क्रम के सामने एक चुनौती के रूप में आये। कम्युनिष्ट पार्टी का विचार परिवर्तन, उसका नया प्रोग्राम, किसानों, मज़दूरों और विद्यार्थियों का संगठन—इन बातों के महत्व को कम नहीं किया जा सकता। बेलगाँव अधिवेशन के बाद की काँग्रेस शुद्ध गाँधीवादी विचारों की नहीं रही। गाँधी जी के कई वसूलों को मानते हुये भी वह

अपनी सुविधानुसार नीति निर्धारित करने को तैय्यार हो गई। आज भी गाँधी जी उतने ही शक्तिवान हैं, पर काँग्रेस की रूपरेखा अब बदल गई है। काँग्रेस के इतिहास में नये युग का आरम्भ हो चुका है।

आज काँग्रेस के भीतर जो नई नई शाखायें दिखाई दे रही हैं तथा देश में जो भिन्न भिन्न प्रकार के विचारों वाले दल दिखाई दे रहे हैं, उनके जन्म की पृष्ठ भूमि इसी ज़माने में तैयार हुई थी। गाँधीवादी विचारों की एकाधिकारवादी सत्ता का युग बीत चला था। इसी अर्थ में, केवल इसी अर्थ में गाँधी युग समाप्त हो गया।

—: ❀ :—

६

राष्ट्रीय-निष्क्रियता

[सन् २५ से सन् २८ तक—२७ की मद्रास काँग्रेस—साइमन कमीशन—नेहरू रिपोर्ट—बारदोली का सत्याग्रह—पब्लिक सेफ्टी बिल—कलकत्ता काँग्रेस—प्रधान प्रस्ताव—युवक आन्दोलन के बीज ।]

राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में यह ज़माना (सन् १९२५ से सन् १९२८) स्थिरता और अवकाश का ज़माना माना जाता है। बेलगाँव काँग्रेस के बाद स्वराज पार्टी का प्रोग्राम ही काँग्रेस का प्रोग्राम हो गया। महात्मा गाँधी उस प्रोग्राम को ठीक नहीं समझते थे, परन्तु उन्होंने उसका विरोध नहीं किया। गाँधी जी ने यह भी देखा कि काँग्रेस के अधिक तर लोग चुनावों में हिस्सा लेने को पसन्द करने लगे हैं। देश में राजनैतिक वातावरण अच्छा नहीं था। जगह जगह भयानक दंगे हो रहे थे। साम्प्रदायिक विद्वेश बढ़ता जा रहा था। ऐसी स्थिति में कोई भी सक्रिय राजनीतिक कार्यक्रम चलाना मुश्किल था, इसलिये गाँधी जी ने असहयोग की बात बन्द कर दी। भक्तों और साथियों को कौंसिल विरोध के प्रोग्राम को बन्द कर देने के लिये कहा। बड़े से बड़े नेता चुनाव में खड़े किये गये और म्युनिस्पिल्टी तक के चुनाव में इन लोगों ने हिस्सा लिया। पं० जवाहर लाल इलाहाबाद बोर्ड के सभापति हुये। पटना बोर्ड के राजेन्द्र बाबू सदर हुये। बम्बई कारपोरेशन के

सभापति श्री विट्ठल भाई पटेल और अहमदाबाद के श्री वल्लभ भाई पटेल सभापति हुये। इस प्रकार हम देखते हैं कि काँग्रेस की नीति कौंसिल-विरोधी नहीं रह गई, बल्कि कौंसिलों में जाना काँग्रेस का अपना प्रोग्राम हो गया।

कानपुर काँग्रेस (१९२५) में श्रीमती सरोजिनी देवी सभा नेत्री हुईं। इस समय भी काँग्रेस की वही नीति रही। इस अधिवेशन में अपना चार्ज देते हुये गाँधी जीने कहा कि वे अपने पिछले पाँच सालों के कार्य को देखकर सन्तोष पाते हैं, पिछले आन्दोलन में जो कुछ हुआ सब ठीक हुआ। सरोजिनी देवी ने भी अपने भाषण में कोई विशेष बात नहीं कही। काँग्रेस की पुरानी नीति दुहराई, एकता के लिये अपील की गई और देश को राजनीतिक शिक्षा लेने के लिये कहा गया। गौहाटी काँग्रेस तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। साम्प्रदायिक समस्या दिन पर दिन उलझती जाती थी। कलकत्ता, दिल्ली, इलाहाबाद आदि में भयानक दंगे हुये। इसी परिस्थिति में गौहाटी में काँग्रेस हुई। जिस दिन सभापति श्री अयंगार का जलूस निकलने वाला था उसी दिन स्वामी श्रद्धानन्द जी के गोली से मारे जाने की खबर आई। अधिवेशन पर अँधेरा छा गया। इस काँग्रेस में श्री अयंगर ने पद स्वीकार करने की नीति का तीव्र विरोध किया। साथ ही आपने ' विरोधी दल की तरह काँग्रेस पार्टी ' की नीति का समर्थन किया। सन् २६ में यू० पी० में स्वराजिस्ट पार्टी की बुरी तरह हार हुई और पं० मोतीलाल जी ने इस हार को स्वीकार भी किया। लेकिन फिर भी इस जमाने में काँग्रेस की नीति में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ। सालाना जलसों में विचार-विनिमय

होते थे और कौंसिलों में भी कुछ सरगर्मी दिखाई जाती थी, पर देश के सामने कोई सक्रिय कार्य क्रम नहीं था। इसी लिये इस ज़माने को 'निष्क्रियता अथवा स्थिरता' का ज़माना कहते हैं। थोड़े ही दिनों में स्वराजिस्ट पार्टी के नेताओं ने भी अनुभव कर लिया कि वे अपने प्रोग्राम के द्वारा देश को कुछ भी आगे नहीं ले जा सकते।

मद्रास काँग्रेस

सन १९२७ की मद्रास काँग्रेस में डा० अन्सारी सभापति हुये। हम जानते हैं कि पिछले वर्षों में किस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए थे। इस संकट के समय अन्सारी साहब से अधिक योग्य व्यक्ति और कौन हो सकता था? उन्होंने अपने भाषण में हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रश्न पर रोशनी डाली। आपने देश के सामने साफ़ साफ़ बता दिया कि अगर दोनों धर्मों के लोग एका नहीं करेंगे तो भारत का भविष्य काला ही रहेगा। इस काँग्रेस ने नज़रबन्दों का भी ध्यान रखा और उन पर प्रस्ताव पास किया। चीन के लोगों के प्रति सहानुभूति प्रकट की। स्टेटुचरी कमीशन का विरोध किया। युद्ध के ख़तरे की बात कही और साफ़ साफ़ कह दिया कि भारत किसी भी 'साम्राज्यवादी' युद्ध से अपना कोई भी सम्बन्ध नहीं रखेगा। इस काँग्रेस में मि० मार्डी जोन्स एम० पी०, मि० पर्सेल और मि० स्प्रैट मौजूद थे। इस समय जेनरल अवारी के 'हथियार सत्याग्रह' के सम्बन्ध में किये गये भूख हड़ताल के ७५ दिन हो चुके थे। काँग्रेस ने उनको बधाई दी। काकोरी के बन्दियों को बहुत सख़्त सज़ा दी गई थी, इस पर ग़ुस्से का इज़हार किया गया। इसी समय जवाहर लाल योरप से लौट आये थे। उनके विशेष प्रयत्न

लाठियों की वर्षा हुई थी। बड़े से बड़े नेता और कार्यकर्ता बेरहमी के साथ पीटे गये। चार दिन तक लखनऊ में पुलिस का राज्य रहा। घरों में से खींच खींच कर सम्मानित नेता पुलिस द्वारा पीटे गये। फिर भी 'साइमन लौट जाओ' का नारा बन्द नहीं हुआ। कैसरबाग़ की सभा में किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जाने दिया गया जिस पर पुलिस को थोड़ा भी शक था। फिर भी गुब्बाड़े और पतंग उड़ाकर कैसरबाग़ तक पहुँचाये गये। उन पर लिखा हुआ था, 'साइमन लौट जाओ,' 'हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों के लिये।'

पटना में ५०,००० संगठित जनता ने प्रदर्शन करके साइमन कमीशन का विरोध किया। स्वागत करने वालों में केवल कुछ चपरासी और सरकारी अहलकार थे।

३१ मार्च को कमीशन 'सब जातियों और वर्गों के व्यक्तियों से अपना व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करके' वापस चला गया। जब कि साइमन कमीशन हिन्दुस्तान की हालत की जाँच कर रहा था, उसके कुछ सदस्य इस बात की छानबीन कर रहे थे कि किन किन ब्रिटिश मालों की ज़्यादा खपत यहाँ हो सकती है। कमीशन के एक सदस्य लार्ड बर्नहम ने कहा कि, "यहाँ मोटर, लारी और ट्रैक्टर की खपत काफ़ी हो सकती है।" क्या साइमन कमीशन इन्हीं बातों की जाँच के लिये आया था?

इसी ज़माने में कई सर्वदल सम्मेलन हुये। सभी दलों ने मिल-कर आपस में यह तय किया कि 'पूर्ण ज़िम्मेदार सरकार' के आधार पर विधान बनाने के सम्बन्ध में विचार किया जाय। यह

सम्मेलन ३ बार हुआ। २९ राजनीतिक संस्थाओं ने इस बात को मान लिया और पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में विधान बनाने की तैयारी की जाने लगी। इसी विधान को नेहरू रिपोर्ट कहा जाता है। कलकत्ता अधिवेशन में इस विधान को स्वीकार कर लिया गया था और इसको साल भर में स्वीकार कर लेने को चुनौती सरकार को दी गई थी।

नेहरू रिपोर्ट

उधर गुजरात में सन् १९२८ में बारदोली का प्रसिद्ध सत्याग्रह आरम्भ हुआ। बारदोली में २० साल के बाद ज़मीन का बन्दोबस्त होता है। हर बन्दोबस्त के बाद लगान में चौथाई की बढ़ती ज़रूर हो जाया करती थी। इस बार भी बन्दोबस्त की बात उठी और लोगों को डर हुआ कि अबकी बार भी लगान में बढ़ती होगी। लोग केवल यह चाहते थे कि एक निष्पक्ष जाँच कमेटी बिठाई जाय। वह कमेटी मेहनत का ख़र्च, सड़कों की दशा, चीज़ों के भाव, आर्थिक स्थिति और लगान आदि पर ग़ौर करे और फिर अगर लगान बढ़ाई जाय तो उनको कोई आपत्ति न होगी। सरकार इस पर राज़ी न थी। बारदोली वालों को २५% बढ़ती लगान देने के लिये मजबूर किया जाने लगा। श्री वल्लभभाई पटेल ने इस आन्दोलन को अपने हाथ में लिया। सरकार ने साम्प्रदायिक दुर्भावनाओं को उभारना चाहा, परन्तु वह उसमें नाकामियाब रही। लोगों के माल क़ुर्क़ होने लगे। इसमें मदद देने के लिये पठान बुलाये गये। लोगों के ऊपर ज़्यादतियाँ होने लगीं। फ़ौरन ही

बारदोली का प्रसिद्ध सत्याग्रह

बम्बई कौंसिल के कई चुने हुये मेम्बरों ने इस्तीफ़ा दे दिया। सभापति विट्ठलभाई पटेल ने भी केन्द्रीय असेम्बली के सम्मानित पद से इस्तीफ़ा दे देने की बात सरकार से कही। बहुत कुछ ज़ुल्म सितम के बाद सरकार सुलह करने पर राज़ी हुई। लगान की बढ़ती रुक गई, और पुराने दर पर लगान रखा गया। इसके बाद बारदोली का सत्याग्रह बन्द हुआ। श्री वल्लभभाई पटेल को इस आन्दोलन के कारण सरदार की पदवी मिली।

पबलिक सेफ़टी बिल

पबलिक सेफ़टी बिल के प्रश्न पर भी असेम्बली में सरकार और काँग्रेस से गहरी झड़प हो गई थी। लाला लाजपतराय ने कहा था कि "यह बिल विदेशी कम्युनिस्टों के ही लिये नहीं है। वे तो कभी भी गिरफ़्तार करके, जहाज़ पर चढ़ाकर, देश के बाहर कर दिये जा सकते हैं। यह तो हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयतावादियों और मज़दूर सभा वालों के विरुद्ध है। यह तो उन लोगों को सज़ा देने के लिये बना है जो देश की राष्ट्रीय और आर्थिक स्वाधीनता चाहते हैं......जवाहरलाल और श्रीनिवास आयंगर भी इस बिल के शिकार हो सकते हैं।"

जब असेम्बली में बिल पेश हुआ तो वोट बराबर पड़े। प्रेसिडेंट पटेल ने अपना वोट बिल के विरुद्ध दिया और बिल पास न हो सका।

बेलगाँव काँग्रेस के बाद सबसे अधिक महत्वपूर्ण काँग्रेस कलकत्ते (१९२८) की थी। इस काँग्रेस के सभापति पं० मोतीलाल नेहरू थे। यहाँ का इन्तज़ाम शानदार था। सभापति जिस रथ

पर बैठे हुये थे वह ८६ घोड़ों द्वारा खींचा गया था। सुभाष बाबू G. O. C. थे। इसी ज़माने में साईमन कमीशन दौरा कर रहा था। सरकार ने एलान किया कि वह अमन और शान्ति को ख़तरे में नहीं डालने देगी और ऐसा करने वालों को पूरी तरह से सबक़ दिया जायेगा। पं० मोतीलाल जी ने सरकार के इस रुख़ की निन्दा की और साफ़ साफ़ कह दिया कि राष्ट्र अपने ध्येय तक पहुँचने के लिये किसी भी सख़्ती और ज़ुल्म का सामना करने के लिये तैयार है।

कलकत्ता अधिवेशन

इस काँग्रेस में विदेशों की प्रगतिशील संस्थाओं के शुभ सन्देशे आये थे। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने अमरीका से और श्रीमती सनयात सेन ने चीन से अपने सन्देशे भेजे। फ़ारस की सोशलिस्ट पार्टी और न्यूज़ीलैण्ड की कम्युनिस्ट पार्टी ने भी शुभाकाँक्षायें भेजीं। अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी ने इनका उत्तर दिया। यह भी निश्चय हुआ कि काँग्रेस में एक वैदेशिक विभाग खोला जाय। ऐशियाटिक फ़ेडरेशन की बात भी कही गई। पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये चीन को बधाई दी गई। सीरिया, फ़िलस्तीन, मिश्र, ईराक़ आदि को भी बधाई दी गई। मद्रास का युद्ध-विरोधी प्रस्ताव फिर से दोहराया गया। ब्रिटिश माल का फिर से बॉयकॉट किया गया। बारदोली विजय के लिये सरदार पटेल और बारदोली की जनता को बधाई दी गई। देशी रियासतों में ज़िम्मेदार हुकूमत क़ायम करने पर ज़ोर दिया गया। काँग्रेस ने नेहरू रिपोर्ट का स्वागत किया और उसके विधान को स्वीकार कर

लिया। काँग्रेस ने चेतावनी दी कि अगर अँगरेज़ी पारलियामेन्ट ३१ दिसम्बर, १९२९ ई० तक इसको स्वीकार नहीं कर लेती तो काँग्रेस अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन शुरू कर देगी। इस आन्दोलन में लगानबन्दी का प्रोग्राम भी शामिल रहेगा। साथ ही, बीच के समय में काँग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रचार करती रहेगी।

इस प्रस्ताव को पहिले तो गाँधी जी ने रखा था (इस समय गाँधी जी एकान्त वास छोड़कर काँग्रेस अधिवेशन में आ गये थे), परन्तु वाम पक्षी लोगों ने इसमें कई परिवर्तन किये। सुभाष बाबू और जवाहरलाल जी ने समय निर्धारण का विरोध किया, इन लोगों ने औपनिवेशिक स्वराज्य को किसी भी तरह स्वीकार नहीं किया। प्रस्ताव परिवर्तित और परिवर्धित रूप में पास हो गया। इसके बाद काँग्रेस ने नीचे लिखे आदेश दिये :—

(१) असेम्बलियों के अन्दर और बाहर इस बात का प्रयत्न करना कि मादक वस्तुओं का प्रयोग रुक सके। पिकेटिंग भी इस प्रोग्राम में शमिल था।

(२) विदेशी वस्तुओं के बायकाट के लिये असेम्बलियों के बाहर और भीतर दोनों जगह पूरी कोशिश करना।

(३) जहाँ कहाँ भी ज़ुल्म ज़्यादतियाँ होती हों वहाँ, अगर लोग तैयार हों तो, अहिंसात्मक आन्दोलन करना।

(४) काँग्रेसी मेम्बर रचनात्मक कार्यों के लिये विधानालयों में पूरी कोशिश करें।

(५) काँग्रेस का संगठन बढ़ाया जाय, मेम्बर बनाये जायँ।

(६) महिलाओं में प्रचार किया जाय और उनका संगठन किया जाय।

(७) इस प्रकार के प्रयत्न किये जाँय जिससे समाज की सारी बुराइयाँ दूर हो जाँय।

(८) हिन्दू काँग्रेस वालों का यह कर्तव्य होगा कि वे अछूत समस्या को हल करें। अछूतों को उन्नति करने के लिये सहायता देना उनका फ़र्ज़ होगा।

(९) स्वयं सेवकों की भर्ती इसलिये की जाय कि वे शहरों में मज़दूरों की सेवा कर सकें और गाँवों में जाकर किसानों में भी काम कर सकें।

(१०) ऐसे तमाम काम किये जाँय जिससे राष्ट्र के हितों की रक्षा हो, साथ ही राष्ट्र के विभिन्न वर्गों और स्वार्थों का मज़बूत संगठन हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस प्रस्ताव के अनुसार राष्ट्र की शिथिलता दूर करके उसको सक्रिय आन्दोलन में भाग लेने के लिये तैयार होने को कहा गया। इस प्रोग्राम से देश में फिर सरगर्मी आ गई। किसी को भी आशा नहीं थी कि सरकार काँग्रेस की माँग को मान लेगी, सभी जानते थे कि आन्दोलन चलेगा ही, इसलिये तैयारी के लिये इस प्रस्ताव की बातों को राष्ट्र ने माना।

इस वर्ष की एक महत्वपूर्ण घटना यह भी थी कि सारे देश में साईमन कमीशन के बायकाट के लिये विद्यार्थियों ने संगठिन रूप से प्रयत्न किया। देश भर के विद्यार्थियों का किसी न किसी

रूप में संगठन हो गया। नौजवान सभा, यूथ लीग, हिन्दुस्तानी सेवा दल, आदि का ज़ोरदार संगठन हुआ।

युवक आन्दोलन के बीज इसी नवयुवक समुदाय ने आगे आने वाले आन्दोलन में महत्वपूर्ण कार्य किया।

अगला अध्याय पाठकों के लिये महत्वपूर्ण है। कलकत्ता काँग्रेस के समय यह निश्चय हुआ था कि आगे आने वाली लड़ाई के लिये देश भर में तैयारी की जाय। इसके लिये विभिन्न कमेटियाँ बनी थीं। इन कमेटियों ने अपना फ़र्ज़ अदा किया। १९२९ का पूरा साल इसी तैयारी में बीता। साथ ही देश के बहुत से नेता भी गिरफ़ार कर लिये गये। नौजवानों पर विशेष सख्तियाँ हुईं। देश में किस प्रकार तैयारी की गई, सरकार की ओर उसकी प्रतिक्रिया क्या हुई, यह हम अगले अध्याय में देखेंगे।

—:※:—

७

संघर्ष-युग (१)

(१६२६ ई० से १६३४ ई०)

[**पृष्ठभूमि**—संघर्ष की ओर—कमेटियाँ—असेम्बली में सेफ़्टी बिल—मेरठ षड्यन्त्र केस—सख़्तियाँ—मज़दूर हड़तालें—गाँधी जी पर जुर्माना—गिरफ़्तारियाँ—सभापति का चुनाव—सर्व दल सम्मेलन—लाहौर काँग्रेस का भाषण—प्रधान प्रस्ताव—आज़ादी का एलान]

संघर्ष-युग की चर्चा करने के पहले हम सरसरी तौर से पिछले दस साल का इतिहास देख लें। १९१९ के बाद जो असहयोग आन्दोलन चला उसमें गाँधी जी जननायक की हैसियत से देश के सामने आये। पहिली बार काँग्रेस ने सक्रिय आन्दोलन को अपनाया और जनता ने आज़ादी के लिए संगठित रूप से सरकार का विरोध किया। जनता शुरू में अहिंसात्मक रही—पर सरकार की ज्यादतियों की वजह से कहीं कहीं उसने हिंसा की। चौरी चौरा का काण्ड विशेष उल्लेखनीय है। इसी के बाद गाँधी जी नें अपना आन्दोलन बन्द कर दिया।

देश की राजनैतिक परिस्थिति में एक नया युग आया। काँग्रेस के सामने कौंसिलों में जाने का प्रोग्राम रखा गया। दो साल इसी कशमकश में बीत गये और फिर विधानवादियों के हाथ में काँग्रेस की बागडोर चली गई। गाँधीजी ने उदासीन हो अपना अधिक समय रचनात्मक कार्यों में देना शुरू किया।

कौंसिलों में जाने का प्रोग्राम ज़्यादा दिन नहीं चल सका। सन् १९२८ में साईमन कमीशन के आने पर देश में फिर हलचल मच गई। इसी समय गुजरात में बारदोली सत्याग्रह चला। देश फिर दूसरे आन्दोलन की बात सोचने लगा। उधर नौजवानों के गुप्त संगठन अपना काम करते जा रहे थे। काकोरी षड्यन्त्र केस ने लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा। लाला लाजपत राय की हत्या का बदला साण्डर्स का ख़ून करके कुछ नवयुवकों ने लिया।

इस तरह सन् १९२९ का ज़माना आया। विश्वव्यापी आर्थिक संकट ने भारत पर भी असर किया। मज़दूर और किसान भूखों मरने लगे, क्रय और उत्पादन दोनों में कमी पड़ने लगी, पढ़े लिखों में बेकारी फैलने लगी। नये संघर्ष के लिए वातावरण तैयार होने लगा।

देश के सामने इस समय केवल एक रास्ता था, वह यह कि सारी शक्ति लगाकर विदेशी साम्राज्यवादी सत्ता को जड़ से उखाड़ फेंका जाय। काँग्रेस पूरी तरह से केवल अर्धनग्न जनता की ही संस्था नहीं थी। उसे राष्ट्र के सभी वर्गों और स्वार्थों की रक्षा करनी थी। इसलिये, उसे एक ऐसा रास्ता निकालना था जिससे राष्ट्र के सभी स्वार्थों का अधिक से अधिक लाभ हो, और इस कार्य के लिये जो संघर्ष छिड़े, उसका रूप ऐसा हो जिससे सभी वर्ग के लोग, किसी न किसी रूप में, उस संघर्ष में अपना सहयोग दे सकें। राष्ट्र की इस समन्वित शक्ति को जागृत करना, उसका संचालन करना और उसके प्रयोग द्वारा अधिक से अधिक लाभ उठाना, काँग्रेस का काम था। संघर्ष-युग के इतिहास का परिवेक्षण

करते समय हमें इन सब बातों को ध्यान में रखना चाहिये, तभी हम इस आन्दोलन के सच्चे रूप को देख सकेंगे।

अब हम सन् २९ के पूरे साल का अध्ययन करेंगे। इस वर्ष में कई महत्वपूर्ण घटनायें हुई। असेम्बली बमकेस, मज़दूरों की हड़ताल, यतीन्द्रदास की मृत्यु, लीडरों की गिरफ़्तारी, सरकार का दमन चक्र, देश की तैयारी इत्यादि महत्वपूर्ण और भविष्य-निर्णायक घटनायें थी। एक एक करके हम इन घटनाओं का वर्णन करेंगे।

संघर्ष की ओर

काँग्रेस ने कलकत्ता अधिवेशन में काम सँभालने के लिये भिन्न भिन्न कार्यों को अलग अलग कमेटियों को सौंप दिया। विदेशी वस्तु बॉयकॉट कमेटी गाँधी जी ने अपने हाथों में लिया, इस कमेटी के मन्त्री श्री जैरामदास दौलतराम थे। सैकड़ों स्थानों पर विदेशी वस्त्रों की होलियाँ जलाई गई। दूसरी कमेटी मादक-वस्तु बायकाट के लिये थी। इसके इन्चार्ज श्री राजगोपालाचारी थे। 'प्रोहीबिशन' अखबर भी इस कमेटी ने निकाला। अछूत समस्या को हल करने के लिये भी एक कमेटी बनी, इसका कार्य श्री जमना लाल जी बजाज को सौंपा गया। इन्होंने इसी काम के लिये सारे देश में भ्रमण किया।

वालंटियर-कमेटी ने भी अपनी रिपोर्ट में हिन्दुस्तानी सेवा दल की सिफ़ारिश की और उसी का अनुकरण करने के लिये देश से भी कहा गया। शीघ्र ही सारे देश भर में वालंटियर संगठित होने लगे। इन्हीं वालंटियरों ने आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया।

असेम्बली में फिर से पब्लिक सेफ़्टी बिल लाया गया।

प्रेसिडेन्ट विट्ठल भाई पटेल ने इसको असेम्बली में नहीं आने दिया। उस समय मेरठ षड़्यन्त्र केस चल रहा था। पटेल जी ने कहा कि इस बिल के पास होने के लिये उन तमाम बातों की चर्चा होगी जिनका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में मेरठ षड़्यन्त्र केस से होगा। चूँकि यह केस अभी चल रहा है इसलिये उन बातों का ज़िक्र करना असेम्बली के नियमों के विरुद्ध है। इसलिये, अगर इस बिल को असेम्बली के सामने रखना है तो पहिले उस केस का चलना बन्द हो जाना चाहिये। अगर ऐसा नहीं हो सकता तो यह बिल भी असेम्बली के सामने न लाया जाय। सरकार ने इस तर्क को नहीं माना और प्रेसिडेन्ट ने इस प्रस्ताव को 'रूलआउट' कर दिया। इस बिल के कुछ ही दिनों पहिले ट्रेड्स डिस्प्युट्स बिल पास हुआ था। इसके पास होने के बाद ही एकाएक गैलरी में से दो बम सरकारी बेन्चों पर आ गिरे। सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त इसी बम-केस में पकड़े गये थे।

मेरठ षड़यन्त्र केस

२० मार्च, १९२९ ई० को बम्बई, पंजाब और यू० पी० में ताज़ीरात हिन्द के १२१ धारा के अनुसार एका एक सैकड़ों घरों में तलाशी हुई। मुक़दमे के लिये तमाम गिरफ़्तार वन्दी मेरठ जेल लाये गये। उनके ख़िलाफ़ चार्ज यह था कि वे सारे देश में 'कम्युनिस्ट' प्रचार कर रहे थे। इन्हीं लोगों में 'न्यूस्पार्क' के सम्पादक श्री हचिन्सन भी थे। काँग्रेस के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ताओं ने एक 'डिफ़ेन्स कमेटी' बनाकर मुक़दमें की पैरवी की। उसने भी पैरवी के लिये स्वयं १५०० रु० दिये। कहते हैं इस मुक़दमे में कई लाख रुपया ख़र्च

हुआ था। चार साल से अधिक यह केस चला। पहिले तो बहुतों को सज़ा हुई, बाद में हाईकोर्ट के फ़ैसले से लोग छूट गये। यह केस, आज तक जितने भी षणयन्त्र केस भारत में चले, सब में प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण था। इसकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति थी। विलायत के रहने वाले कामरेड भी इसमें शामिल थे। सरकारी प्रकाशन विभाग के डाइरेक्टर स्वयं इस केस के प्रचार की देख रेख के लिये यहाँ उपस्थित थे।

सख्तियाँ

डा० सन्डरलैण्ड की प्रसिद्ध पुस्तक 'इन्डिया इन बान्डेज' ज़ब्त कर ली गई और इसके प्रकाशक बाबू रामानन्द चटरजी गिरफ़्तार कर लिये गये। कलकत्ते में सुभाष बाबू तथा अन्य वामपक्षी नेताओं पर केस चल रहे थे। शांघाई और मलाया तक में हिन्दुस्तानी लोग गिरफ़्तार किये जा रहे थे। राष्ट्र कर्मी तथा मज़दूर नेता सैकड़ों की तादाद में गिरफ़्तार कर लिये गये। पुलिस ने जनता के साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया। लाहौर षणयन्त्र के अभियुक्तों की सहायता के लिये सात नौजवान चन्दा इकट्ठा कर रहे थे। लाहौर के ज़िला मैजिस्ट्रेट के सामने इन लोगों को बुरी तरह से पीटा गया। उनका जुर्म यह था कि वे 'साम्राज्यवाद का नाश हो', 'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद' का नारा लगा रहे थे। जिस मैजिस्ट्रेट के कोर्ट में उन पर मुक़दमा चल रहा था उसी के सामने खुले कोर्ट में उनको जी भर कर पीटा गया।

लाहौर केसके बन्दी श्री यतीन्द्रनाथदास ने जेल सुधार के लिये भूख हड़ताल की थी और ६४ दिन बाद वे शहीद हो गये।

उधर मुक़दमों का चलना भी बन्द हो गया। सरकार की ओर से एक बिल असेम्बली में लाया गया कि बिना अभियुक्तों के कोर्ट में हाज़िर हुये ही मुक़दमा चलता रहे। बाद में गवर्नर-जेनरल ने एक आर्डिनेन्स भी इसी सिलसिले में बनाया जिसका नाम था, "लाहौर षणयन्त्र केस आर्डिनेन्स।" इस केस का नाम भारतीय राष्ट्रीय इतिहास में अमर रहेगा।

पंजाब में भूख हड़तालों के कारण बिजली-सी दौड़ गई। देश भर में शहीदों के गुणगान हुए, हड़तालें हुई, जलूस निकले और विरोध के प्रदर्शन हुये। इन वीरों का त्याग बेकार नहीं गया, आज के सुधरे हुये जेल इसके गवाह हैं।

मज़दूर हड़तालें

इस ज़माने में मज़दूरों ने भी अपनी संगठित शक्ति का प्रदर्शन किया। पहिले भी बी० एन० आर० के मज़दूरों ने लम्बी हड़ताल की थी और उनके लीडरों को कड़ी सज़ायें मिली थीं। अबकी बार कई लाख मिल मज़दूरों ने बम्बई में हड़ताल कर दी। यह हड़ताल केवल आर्थिक ही नहीं थी, बल्कि उसमें राजनैतिक पुट भी था। इस हड़ताल का संगठन बहुत सुन्दर था। छ-सात महीने तक यह हड़ताल चली। इसी समय बंगाल के जूट मिलों में भी हड़ताल हुई। इसमें २५००० से अधिक मज़दूर शामिल थे। जमशेदपुर के पास गोलमुरी स्थान पर ३००० मज़दूरों ने हड़ताल की, यह हड़ताल साढ़े आठ महीने चली। इसके साथ साथ वज-बज आदि स्थानों में भी सहानुभूति पूर्ण हड़तालें हुईं। हम देख रहे हैं कि इस जमाने में मज़दूरों में भी चेतना और जागृति आ रही थी।

इसी ज़माने में गाँधी जी ने सारे देश में भ्रमण किया। भ्रमण के संबंध में आप कलकत्ते में पहुँचे। आपके सामने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। इसके बाद गाँधीजी बर्मा चले गये। बर्मा से लौटने पर आपके ऊपर मुक़दमा चला और आपके ऊपर १ रु० जुर्माना हुआ। आपको याद होगा कि गाँधीजी विदेशी वस्तु बॉयकॉट कमेटी के इन्चार्ज थे। सर चार्लस टेगर्ट, पुलिस कमीश्नर कलकत्ता, ने ही 'धारा ६६ (२) कलकत्ता पुलिस ऐक्ट' के अनुसार गाँधीजी पर मुक़दमा चलवाया था। आपके नाम को भारत का तरुण समुदाय भली भाँति जानता है। यह घटना मार्च १९२९ ई० की है।

गाँधीजी पर जुर्माना

लाहौर में कॉंग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। वहाँ अधिवेशन की तैयारियाँ हो रही थीं। इसी बीच में सरदार मंगलसिंह, मौलाना ज़फ़रअली, डा० सत्यपाल, सरदार मोतीसिंह आदि गिरफ़ार कर लिये गये। सरदार मोतीसिंह ७ सालकी सज़ा काट कर लौटे थे। डा० सत्यपाल को दो साल की सख़्त सज़ा हुई। लोगों का विश्वास है कि लाहौर कॉंग्रेस की तैयारी में अड़ंगा लगाने के लिये ही इन नेताओं को सरकार ने गिरफ़ार कर लिया। इस ज़माने में नज़रबन्द भी बड़ी तादाद में थे। इन गिरफ़ारियों के अलावा मार्शल लॉ (पंजाब) के ज़माने के बन्दी और नज़रबन्द अब भी जेलों में थे। १८१८ के रेगूलेशन ३ के नज़रबन्द भी अन्डमान तथा दूसरे स्थानों में बन्द थे। पिछले

गिरफ्तारियाँ

युद्ध के ज़माने में जो लोग गिरफ़ार हुये थे वे अब भी जेलों में ही थे।

इधर काँग्रेस का अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रचार बढ़ा। काँग्रेस की ओर से बा० शिवप्रसाद गुप्त 'साम्राज्यवाद विरोधी लीग' की दूसरी विश्व काँग्रेस में शामिल हुये। आपने अपनी रिपोर्ट भी काँग्रेस के पास भेजी। बर्लिन में 'विद्यार्थी समाचार संघ' क़ायम था। इसके संयोजक श्री निम्बायर थे। काँग्रेस की तरफ़ से श्री उत्तम ने डा० सनयातसेन की अर्थी के जलूस में हिस्सा लिया। इस प्रकार काँग्रेस ने चीन के साथ सहानुभूति प्रदर्शित की।

सभापति का चुनाव

अब हम काँग्रेस अधिवेशन की बात करेंगे। देश के वातावरण को ध्यान में रखकर और यह समझकर कि आगे एक संघर्ष उपस्थित होने वाला है, एक ऐसे सभापति की आवश्यकता थी जो हिम्मत वाला, सूझबूझ का और साथ ही ज़िम्मेदार व्यक्ति हो। गाँधीजी और सरदार पटेल का नाम सभापति के लिये आया था। परन्तु दोनों ने अपने नाम वापस कर लिये। जवाहर-लाल जी सभापति चुने गये। नेहरू जी का चुनाव बहुत ठीक था, विशेष कर वाम पक्षी लोगों और प्रगतिशील साथियों को यह चुनाव पसन्द आया। लखनऊ अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के अधिवेशन ने जवाहरलाल जी को सभापति चुना था। जवाहरलाल जी ने अपने भाषण में जो बातें कहीं वे देश के लिये बिल्कुल नई थीं। आपने पहिली बार काँग्रेस द्वारा परिचालित राष्ट्रीय आन्दोलन को विश्वव्यापी जन आन्दोलन के नक़्शे में लाकर रखा। आपने

ही, पहिली दफ़ा समाजवादी दृष्टिकोण से साम्राज्यवाद का विश्लेपण किया और साम्राज्यवाद को ख़त्म कर देने की बात कही। काँग्रेस के दृष्टिकोण को विस्तृत करना, राष्ट्रीय आन्दोलन का सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीयजन आन्दोलन से जोड़ना, राष्ट्रीय आन्दोलन में जनता को अधिक से अधिक संख्या में लाने की बात कहना, राजनीति का अध्ययन आर्थिक दृष्टिकोण से करना और आर्थिक विषमता तथा शोषण का विरोध करना जवाहरलाल जी का ही काम था। आपके भाषण में नवीनता थी, प्राण था और था एक नया आर्थिक-वैज्ञानिक दृष्टिकोण। लाहौर के बाद काँग्रेस की नीति में जो कुछ परिवर्तन हुआ, उसके दृष्टिकोण के जो मौलिक आधार बने उनका सूत्रपात जवाहरलाल जी ने ही लाहौर में किया।

सर्वदल सम्मेलन

पिछले दस साल के इतिहास में हमने यह देखा है कि जब जब काँग्रेस ने कोई सक्रिय आन्दोलन की बात सोची तभी ऐसे लोग जो समझौते में विश्वास करते थे, प्रयत्न करके काँग्रेस और सरकार में मेल कराने की तरकीबें निकालते थे। जब अगले संघर्ष की बात खुले तौर से देश के सामने आई तब फिर समझौते की बात शुरू हुई। २५ अक्टूबर को लार्ड इरविन भारत में फिर वापस आ गये। ३१ अक्टूबर को आपने एक वक्तव्य दिया। इस वक्तव्य का स्वर मीठा था। इसमें अगस्त १९१७ ई० की बात दुहराई गई थी। हिन्दुस्तान के लिये औपनिवेशिक स्वराज्य का वादा किया गया। इस वक्तव्य की शब्दावली में सुलह पसन्द नेताओं को समझौते की झलक दिखाई दी, इसलिये २४ घंटे में ही मालवीय जी,

सरतेज बहादुर सप्रू और श्रीमती एनी बेसेन्ट आदि नेता दिल्ली में उपस्थित हो गये। काँग्रेस की कार्यकारिणी समिति वहाँ थी ही बहुत कुछ वाद विवाद के बाद एक संयुक्त एलान निकाला गया। जिसमें साफ़ कहा गया कि, "हम सहयोग करने के लिये तैय्यार हैं अगर सरकार की ओर से कुछ ऐसे काम किये जाँय जिससे हमको सरकार के प्रति विश्वास हो सके तथा विभिन्न राजनीतिक दलों का सहयोग प्राप्त हो सके। हम सरकार के सम्मेलन की सफलता के लिये नीची लिखी हुई बातें आवश्यक समझते हैं; (१) शान्ति पूर्ण वातावरण के लिये सुलह की नीति वर्ती जाय; (२) प्रगतिशील राजनीतिक दलों का सहयोग प्राप्त किया जाय और उनको सम्मेलन में शामिल किया जाय।

"काँग्रेस देश की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था है इसलिये उसका प्रतिनिधित्व सबसे अधिक होना चाहिये। वाइसराय ने सम्राट की तरफ़ से औपनिवेशिक प्रश्न पर जो एलान किया है उसके बारे में भी कुछ संदेह पैदा हो रहा है। लेकिन जहाँ तक हम समझते हैं सम्मेलन में यह विचार नहीं करना है कि औपनिवेशिक विधान के निर्माण और उसके स्वरूप के बारे में विचार होगा। हम यह भी आवश्यक समझते हैं कि जनता को विश्वास दिलाया जाय कि एक नया युग आने वाला है—बल्कि आज से ही शुरू हो गया है।"

इसमें कोई शक नहीं कि वाइसराय के रुख़ में जो परिवर्तन हुआ और सर्वदल सम्मेलन का जो एलान निकला वह असम्भव था, अगर विलायत में लेबर सरकार न होती। बाद में गाँधी जी

के कुछ विलायती मित्रों ने भी उनको यह सलाह दी थी कि वे लेबर सरकार से सहयोग करके हिन्दुस्तानं की समस्या हल करें। महात्मा जी ने उनको एक लम्बा उत्तर भेजा था जिसमें उन्होंने काँग्रेस के रुख़ को साफ़ कर दिया। फिर गाँधी जी और वाइसराय में भेंट हुई। मोती लाल जी भी उनके साथ थे। वाइसराय उसी दिन भ्रमण से वापस आये थे। ज्योंही उनकी ट्रेन दिल्ली पहुँची उनकी ट्रेन के नीचे बम फटा और ट्रेन का एक डब्बा उड़ गया। लार्ड इरविन साफ़ बच गये, उनके एक नौकर को कुछ चोट आई जिन्ना साहब, सरतेज बहादुर सप्रू और बिट्ठल भाई पटेल भी वाइसराय से मिले थे और आप लोगों ने अपना मत प्रकाशित किया। बात चीत का कोई नतीजा नहीं निकला और नेता वापस आ गये। पर राष्ट्र के लिए निराश होने का कोई कारण नहीं था। लाहौर काँग्रेस ने राष्ट्र के इसी गंभीर निर्णय की भूमिका प्रदान की।

इस समय कई ख़यालात लोगों के दिलों में उभर रहे थे। क्या दिल्ली एलान का ही समर्थन किया जाय? क्या वाइसराय के आशय को पसन्द किया जाय। क्या काँग्रेस के ध्येय को स्वराज ही रखा जाय? क्या कौंसिलों को बायकाट किया जाय? क्या एक प्रजातान्त्रिक विधान तैयार किया जाय? क्या गोलमेज़ कान्फ्रेन्स में शिरकत की जाय? क्या दो महीना इन्तज़ार करने के बाद काँग्रेस का ध्येय 'पूर्ण-स्वतन्त्रता' बना दिया जाय? इसी प्रकार के विचार लोगों के दिलों में उठ रहे थे। लेकिन वे सरकार की ओर से अधिक पाने की आशा नहीं कर रहे थे, इस बात के

लिये उतावले हो रहे थे कि किसी प्रकार 'पूर्ण स्वाधीनता' का एलान कर दिया जाय। पं० जवाहर लाल नेहरू इन लोगों में से एक थे। अपने भाषण में आपने इसका ज़िक्र किया और 'पूर्ण स्वाधीनता' को ही ध्येय माना।

पं० नेहरू का भाषण

इन्हीं विचारों का संगम लाहौर में था। मार्ग प्रदर्शक के रूप में पं० जवाहरलाल का भाषण आया। निश्चय ही यह पहला मौक़ा था जब कि काँग्रेस के सभापति ने साफ़ शब्दों में भारत वर्ष का ध्येय, मार्ग और नीति जनता के सामने तीखेपन और स्पष्टता से रखी थी। काँग्रेस का ध्येय 'पूर्ण स्वन्त्रता' माना गया। पहिली बार क़तई तौर पर 'सम्बन्ध विच्छेद' की बात कही गई। पहिली बार 'साम्यवाद' शब्द का प्रयोग सभा पति के भाषण में हुआ। अन्तर्राष्ट्रीयता की बातें जवाहरलाल जी ने ही प्रथम बार देश के सामने रखी। जवाहरलाल जी ने भाषण में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति की विवेचना की और बतलाया कि, "संसार में तेज़ी से परिवर्तन हो रहा है। जो कष्ट और दुःख हम चारों तरफ़ देखते हैं वह तो प्रसव वेदना के समान हैं। इस संताप के बाद एक नई सामाजिक व्यवस्था का जन्म होगा। भारत अपने पूर्वी देशों की तरह एक विश्वव्यापी आन्दोलन का हिस्सा है। आज वह लाचारी और पराधीनता के कारण अपनी स्थिति पर क़ाबू नहीं रख सकता, न तो वह भविष्य में आगे बढ़ने की आशा कर सकता है। यहाँ की सामाजिक व्यवस्था किसी स्थिर भित्ति पर क़ायम नहीं है। यह व्यवस्था स्वस्थ भी नहीं है। हिन्दू-मुसलमान,

सिक्ख तथा और भी जितनी जातियाँ हैं उनके अन्दर सामाजिक और राजनीतिक सामञ्जस्य लाने की कोशिश हो रही है। लेकिन सर्वदल सम्मेलन से सचमुच सभी लोगों को संतोष नहीं हैं। वाइसराय ने मीठे शब्दों का प्रयोग किया है, परन्तु जो कठोर वस्तु-स्थिति हमारे सामने है उसमें मीठे शब्दों से ही कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। हम जान बूझ कर एक संघर्ष छेड़ने नहीं जा रहे हैं। समझौते का दरवाज़ा तो हमेशा खुला है। जब उनकी तरफ़ से ही दरवाज़ा बन्द हो जाय तो हम क्या कर सकते हैं? हमारे लिये तो अब कलकत्ते का प्रस्ताव ही है। हमारा ध्येय तो 'पूर्णस्वाधीनता' ही है।"

जवाहरलाल जी ने साम्राज्यवाद और साम्राज्यवादी शोषण की बातें भी कहीं। आपने साफ़-साफ़ कहा कि, "मैं एक साम्यवादी और प्रजा तन्त्रवादी हूँ। मैं राजाओं, महाराजाओं में विश्वास नहीं करता।" अहिंसा के बारे आपने कहा कि, "हिंसा से प्रतिक्रिया और कमज़ोरी आती है। मौक़ा पड़ने पर संगठित हिंसा का प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन तब तक इसका कोई फल न निकलेगा जब तक उस हिंसात्मक आन्दोलन का आधार जनमत न हो। जन आन्दोलन से ही स्वराज्य मिल सकता है। इसलिये हमारी नीति कम से कम इस समय तो अहिंसात्मक ही रहेगी।"

'पूर्ण स्वन्त्रता' के क्या माने हैं, इसकी विवेचना करते हुये राष्ट्रपति ने कहा, "हमारे लिये स्वतन्त्रता का अर्थ है ब्रिटिशसत्ता और साम्राज्यवाद से पूर्ण स्वतन्त्रता पाना। हमारे सामने असली सवाल शक्ति संचय का है। हम इस कार्य को चाहे जिससे मन।

भी पुकारें, हमारा मतलब शक्ति को अपने हाथों में लेने से है। मैं नहीं समझता कि भारत पर लागू होने वाला कोई भी औपनिवेशिक विधान हमको असली शक्ति प्रदान कर सकता है। अगर कोई शक्ति मिल सकती है तो उसकी पहिचान यही है कि हमारे यहाँ से विदेशी फ़ौज और आर्थिक अधिकार उठ जाय। हम लोगों को इन्हीं बातों पर अपना ध्यान केन्द्री भूत करना है—आगे का काम .खुद ब .खुद हो जायेगा।"

इस अधिवेशन में बहुत से आवश्यक प्रस्ताव पास हुये। हिंसात्मक कार्य प्रणाली का विरोध किया गया।

आज़ादी का एलान

परन्तु सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव 'पूर्णस्वाधीनता' के एलान का था। यह प्रस्ताव यों है:—

"यह काँग्रेस, औपनिवेशिक स्वराज्य के प्रश्न पर वाइसराय के ३१ अक्टूबर वाले वक्तव्य के बाद, संयुक्त एलान को, जिसमें कार्य कारिणी की राय थी और जिस पर देश के बहुत से नेताओं ने जिसमें काँग्रेस वाले भी थे, दस्तख़त किये थे, ठीक समझती है। साथ ही यह काँग्रेस स्वराज्य के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन के मसले को हल करने के लिये वाइसराय के प्रयत्न की प्रशंसा करती है। फिर भी, इधर हाल में जो कुछ हुआ है उस पर तथा महात्मा गाँधी, पं० मोतीलाल नेहरू तथा, दूसरे नेताओं से वाइसराय से जो बातचीत हुई, उसके नतीजे पर ग़ौर करके इस राय की हो गई है कि मौजूदा हालत में काँग्रेस के गोल मेज़ परिषद् में भाग लेने से कोई लाभ नहीं होगा।

"इसलिये यह काँग्रेस, कलकत्ता काँग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार

यह एलान करती है कि अब काँग्रेस विधान की धारा (१) के 'स्वराज्य' का अर्थ 'पूर्ण स्वतन्त्रता' हो गया। यह काँग्रेस यह भी एलान करती है कि नेहरू कमेटी रिपोर्ट की सारी स्कीम रद्द हो गई। यह काँग्रेस आशा करती है कि अब से काँग्रेस वाले हिन्दुस्तान के लिये 'पूर्ण स्वतन्त्रता' का प्रयत्न करेंगे।

"पूर्ण स्वतन्त्रता आन्दोलन के पहिले क़दम के रूप में, तथा काँग्रेस के परिवर्तित ध्येय से सामंजस्य बनाये रखने के लिये, यह काँग्रेस तमाम काँग्रेस वालों तथा दूसरे राजनैतिक कार्य कर्ताओं से कहती है कि वे अगले चुनाव में किसी प्रकार का भाग न लें। यह काँग्रेस काँग्रेसवालों से कहती है कि वे कौंसिलों तथा दूसरी कमेटियों से इस्तीफ़ा दे दें। यह काँग्रेस सारे राष्ट्र से अपील करती है कि वह काँसग्रे के रचनात्मक कार्यों को अपनावे। यह काँग्रेस अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी को अधिकार देती है कि जब वह ठीक समझे सत्याग्रह—जिसमें लगान बन्दी भी शामिल है—शुरू कर दे। यह सत्याग्रह चाहे किसी एक ख़ास स्थान पर हो या सारे देश में हो। इस सत्याग्रह पर आवश्यक प्रतिवन्ध भी लगाये जा सकते हैं।"

आज़ादी का झन्डा

कलकत्ते के अधिवेशन में सरकार को, राष्ट्रीय माँग पूरी करने के लिये एक साल की मुहलत दी गई थी। ३१ दिसम्बर १९२९ ई० को १२ बजे रात को साल भर के अवकाश का समय समाप्त हो गया। उसी समय सारी काँग्रेस ने रावी के तट पर 'पूर्ण-स्वतन्त्रता' का झन्डा फहराया।

लाहौर का अधिवेशन बहुत ही महत्वपूर्ण था। हम पहले ही कह चुके हैं कि सन् २९ के पूरे साल अगले संघर्ष की तैय्यारी हुई। इस कांग्रेस ने उस तैयारी को सवाँर दिया—अब ध्येय साफ़ था और रास्ता भी। आगे चाहे जो भी संकट आवे रावी के पवित्र तट पर, पंचनद के वक्षस्थल पर, स्वातन्त्र्य-केतु फहरा दिया गया। उसकी रक्षा करना, उसके भार को वहन करने के लिये अपने कंधों को मजबूत करना, उसको राष्ट्र गगन में उन्नत रखना राष्ट्रकर्मियों का काम था।

—:❀:—

८

संघर्ष-युग (२)

(१६२६ ई० से १६३४ ई०)

[सत्याग्रह आन्दोलन का आरम्भ—स्वतन्त्रतादिवस—गाँधी जी की ग्यारह शर्तें—नमक क़ानून—गांधी जी का पत्र—डाँडी यात्रा—धरसाना का धावा—गाँधी जी की गिरफ़्तारी—धावे का विवरण—नृशंसता और नीचता—पेशावर—गढ़वाली पल्टन—बम्बई—मद्रास—गुजरात—बंगाल-अन्यस्थान—सुलह की बातचीत—गोलमेज़ परिषद—नेताओं की रिहाई]

देश धीरे धीरे आन्दोलन की ओर जा रहा था। रावी के तट पर 'पूर्ण स्वतन्त्रता' का एक एलान हो गया। नई कार्यकारिणी की बैठक २ जनवरी सन् ३० ई० को हुई। कार्यकारिणी ने असेम्बली के मेम्बरों को इस्तीफ़ा देने के लिये कहा। काँग्रेस वालों ने अपने इस्तीफ़े दाख़िल किये। निश्चय हुआ कि २६ जनवरी रविवार के दिन 'पूर्ण स्वतन्त्रता' दिवस मनाया जाय। एक घोषणा इसी के लिये प्रकाशित हो गई और गाँव तथा नगरों में उसको दोहराने के लिये कहा गया। २६ जनवरी सन् ३० ई० के दिन नीचे लिखी घोषणा देश भर में पढ़ी और दोहराई गई। इस घोषणा का भावार्थ यहाँ दिया जाता है।

"हमको विश्वास है कि दूसरे लोगों की तरह हम हिन्दुस्तानियों का भी यह अपरिहार्य हक़ है कि हम स्वतन्त्र रहें हम अपनी मेहनत

का फल भोगें और अपनी आवश्यकताओं को पूरी करें, जिससे कि हमारी पूरी उन्नति हो सके। हमारा यह भी विश्वास है, कि अगर कोई सरकार जनता के इन हक़ों को छीनती है और उस पर जुल्म करती है तो जनता को यह हक़ है कि वह उस सरकार को बदल दे या उसको खत्म कर दे। ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तानियों को आज़ादी ही नहीं छीनी है बल्कि उसने अपना आधार जनता का शोषण बनाया है। उसने हिन्दुस्तान को आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बर्बाद कर दिया। इस लिये हम विश्वास करते हैं कि हिन्दुस्तान को ब्रिटेन से अपना सारा सम्बन्ध विच्छेद कर लेना चाहिये और 'पूर्ण-स्वराज्य' या 'पूर्ण स्वतन्त्रता' हासिल करनी चाहिये।

"हिन्दुस्तान को आर्थिक दृष्टि से बर्बाद कर दिया गया। जो कर हम लोगों से लिया जाता है उसका हमारी आमदनी से कोई भी अनुपात नहीं है। हमारी रोज़ाना की आमदनी केवल ७ पैसा (दो पेंस से भी कम) है। हमसे जो भारी कर वसूल किया जाता है उसका २०% किसानों से करके रूप में लिया जाता है। नमक करके रूप में ३% लिया जाता है। नमक का भारी बोझ ग़रीबों पर पड़ता है।

"गाँव के उद्योग धन्धे, जिसमें चर्खा भी शामिल है, बर्बाद कर दिये गये। इसके फल स्वरूप वह साल में चार महीने बेकार रहते हैं। हाँथ का काम न रह जाने से उन लोगों की बुद्धि भी मन्द पड़ जाती है। इन बर्बाद उद्योग-धन्धों की जगह पर दूसरा कुछ भी काम, और मुल्कों की तरह, नहीं दिया गया।

"राजनैतिक दृष्टि से, हिन्दुस्तान की अवस्था ब्रिटिश ज़माने से खराब इसके पहिले और कभी नहीं थी। किसी भी सुधार ने जनता को असली

शक्ति प्रदान नहीं की। हममें से बड़े से बड़े आदमी को भी विदेशी सत्ता के सामने झुक जाना पड़ता है। विचार प्रकाशन और मिलने जुलने की आज़ादी हमको नहीं दी गई।

"साँस्कृतिक दृष्टि से, जो शिक्षाप्रणाली चालू है उसने हमारी साँस्कृतक शृंखला को तोड़ दिया है। हमको शिक्षा इसलिये दी जाती है कि जिन जंज़ीरों ने हमें बांध रखा है हम उसकी ही रक्षा करने लगे हैं।"

"आध्यात्मिक दृष्टि से, जबरिया निःशस्त्रीकरण से हमारा पौरुष समाप्त हो गया। एक विदेशी फ़ौज यहाँ पर क़ायम है और उसकी मौजूदगी से हमारा मुक़ाबिला करने का जोश ख़त्म हो गया, और हम यह सोचने लगे कि न तो हम अपनी रखवाली कर सकते हैं न विदेशी आक्रमण का मुक़ाबिला कर सकते हैं और न हम अपने बीबी बच्चों तथा माल की रक्षा भी चोरों, डाकुओं और बदमाशों से कर सकते हैं।

"ऐसे शासन के सामने झुकना, जिसने हमको चारों प्रकार से बर्बाद कर दिया है, हम ईश्वर और मनुष्य के सामने जुर्म समझते हैं। हाँ, हम यह समझते हैं कि अपनी आज़ादी पाने का सब से अच्छा मार्ग हिंसा नहीं है। इसलिये हम, जहाँ तक सम्भव हो सरकार से पूरा असहयोग करेंगे, और सत्याग्रह के लिये—जिसमें लगान बन्दी भी शामिल है—तैयारी करेंगे। हमको पूरा विश्वास है कि, अगर हमने सरकार से पूरा असहयोग किया, और बिना हिंसा के लगान और दूसरे कर देना बन्द कर दिया तो यह अमानुषिक शासन समाप्त हो जायेगा। इसलिये हम यह शपथ पूर्वक निश्चय करते हैं कि वक्त-वक्त पर निकलने वाले काँग्रेस के आदेशों का पूरा पालन करेंगे जिससे कि 'पूर्ण-स्वराज्य' की स्थापना हो सके।"

२५ जनवरी को वाईसराय ने असेम्बली में भाषण दिया, लोगों के हृदय में जो कुछ समझौते की रही सही आशा थी वह भी खत्म हो गई। 'स्वतन्त्रा दिवस' का देश व्यापी समारोह हुआ। सारे देश में आज़ादी की लहर दौड़ गई। और, लोग सत्याग्रह आन्दोलन के आरम्भ होने का इन्तज़ार करने लगे।

वाईसराय के भाषण का जवाब गाँधी जी ने "यंग इण्डिया" में दिया। आपने कहा कि, "वाईसराय तब तक इन्तिज़ार करना चाहते हैं जब तक हर एक भारतीय करोड़पति ७ पैसे वाला मज़दूर न हो जाय। काँग्रेस के बस में हो तो आज ही हर एक भूखे किसान के लिये कम से कम खाने भर का इन्तज़ाम हो जाय— काँग्रेस तो हर एक किसान को करोड़पति बनाना चाहती है। जब किसान पूरी तरह से जान जाय, वह समझ जाय कि 'क़िस्मत' के कारण उसकी दुर्दशा नहीं हो रही है बल्कि विदेशी सत्ता के कारण, तो वह वैधानिकता और अवैधानिकता में फ़र्क नहीं करेगा। वह तो हिंसा और अहिंसा में भी भेद नहीं करेगा। काँग्रेस किसानों को सही रास्ता सुझाने की आशा करती है।"

गाँधी जी का शर्तें

गाँधी जी ने लार्ड इर्विन के सामने नीचे लिखो ग्यारह शर्तें रखी :—

(१) मादक वस्तुओं का पूर्ण निषेध।

(२) विनिमय दर १ शिलिंग ४ पेंस हो।

(३) भूमि कर में कम से कम ५०% कमी हो। लगान का बढ़ाना घटाना असेम्बली के हाथ में हो।

(४) नमक पर से कर उठा लिया जाय।

(५) कम से कम ५०% कमी फ़ौजी ख़र्चे में की जाय।

(६) ऊँची तनख़्वाहों में ५०% कमी की जाय।

(७) विदेशी कपड़ों पर 'संरक्षण कर' (Protective tarrif) लगाया जाय।

(८) Coastal Traffic Reservation Bill पास किया जाय।

(९) तमाम राजनैतिक बन्दियों को छोड़ दिया जाय। उनको चाहे न छोड़ा जाय जिन्होंने क़त्ल किये हों या क़त्ल की कोशिश की हो, या जिनको मामूली न्यायाधीशों के यहाँ से सज़ा मिली हो। तमाम राजनैतिक मुक़द्दमें उठा लिये जाँय। १२४ ए और १८१८ का रेगूलेशन III उठा लिये जाँय। तमाम जलावतन देश वासियों को लौट आने की आज्ञा मिले।

(१०) ख़ोफ़िया पुलिस का मुहकमा उठा लिया जाय या उसको जो आवश्यकता से अधिकार मिले हैं वे वापस ले लिये जाँय।

(११) आत्मरक्षा के लिये हथियार पर लाइसेन्स दिये जाँय और इस पर जनता के चुने हुये लोगों का अधिकार रहे।

गाँधी जी की ये शर्तें नहीं मानी गईं, न सरकार की ओर से ही कोई दूसरी शर्तें रखी गईं। इसलिये समझौते की बात ही न उठी। सत्याग्रह का क्या रूप होगा? किस तरह से सरकार के क़ानून तोड़े जायेंगे? सबके सामने यही सवाल था। गाँधी जी ने नमक क़ानून तोड़ने की बात सोची। उनका प्रोग्राम था डाँडी में जाकर नमक

क़ानून तोड़ना। "उनके साथ केवल साबरमती के ही सत्याग्रही जायेंगे" ऐसा उन्होंने कहा। "बाद में उनकी गिरफ़ारी के बाद सारा देश अपना कर्तव्य समझ लेगा।"

नमक क़ानून का इतिहास भी मजेदार है। सन् १८३६ ई० में 'साल्ट कमीशन' ने निश्चय किया कि हिन्दुस्तानी नमक पर कर लगाया जाय। क्यों? इसलिये कि हिन्दुस्तान के मालों को लाद कर जहाज़ विलायत जाया करते थे। इन जहाज़ों पर कच्चे माल और खाने के सामान हुआ करते थे। हमेशा से यहाँ से निर्यात ही अधिक बज़नी और ज्यादा हुआ है। सन् २५ में ३१६ करोड़ निर्यात और २४९ करोड़ आयात हुआ था। इसके माने यह है कि जब यहाँ से जहाज़ जाते हैं तो अच्छी तरह से लदे रहते हैं परन्तु जब वे हिन्दुस्तान आते हैं तो उनपर उतने माल नहीं रहते। इसलिये ख़ाली जगह को भरना ज़रूरी होता है। साल्ट कमीशन ने निश्चय किया कि हिन्दुस्तानी नमक पर कर लगाया जाय जिससे विलायती नमक की खपत हिन्दुस्तान में हो सके। लिवरपूल के बन्दरगाह पर जहाज़ पड़े रहते थे। जब इनमें नमक भर दिया गया तो वे समुद्र पर आसानी से चलने लगे। यह नमक कर का इतिहास है। तबसे आज तक हिन्दुस्तान में ग़रीबों को इस कर का बोझ बारदाश्त करना पड़ रहा है। गाँधी जी ने इसी क़ानून को तोड़ने की बात कही।

गाँधी जी ने वाइसराय को एक लम्बा पत्र लिखा। इसमें उन्होंने लिखा कि, "मैं बृटिश शासन को अभिशाप समझता हूँ, लेकिन मैं किसी अँग्रेज़ को नुक़सान नहीं पहुँचाना चाहता।......मैं इस सरकार को अभिशाप इसलिये समझता हूँ कि इसने हमें राजनैतिक

दृष्टि से गुलाम बना डाला, हमारी संस्कृति को नष्ट कर दिया, शोषण करके हमको तबाह कर दिया और हमारे हथियार छीन कर हमको कायर बना दिया।" अन्त में आपने कहा कि, "यह पत्र धमकी के रूप में नहीं लिखा गया है, बल्कि यह तो मेरा फ़र्ज़ था जो कि एक सत्याग्रही के लिये आवश्यक है।"

वाइसराय ने इस पत्र को पाते ही अपना उत्तर प्रकाशित कर दिया। उत्तर कोरा था। गाँधी जी ने उत्तर पाकर कहा, "मैंने घुटने टेक रोटी माँगी थी, उत्तर में मुझे पत्थर मिला। अंग्रेजी राष्ट्र तो केवल शक्ति प्रयोग का ही आदी है। इसलिये मुझे वाइसराय के जवाब पर आश्चर्य नहीं हुआ। जिस जन-शान्ति को हमारा राष्ट्र जानता है वह शान्ति तो जन-कारागार की शान्ति है। मैं अँग्रेज़ी क़ानून को मानने से इन्कार करता हूँ और मैं इस ज़बरदस्ती की शान्ति को, जिसके कारण राष्ट्र अपने स्वतन्त्र विचारों को कह नहीं सकता और जिसके कारण उसका गला घुटता जा रहा है, तोड़ डालना अपना पवित्र कर्तव्य समझता हूँ।" इस वक्तव्य के बाद गाँधी जी डाँडी-यात्रा अवश्यम्भावी हो गई।

डाँडी-यात्रा

गाँधी जी के पहिले ही सरदार वल्लभ भाई पटेल गाँव वालों को तैय्यार करने के लिये निकल पड़े। मार्च के पहले सप्ताह में पटेल जी गिरफ़ार हो गये। इस ख़बर को पाकर साबरमती के किनारे ७५०००, जनता ने एकत्रित होकर निश्चय किया कि जब तक पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त न हो जाय जनता शान्त न होगी। गाँधी जी स्वयं इस सभा में उपस्थित थे। गाँधी जी ने अपनी यात्रा

१२ मार्च, १९३० ई० को शुरू की। चलते समय गाँधी जी ने कहा, "जब तक मैं सत्याग्रह शुरू न करूँ तुम लोग इन्तज़ार करो। एक दफ़ा अगर मैं यात्रा को चल पड़ूँगा तब क्या करना होगा यह सभी जान जायेंगे। तुम लोगों को मालूम पड़ जायगा कि क्या करना चाहिये।"

गाँधी जी की यात्रा के साथ देश में सनसनी बढ़ती गई। राजनैतिक वातावरण गर्म होता गया। अपनी गिरफ़ारी की संभावना देखते हुए गाँधी जी ने कहा कि देश को पूर्ण शान्ति रखनी चाहिये। उन्होंने आशा किया कि सारा देश अपने कर्तव्य को स्वयं ही समझ लेगा। जब नेता लोग गिरफ़ार हो जायेंगे उस समय जनता में ऐसे ही नेता पैदा होंगे। हर एक को इस आन्दोलन में किसी न किसी प्रकार सहायता करनी चाहिये।

इसी समय पं० मोतीलाल जी ने अपना 'आनन्द भवन' काँग्रेस को दान दे दिया। इधर देश भर में सरगर्मी बढ़ती जा रही थी। एक फ़िल्म कम्पनी ने गाँधी जी की डाँडी यात्रा की तस्वीर ली थी, उसका प्रदर्शन बन्द हो गया। गाँधी जी का दर्शन करने हज़ारों की तायदाद में जनता आती थी। क़रीब तीन सौ गाँव रास्ते में पड़ते थे, जनता की संख्या बढ़ती ही जा रही थी। गाँधी जी ने कहा कि अगर वे गिरफ़ार हो जाँय तो उनका स्थान वयोवृद्ध श्री अब्बास तैयब जी लेंगे। उनके बाद श्रीमती सरोजिनी नायडू का नम्बर था। काँग्रेस कमेटी के २१ मार्च वाली बैठक में गाँधी जी की डाँडी-यात्रा की सराहना की गई। साथ ही सभी सूबा काँग्रेस कमेटियों को सत्याग्रह आरम्भ करने के लिये तैयारी करने का

आदेश दिया गया। २४ दिनों तक डाँडी की यात्रा रही पर गाँधी जी गिरफ़ार नहीं हुये। ५ अप्रैल को सबेरे गाँधी जी डाँडी पहुँच गये। ६ अप्रैल से सत्याग्रह शुरू होने की बात थी। सबेरे की प्रार्थना के बाद गाँधी जी अपने साथियों के साथ समुद्र के किनारे नमक बटोरने गये। आपने उस समय एक बयान दिया कि "नमक क़ानून तोड़ दिया गया, अब सारे देश को यह क़ानून तोड़ना चाहिये"। सारे देश में आग सी लग गई।

बड़ी बड़ी सभायें देश भर में हुईं। कहीं कहीं लाखों की भीड़ एकत्रित हो गई। सारे देश में नमक क़ानून तोड़ा गया। पेशावर में गोली चली, करांची में भी गोली चली। कलकत्ता, पटना, मद्रास, शोलापूर, रत्नागिरी आदि में पुलिस का नंगा नाच शुरू हो गया। गाँधी जी ने इस ज़माने को "काला शासन" कहा। आर्डिनेन्सों का राज्य शुरू हो गया। प्रेसों से ज़मानतें माँगी गईं। बहुत से अख़बार बन्द हो गये। स्वतन्त्र विचार प्रकट करना असम्भव हो गया।

धरसाना का धावा

इसी समय ताड़ के पेड़ों को काटने का प्रोग्राम बना। सारे देश में ताड़ के पेड़ काटे गये। विदेशी कपड़ों का बायकाट ज़ोरों से हुआ। होलियाँ जलाई गईं और धरना जारी हुआ। लोगों का सामाजिक बहिष्कार हुआ। इस बहिष्कार का नतीजा अच्छा ही हुआ। इसके बाद धरसाना और चरसाढ़ा के नमक बनाने के स्थानों पर धावा करने का निश्चय हुआ। गाँधी जी ने धावा करने के निश्चय की सूचना लार्ड इरविन को दे दी। गाँधी जी ने एक वक्तव्य दिया जो इस प्रकार है :—

"इतना सुन्दर आरम्भ अगर अन्तिम सीमा तक पहुँचाया जा सके तो स्वराज्य अवश्यम्भावी है। ऐसा करके हिन्दुस्तान अपने युक्त ही एक आदर्श जगत के सामने उपस्थित कर सकेगा। आज एक मुट्ठी नमक में ही भारत का सारा आत्म सम्मान रखा है। मुट्ठियां टूट जांय परन्तु वे खुलने न पावें।...........अगर मैं गिरफ़ार हो जाऊँ तो सारे गांव वालों को नमक बटोरना चाहिये। स्त्रियों को धरना देना चाहिये, विदेशी वस्त्रों की होली जलनी चाहिये। अछूतपन दूर हो जाना चाहिये, भारत के सभी रहने वालों को भाई समझना चाहिये। विद्यार्थियों को कालेज और स्कूल छोड़ देना चाहिये। सरकारी नौकरों को इस्तीफ़ा दे देना चाहिये। उनको जनता की सेवा में लग जाना चाहिये, तभी हम पूर्ण स्वराज की ओर बढ़ सकेंगे।"

गाँधी जी गिरफ्तार

इस वक्तव्य के बाद ही गाँधी जी गिरफ़ार किये गये। रात को १ बजकर १० मिनट पर गाँधी जी पुलिस लारी में बिठाये गये। बाद में वह यरवदा जेल में पहुँचाये गये। 'लन्दन टेलीग्राफ़' के सम्वाद दाता ने गिरफ़ारी के दृष्य का बहुत सुन्दर वर्णन किया है :—

"जब हम ट्रेन का इन्तज़ार कर रहे थे वह समय कुछ अजीब सा था; क्योंकि हम समझते थे कि यह दृश्य जिसके देखने वाले केवल हमी लोग थे—एक इतिहास की वस्तु हो जायेगी। यह एक पैग़म्बर की गिरफ़ारी थी—झूठ या सच, करोड़ों हिन्दुस्तानी गाँधी जी को एक पुण्यात्मा और सन्यासी मानते हैं। कौन जाने, सौ साल बाद एक महान आत्मा के रूप में इस व्यक्ति की पूजा

३० करोड़ हिन्दुस्तानी न करेंगे। हम इन विचारों को दूर न कर सके—सुबह इस पैग़म्बर को गिरफ़ार और नज़र वन्द होते देखकर मन न जाने कैसा हो रहा था !"

गिरफ़ारी का असर राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय भी हुआ। सारे देश में हड़ताल हुई। बम्बई की सारी मिलें वन्द हो गईं। जी० आई० पी० तथा बी० बी० ऐण्ड सी० आई० के कारखाने के मज़दूरों ने हड़ताल कर दी। बम्बई के कपड़े के व्यापारियों ने ६ रोज़ की हड़ताल का एलान किया। शोलापूर में जोश अधिक बढ़ गया। ६ पुलिस चौकियाँ फूँक दी गईं। पुलिस की गोली से बहुत से आदमी मर गये। कलकत्ते में भी गड़बड़ी हुई।

विदेशों में भी महात्मा जी की गिरफ़ारी का असर पड़ा। पनामा में रहने वाले भारतीयों ने २४ घंटे की हड़ताल की। सुमात्रा में हड़ताल हुई। फ़्राँस के तमाम अख़बार गाँधी जी और उनके आन्दोलन से भरे थे। बायकाट का असर जर्मनी में भी पड़ा। वहाँ के मिलमालिकों के भारतीय एजेन्टों ने सामान भारत भेजने को मना कर दिया।

धावे का विवरण

गाँधी जी का स्थान अब्बास तैयब जी ने लिया। आप १२ अप्रैल को गिरफ़ार कर लिये गये। बाद में सत्याग्रहियों ने धावा जारी रखा। तैय्यब जी का स्थान श्रीमती सरोजिनी नायडू ने लिया। आपके अधिनायकत्व में सत्याग्रही नमक लूटने जाते थे और लाठियों से पीटे जाते थे। १९ अप्रैल की सुबह को सैकड़ों सत्याग्रहियों ने 'वादला साल्ट वर्क्स' पर धावा किया, पुलिस

पिस्तौलों से लैस वहाँ मौजूद थी। ४०० सत्याग्रही गिरफ़ार किये गये।

२१ मई को जनता की ओर से धरसाना पर धावा हुआ, २५०० सत्याग्रहियों ने इस धावे में हिस्सा लिया। लोग धावे में नमक लूट कर लाते थे और पुलिस उनके ऊपर लाठियाँ बरसाती थी। हज़ारों आदमी दर्शक के रूप में उपस्थित थे। इमाम साहब, प्यारे लाल, मनि लाल गाँधी, श्रीमती सरोजिनी नायडू आदि सभी गिरफ़ार कर लिये गये। उस दिन २९० सत्याग्रही गिरफ़ार हुये। धरसाना को चारों तरफ़ से फ़ौज और पुलिस ने घेर लिया। तीसरी जून को २०० के दो दल उनतादी कैम्प से धरसाना नमक लूटने गये। पुलिस ने इनको घेर कर लाठी से मारा। २५ को १०० सत्याग्रही और २,००० जनता नमक लूटने गई। ११५ गिरफ़ार हुये। बीसों घायल हुये। इस प्रकार सैकड़ों सत्याग्रही रोज़ाना गिरफ़ार होते रहे और पिटते रहे।

सब से महत्वपूर्ण धावा पहिली जून का था। उस दिन १५,००० सत्याग्रही तथा दूसरे लोग वादला पर धावा करने गये थे। इसमें औरतें भी थीं, बच्चे भी थे। पुलिस की लाठियों से ११५ सत्याग्रही सख़्त घायल हुये। फिर भी लोग नमक बनाने की कड़ाहियों तक पहुँच ही गये। इस धावा को रोकने के लिये स्वयं होम मेम्बर ज़िम्मेदार बनाये गये थे। वादला में गिरफ़ार होने वाले ४,००० सत्याग्रही वर्ली जेल में बन्द थे। किसी बात पर उनसे पुलिस वालों से झगड़ा हो गया। सत्याग्रहियों को डराने के लिये फ़ौज

की सहायता ली गई थी। जिसके फल स्वरूप सैकड़ों आदमी बुरी तरह से घायल किये गये।

नृशंसता और नीचता

जिस प्रकार की घृणित नीति का पालन सरकारी अफ़सरों ने किया वह अवर्णनीय है। मि० हुसेन, बम्बई के जज, श्री के० नटराजन, श्री जी० के० देवधर आदि ने स्वयं अपनी आँखों से इन नृशंस अत्याचारों को देखकर यह वक्तव्य दिया :—

"सत्याग्रहियों को तितर बितर करने के लिये योरोपियन घुड़सवार अपने हाथों में लाठी लेकर तेज़ी से घोड़ा दौड़ाते हुये निकल जाते थे। ये लोग आस पास के गाँवों तक में धावा करते थे। गाँवों की गलियों तक में तेज़ी से घोड़े दौड़ाये जाते थे। इस प्रकार मर्द औरत यहाँ तक कि छोटे छोटे बच्चे भी भगाये जाते थे। लोग भाग कर मकानों में छिप जाते थे। अगर वे छिप नहीं पाते थे तो लाठियों से बुरी तरह पीटे जाते थे।"

"New Freeman" (न्यू फ्री मैन) के सम्वाददाता मि० मिलर ने धरसाना के दृश्य को इस प्रकार अंकित किया है :—

"पिछले १८ वर्षों मैं मैंने २२ देशों में सम्वाददाता का कार्य किया है। इस बीच में मैंने अनगिनंती दंगे, झगड़े और बग़ावत देखे हैं। लेकिन इतने समय में मैंने धरसाना ऐसा वीभत्स दृश्य नहीं देखा। कभी कभी दृश्य इतना दुःखप्रद होता था कि मुझसे देखा नहीं जाता था और कुछ क्षणों के लिये मुझे अपना मुँह घुमा लेना पड़ता था। सब से विचित्र बात थी सत्याग्रहियों का अनुशासन। ऐसा जान पड़ता था कि उन्होंने गाँधी जी के अहिंसा के सिद्धान्त को अपने चरित्र में शामिल कर लिया है।"

जनता के ऊपर घोड़े दौड़ाना और लाठियों की वर्षा करना,

गाँवों को लूट लेना, औरतों को बेइज़्ज़त करना, बेक़सूर नौजवानों को जेल में बन्द कर देना उस ज़माने में फ़ैशन हो गया था। लार्ड इरविन ने जहाँ तक हो सका आन्दोलन को कुचल देने की कोशिश की। गाँधी जी, जवाहर लाल तथा काँग्रेस के सभी नेता गिरफ़्तार कर लिये गये। काँग्रेस ग़ैर क़ानूनी संस्था क़रार दे दी गई। देश भर में फ़ौज घुमाई गई, और जनता के दिलों में डर पैदा करने की हर कोशिश की गई।

पेशावर का काण्ड

पेशावर की दुर्घटनाओं का वर्णन श्री विट्ठल भाई पटेल की रिपोर्ट में है परन्तु सरकार ने उस रिपोर्ट को ज़प्त कर लिया और आज जनता उसे पा नहीं सकती। कहा जाता है कि जितना ज़ुल्म पठानों पर हुआ उतना हिन्दुस्तान में और कहीं नहीं हुआ था। २३ अप्रैल को पेशावर में एक सभा हुई। दूसरे दिन ६ नेता गिरफ़्तार कर लिये गये। बीच में पुलिस की लारी टूट गई। इस लारी में बाद में गिरफ़तार होने वाले दो नेता थे। इन्होंने थाने पर पैदल स्वयं जाने का इरादा किया। पुलिस ने कुछ नहीं कहा। इनके पीछे जनता की भीड़ नारे लगाती चली जा रही थी। एकाएक घुड़सवार आया और भीड़ को देखकर वापस चला गया। फ़ौरन ही फ़ौजी मोटरें आ गईं। इसी समय एक अँग्रेज़ मोटर साइकिल पर आया और फ़ौजी मोटर से टकरा गया। मोटर में से किसी ने गोली चलाई। एक मोटर में आग लग गई। डिप्टी कमिश्नर मोटर से निकल कर थाने की तरफ़ बढ़ा। मोटरों से गोलियाँ दगने लगी-जनता ने लाशों को उठाना शुरू किया। कोई तीन घंटे तक गोली चलती

रही, पर सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इस पर भी केवल ३० आदमी मरे और ३३ घायल हुये। लोगों का ख्याल है कि यहाँ कई सौ आदमी मरे और घायल हुये। २५ को पुलिस और फ़ौज एकाएक ग़ायब हो गई। कांग्रेस और खिलाफ़त के स्वयं सेवकों ने शहर की रक्षा की। २८ को पुलिस वापस आ गई और स्वयं सेवकों से शहर का इन्तज़ाम अपने हाँथों में ले लिया। बाद में शहर पर फ़ौज का अधिकार हो गया।

शहर में जो कुछ हुआ उसकी एक दो मिसालें देखिये। ३१ मई सन् ३० ई० की बात है। श्री गंगा सिंह कम्बोज जो कि फ़ौज की डेयरी में काम करते थे, अपने बीबी बच्चों के साथ एक ताँगे में बैठे चले जा रहे थे। काबुल गेट के पास एक ब्रिटिश लान्स कारपोरल ने गोली चलाई। श्री गंगा सिंह के दोनों बच्चे—बीबी हरपाल कुँअर उम्र ९½ वर्ष और काका बख्शी-तर सिंह, उम्र १ साल ४ महीना—ताँगे से ज़मीन पर गिर पड़े। माता श्रीमती तेज कुंअर को भी गोली लगी। हज़ारों आदमी बच्चों की अर्थी में शामिल हुये। अर्थी ले जाने वालों पर गोली चलाई गई। भीड़ को छट जाने का मौक़ा भी नहीं दिया गया। गोली केवल दो गज़ की दूरी से चलाई गई थी। जब अर्थी ले जाने वाले ढेर हो जाते थे तो दूसरे लोग अर्थी उठा लेते थे। १७ राउण्ड फ़ायर किया गया। सरकार का कहना है कि केवल ९ आदमी मरे और १८ घायल हुये।

इसी ज़माने में गढ़वाली सिपाहियों को आज्ञा मिली कि वे एक सभा पर गोली चलावें। उन्होंने लारी पर चढ़ने से इन्कार कर दिया। वे बेहथियार बेक़सूर जनता पर गोली चलाना नहीं

गढ़वाली पल्टन चाहते थे। इन सिपाहियों पर मुक़दमे चले और इनको १४ से १० साल तक की सज़ायें मिलीं।

पेशावर के लोगों ने जिस बहादुरी के साथ सरकार के ज़ुल्मों को बर्दाश्त किया, वह बेमिसाल है। पेशावर दिवस मनाकर कॉंग्रेस ने इन्हीं वीर पेशावरी साथियों और गढ़वाली पल्टन के बहादुरों की स्मृति में श्रद्धाञ्जलि चढ़ाई।

बम्बई ३१ जुलाई ३० को तिलक जी की वर्षी थी। बम्बई में एक बड़ा जलूस निकाला गया। श्रीमती हंसा मेहता जलूस में सबके आगे थीं। शहर में कॉंग्रेस कार्य कारिणी की बैठक हो रही थी। कार्य कारिणी के कुछ सदस्य भी इस जलूस में शामिल थे। जलूस आगे बढ़ रहा था, उसी समय पर १४४ धारा लागू कर दी गई। जलूस में उस समय हज़ारों आदमी शामिल थे। भीड़ पीछे हटने के लिये तैयार नहीं थी। रात भर पानी बरसता रहा। भीड़ बैठी रही। पं० मदन मोहन मालवीय, सरदार वल्लभ भाई पटेल, श्री जै रामदास दौलत राम, श्रीमती कमला नेहरू तथा श्रीमती मणिबेन पटेल को गिरफ़ार कर लिया गया। श्रीमती हंसा मेहता और श्रीमती अमृत कुंअर को गिरफ़तार कर लेने के बाद भीड़ पर लाठी चलाई गई। हताहतों की संख्या अप्राप्य है।

इस घटना के बाद बम्बई के पुराने कमिश्नर हटा दिये गये। उनकी जगह पर मि० विल्सन आये। आपने भीड़ हटाने की नई तरकीब निकाली, पहले बदन पर लाठियाँ बरसाई जातीं थीं अब सिर पर लाठियाँ पड़ने लगीं। इस तरह की बर्बरता से जनता का

जोश भी बढ़ जाता था। एक भीड़ में केवल ५,००० जनता थी, लाठी चलने के बाद के दृष्य को देख कर भीड़ बढ़ गई, संख्या २५,००० हो गई। भीड़ पर गोली चलाई गई। पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास करने के लिये १ लाख जनता आज़ाद मैदान में एकत्रित हुई। इस भीड़ पर बहुत देर तक गोली चलती रही। आज़ाद मैदान तथा दूसरे मैदान महीने में कई बार इसी प्रकार जनता के खून से तर किये जाते थे। इन दृष्यों को देखकर महाराजा बीकानेर ने कहा था कि इन लाठियों से तो अच्छा मार्शल ला है।

मद्रास में

पुलिस ने एक नया ढंग अख़्तियार किया। तमाम सत्याग्रहियों को इकट्ठा करके पुलिस लारी में बिठाकर शहर के बहुत दूर छोड़ आया करती थी। यहाँ पर भी वही ज़ुल्म हुये जो बम्बई में होते थे।

इसी समय सरदार पटेल छूटकर आ गये। आपने गुजरात और बम्बई में काँग्रेस संगठन शुरू कर दिया। आपने कहा कि "काँग्रेस ग़ैरकानूनी संस्था करार दे दी गई है। आप घर घर को काँग्रेस का दफ़्तर बना लें।" इस समय गुजरात में बारदोली, बोरसद और जम्बूसर में लगान बन्दी का आन्दोलन चल रहा था। अधिकारियों की तरफ़ से काफ़ी ज़ुल्म हुआ। फलस्वरूप ८०,००० आदमी रियासतों में चले गये। इसी प्रकार हिन्दुस्तान के हर सूबे में नृशसंता का साम्राज्य था। गाँधी जी ने इसी युग को 'गुंडा-राज' की उपाधि दी थी।

बंगाल में गिरफ़्तारी सब से अधिक हुई थी। आतंकवाद का बंगाल में पहले से ही प्रभाव था। यहाँ पुलिस की नृशसंता ने नौजवानों की हिंसात्मक प्रवृत्ति को जगाया। इस प्रवृत्ति ने संगठित आतंकवाद का रूप धारण किया। आतंकवाद को दबाने के लिये पुलिस ने दमन चक्र चलाया। हज़ारों की तादाद में नौजवान पकड़े गये। उनको तरह तरह की यातनायें दी गईं। पुलिस ने खुलकर शक्ति का प्रयोग किया।

बंगाल

इसी प्रकार यू० पी०, सी० पी०, कर्नाटक आदि स्थानों में भी भिन्न भिन्न प्रकार के आन्दोलन चले। कहीं लगान बन्दी हुई, कहीं जंगल सत्याग्रह हुआ, कहीं चौकीदारी टैक्स रोका गया। कर्नाटक में ताड़ और खजूर के पेड़ काटे गये। यहाँ पर सिरसा तालुका में १३० में से ९६ पटेलों ने स्तीफ़ा दे दिया। सिद्दापूर में २५ और अकोला में ६३ में से ४३ ने स्तीफ़ा दे दिया। कर्नाटक में करीब ८०० घरानों ने आन्दोलन में भाग लिया। सिद्दापूर और अकोला में ८०० व्यक्ति जेल गये जिनमें १०० औरतें थीं। इस ज़माने में अतिरिक्त पुलिस-कर भी लगते थे। यह टैक्स केवल अकोला में ३७००० रु० लगा था। क़रीब ८ लाख से ज़्यादा की ज़मीन ज़ब्त की गई थी। इन सब स्थानों में काँग्रेस दफ़्तर छीन लिये गये। काँग्रेस की फ़ाइलें, किताबें, पर्चे, झण्डे सभी पुलिस उठा ले गई। सभी स्थानों पर लाठियाँ बरसाई गईं। सभायें सभी जगह भंग की गईं। १४४ धारा लगाई गई, १०८ धारा में लोग पकड़े गये, तलाशियाँ हुईं,

अन्य स्थान

प्रेस ज़ब्त किये गये। ज़मानतें माँगी गई इत्यादि। यहाँ तक की काँग्रेस वालों को आश्रय देने पर भी सज़ायें दी गईं। मिदनापूर में तो ज़रा सी बात के लिये भी गोली चला देने की आज्ञा थी। इन जगहों में सैकड़ों आदमी गोली के शिकार हुये। औरतों के साथ भी बेहयाई और बेशर्मी का बर्ताव किया गया। दर्जे में बैठे हुये विद्यार्थी पीटे गये। जेलों में जो दुर्दशा थी, वह भुक्त भोगी ही जानते हैं।

लन्दन के 'डेली हेराल्ड' के सम्वाददाता मि० सोल कोम्ब ने जून में पं० मोतीलाल जी से बात चीत की।

सुलह की बातचीत आपने सर तेज के पास भी पत्र लिखा। पं० मोतीलाल जी राष्ट्रपति जवाहरलाल जी से बातचीत करने को राज़ी हो गये बशर्ते कि सरकार यह वायदा करले, कि गोल परिषद् के बाद हिन्दुस्तान को ज़िम्मेदार सरकार दी जायेगी। बाद में पं० मोतीलाल जी गिरफ़्तार कर लिये गये। जयकार—सप्रू ने नेहरू पिता पुत्र से भेंट की; गाँधीजी से भी ये लोग मिले। बहुत कुछ बात चीत होने पर यह ज़रूरी समझा गया, कि दोनों नेहरू गाँधीजी से यरवदा में मिलें। सरकार ने इसके लिये आज्ञा दे दी। दोनों नेहरू और डा० महमूद यरवदा गये। वहाँ पटेल, श्रीमती नायडू और जयराम दास दौलत राम जी थे। गाँधीजी और दूसरे नेताओं ने कहा कि सुलह की बातें तब तक नहीं हो सकतीं, जब तक कि तमाम राजनैतिक क़ैदी छोड़ न दिये जाँय। लार्ड इरविन इस पर तैयार नहीं थे। अन्त में सुलह की बात चीत असफल हो गई।

१२ नवम्बर सन् १९३० ई० को लन्दन में गोल मेज़ परिषद् शुरू हुई। इस परिषद् में वे ही शामिल हुये जिनको चुनकर सरकार ने भेजा था। जनता का प्रतिनिधित्व करने वाला इनमें कोई नहीं था।

गोल मेज़ परिषद्

कुछ राजे, महाराजे, नबाब और पूँजीपति तथा उनके प्रतिनिधि ही इस परिषद् को सुशोभित करने के लिये उपस्थित थे। परिषद् में बहुत सी कमेटियाँ बनीं और कुछ इधर उधर के काम करके परिषद् समाप्त हुई। प्रधान मन्त्री ने अन्त में कहा था कि "अगर वे लोग जो अब सत्याग्रह में लगे हुये हैं, वाईसराय की अपील का ध्यान करेंगे तो उनकी भी सेवायें इस परिषद् में स्वीकार की जायेंगी।

२५ जनवरी सन् ३१ को गवर्नर-जेनरल ने एक भाषण में कहा कि हम "काँग्रेस वर्किङ्ग कमेटी तथा उससे सम्बन्धित सभी लोगों को आपस में मिलने की आज़ादी देना चाहते हैं। इसलिये काँग्रेस अब ग़ैरक़ानूनी संस्था नहीं रहेगी और मि० गाँधी तथा वर्किङ्ग कमेटी के वे मेम्बर जो १ जनवरी ३० से उसमें रहे हैं छोड़ दिये जाँयेंगे। मैं समझता हूँ, कि जिस आशा से वे छोड़े जा रहे हैं उसे वे भी पूरा करेंगे। मैं समझता हूँ, कि इस सकंट पूर्ण अवस्था में शान्त वातावरण पैदा करने की आवश्यकता को वे महसूस करेंगे।"

इसके बाद नेता छोड़ दिये गये।

६

संघर्षयुग (३)

(१६२६ ई० से १६३४ ई० तक)

[वर्किंग कमेटी की बैठक—पं० मोतीलाल जी का निधन—राजनैतिक परिस्थिति—गाँधी-इरविन समझौते की शर्तें—भगतसिंह—समझौते के बाद—प्रश्नोत्तरी—कराँची काँग्रेस—गणेश जी की हत्या—मौलिक अधिकारों का प्रस्ताव—राष्ट्रीय झण्डा—गाँधी विलिंग्डन समझौता—गाँधी जी की विलायत यात्रा—गोलमेज़ परिषद् में गाँधी जी—यू० पी० में किसान आन्दोलन, गाँधी जी वापस आये—मुसलमानों का देश द्रोह ? आन्दोलन फिर शुरू—ग़ैरक़ानूनी क़ानूनों का राज्य—दिल्ली और कलकत्ते का अधिवेशन—गाँधी जी का आमरण उपवास—सत्याग्रह आन्दोलन का रूप—पूना सम्मेलन—व्यक्तिगत सत्याग्रह—हरिजन भ्रमण—पटना की बैठक—असेम्बली का चुनाव—गाँधी जी काँग्रेस से अलग—एक नज़र]

लोग अब जेलों से छोड़े जाने लगे। इस आम रिहाई में क़रीब २६ नेता छूटे। महात्मा जी ने जेल से रिहा होते ही एक वक्तव्य प्रकाशित किया, आपने कहा, "जेल से मैं खुला दिमाग़ लेकर आया हूँ, किसी से भी मेरी दुश्मनी नहीं है। मेरे तर्क में पक्षपात नहीं है। मैं प्रत्येक दृष्टि कोण से राजनीतिक अवस्था का अध्ययन करने के लिये प्रस्तुत हूँ। मैं प्रधान मन्त्री के वक्तव्य के बारे में सर तेज बहादुर सप्रू से बातचीत करूँगा।

लन्दन से कुछ प्रतिधियो ने जो तार मेरे पास भेजा है उसी का ध्यान रख कर मैं यह वक्तव्य दे रहा हूँ।"

इस प्रकार काँग्रेस की ओर से सुलह की बात चीत करने के लिये मैदान साफ़ किया गया।

वर्किङ्ग कमेटी का प्रस्ताव

इधर २१ जनवरी को स्थानापन्न मेम्बरों की वर्किङ्ग कमेटी की बैठक हो चुकी थी। पं० मोतीलाल जी अधिक बीमार हो जाने के कारण रिहा किये जा चुके थे। इस वर्किङ्ग कमेटी ने साफ़ साफ़ कह दिया, कि जब तक असली वर्किङ्ग कमेटी के सदस्य रिहा नहीं किये जाते मामला आगे नहीं बढ़ सकता। महात्मा जी ने इशारतन् प्रेस वालों से कह दिया था, कि पिकेटिंग और नमक बनाने के हक़' को हम नहीं छोड़ सकते। गाँधी जी जल्दी ही इलाहाबाद आये। 'स्वराज भवन' में सभी नेता एकत्रित हुये। ३१ जनवरी—१ फ़रवरी को यह प्रस्ताव पास हुआ कि, "कुछ लोगों की यह धारणा हो गई है, कि सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया गया है, इसलिये यह एलान किया जाता है, कि जब तक काँग्रेस का आदेश न मिले, आन्दोलन अबाध गति से चलता रहेगा। कार्य कारिणी देश को फिर याद दिलाती है, कि पिकेटिङ्ग स्वयं कोई सत्याग्रह आन्दोलन का हिस्सा नहीं है बल्कि, जब तक यह शान्ति पूर्ण ढंग से चलाई जाय, यह तो प्रत्येक नागरिका कर्तव्य है। विदेशी वस्त्रों का बायकाट भी अपने ही ढंग से चलता रहेगा। यह कार्य राष्ट्रीय आन्दोलन का एक अंग तब तक रहेगा जब तक

राष्ट्र को विदेशी माल अन्दर आने से रोक देने का हक़ नहीं मिल जाता।"

३ तारीख़ तक कार्य कारिणी के सदस्य इलाहाबाद में रहे। इसके बाद वे चले गये। गाँधी जी रह गये थे। पं० मोतीलाल जी की अब अवस्था बिगड़ती जा रही थी। उनके अन्तिम शब्द ये थे :—

पं० मोतीलाल जी का निधन

"Deside India's fate in the Swaraj Bhawan, deside it in my presence; let me be a party to the final honourable settlement of the fate of my motherland. Let me die, if die I must, in the lap of a Free India. Let me sleep my last sleep, not in a subject country but in a free one."

(भारत के भाग्य का निर्णय 'स्वराज्य भवन' में करो, मेरे सामने करो; जो अन्तिम सम्मान पूर्ण समझौता मेरी मातृ भूमि के लिये होने जा रहा है, उसमें मुझे भी साझीदार होने दो। अगर मुझे मरना ही है, तो मुझे एक स्वतन्त्र भारत की गोद में मरने दो। मुझे, ग़ुलाम नहीं, एक आज़ाद देश में अपनी आख़िरी नींद सोने दो।)

इन शब्दों के बाद पं० मोतीलाल जी की मृत्यु हो गई। पं० मोतीलाल जी जब तक जीवित थे, एक शानदार व्यक्ति की तरह सरकार से लोहा लेते रहे। उनके निधन पर गाँधी जी ने कहा कि "मेरी स्थिति तो एक विधवा से भी अधिक ख़राब हो गई है।"

देश के नेता छोड़ जा चुके थे, पर राजनैतिक परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। नृशंसता और अत्याचार का दौर दौरा साबिक़ बदस्तूर रहा। गाँधी जी को ही कहना पड़ा कि, "अगर अत्याचार बन्द नहीं होते, दमन चक्र रोका नहीं जाता और निर्दोष जनता पर लाठियों का बरसना बन्द नहीं होता तो सुलह नामा असम्भव है। लोगों की जायदादें ज़ब्त होती जा रही हैं, जलूस में औरतों के बाल पकड़ कर खींचे जा रहे हैं और उनको बूटों की ठोकर लगाई जा रही है, ऐसी स्थिति में काँग्रेस का सहयोग असम्भव है, चाहे और बातें तय भी हो जाँय।"

राजनैतिक परिस्थिति

इसी बीच में माननीय श्री निवास शास्त्री और सर तेज बहादुर सप्रू प्रयाग आये और आप लोगों ने गाँधी जी से और वर्किंग कमेटी के मेम्बरों से बात चीत की। गाँधी जी के पत्र का जवाब कुछ न मिला। ऐसा मालूम पड़ा कि सुलह की बात-चीत ही ख़त्म हो जायेगी। परन्तु गाँधी जी ने वाईसराय के पास फिर एक पत्र भेजा और उनसे मिलने की इच्छा प्रगट की। १४ तारीख़ को ख़त भेजा गया और १६ को सबेरे तार से जवाब आ गया। वर्किंग कमेटी ने गाँधी जी को काँग्रेस का प्रतिनिधित्व करने की सारी शक्ति दे रखी थी। १७ फ़रवरी को गाँधी जी वाईसराय से मिले। १५ दिन तक समझौते की बात-चीत के चलती रही। बीच बीच में कई उतार चढ़ाव आये, कई दफ़ा बात-चीत समाप्त हो जाने तक का मौक़ा आ गया, परन्तु अन्त में समझौता हो ही गया। पटेल लगान बन्दी के मामले से असन्तुष्ट थे। जवाहर लाल विधान वाले प्रश्न पर

अड़े हुये थे। गाँधी जी आन्दोलन के कुछ अंशों को जारी रखने पर ज़ोर देते थे। उनके मत से धरना देना और नमक बटोरना जारी रखना चाहिये था। इस सिल-सिले में उन्हें जार्ज शुष्टर से भी मिलना पड़ा। विदेशी वस्त्रों के बायकाट और राजनैतिक बन्दियों की रिहाई का प्रश्न भी टेढ़ा था। सरदार भगतसिंह और उनके साथियों की फाँसी रोकने का सवाल बड़ा महत्त्व पूर्ण था। इन्हीं प्रश्नों को लेकर समझौते की बातें कई दफ़ा टूटीं। लोगों का कहना है कि समझौते में काँग्रेस और सरकार दोनों की जीत हुई। हम यहाँ समझौते की कुछ शर्तों को देते हैं, पाठक स्वयं समझ लें कि इनके अनुसार किसकी जीत हुई।

गाँधी इरविन समझौता

५ मार्च सन् १९३१ ई० को भारत सरकार के गृह-विभाग से एक वक्तव्य निकला, जो सब के लिये प्रकाशित किया गया। इस वक्तव्य में समझौते की शर्तें दी गई थीं :—

(१) महात्मा गाँधी और वाईसराय के बीच जो समझौते की बात-चीत हुई उससे यह तय पाया, कि सत्याग्रह आन्दोलन रोक लिया जाय, और इस सम्बन्ध में सम्राट की सरकार के आज्ञानुसार भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारें कुछ कार्रवाई करें।

(२) जहाँ तक वैधानिक प्रश्नों का सम्बन्ध है, आगे के विधान की बात-चीत का मसला ही गोलमेज़ परिषद् के सामने अयेगा। जो विधान वहाँ बनेगा 'फ़ेडरेशन' उसका विशेष अंग होगा। साथ ही भारत सम्बन्धी दूसरे विषयों पर भी बातचीत होगी

जिसमें रक्षा, प्रादेशिक सम्बन्ध, अल्प संख्यकों का प्रश्न, राष्ट्रीय क़र्ज़ा, आदि का विशेष ध्यान रखा जायेगा।

(३) प्रधान मन्त्री के १९ फ़रवरी वाले एलान के अनुसार काँग्रेस वालों को इस बात का मौक़ा दिया जायेगा कि वे विधान-कार्य में सहयोग दे सकें।

(४) इस समझौते का संबन्ध सत्याग्रह आन्दोलन से है।

(५) सत्याग्रह आन्दोलन रोक दिया जायेगा, सरकार की ओर से भी प्रत्युत्तर स्वरूप नीति परिवर्तन होगा।

(४) गाँधी जी ने पुलिस के अत्याचारों की तरफ़ सरकार का ध्यान दिलाया है और एक निष्पक्ष जाँच की माँग पेश की है। इससे वादविवाद बढ़ेगा और फलतः मन मुटाव भी होगा। शान्ति के वातावरण में इससे बाधा भी पड़ेगी। गाँधी जी इस विषय पर अधिक ज़ोर न देने के लिये तैयार हो गये।

(५) सरकार सत्याग्रह आन्दोलन के बन्द हो जाने पर जिस नीति का अनुसरण करेगी वह यह है:—

(६) सत्याग्रह आन्दोलन के संबन्ध में जितने आर्डिनेन्स निकले हैं, वे सब वापस ले लिये जायेंगे। अर्डिनेन्स नं० १ (१९३१) जिसका संबन्ध आतंकवादी आन्दोलन से है, वापस नहीं लिया जायेगा।

(७) अगर किसी जमात का संबन्ध सत्याग्रह आन्दोलन से है और वह ग़ैरक़ानूनी क़रार दे दी गई है वह आज़ाद कर दी जायेगी और उस पर से धारा उठा ली जायेगी। बरमा से यह क़ानून नहीं उठाया जायेगा।

(८) (अ) सत्याग्रह संबन्धी जितने भी मुक़दमें चल रहे हैं, वापस कर लिये जायेंगे बशर्ते कि हिंसा से उनका संबन्ध न हो।

(ब) यही सिद्धान्त फौजदारी के मुक़दमों में भी लागू होगा।

(९) (अ) अहिंसात्मक सत्याग्रही छोड़ दिये जायेंगे।

(ब) 'अ' अंश के सत्याग्रही जिनको जेल के नियमों को तोड़ने के कारण सज़ा मिली है, या जिनके ऊपर मुक़दमा चल रहा है, दोनों आज़ाद किये जायेंगे।

(स) आम रिहाई में पुलिस और फ़ौज के लोग शामिल नहीं हैं।

(१०) सत्याग्रह के सम्बन्ध में जो चीज़ें ज़ब्त कर ली गई हैं, वे वापस कर दी जायेंगी। लगान बन्दी के सम्बन्ध में भी जो चीज़ें ज़ब्त हो गई हैं, वापस कर दी जायेंगी। साथ ही आगे लगान देने के लिये समुचित समय दिया जायेगा। अगर किसी जगह की हालत सचमुच ऐसी ख़राब है, कि वहाँ के लोग लगान दे ही नहीं सकते, तो सरकार की तरफ़ से माफ़ी और छूट भी मिलेगी।

(११) जहाँ कहीं भी सरकारी नौकरों ने इस्तीफ़े दिये हैं और उनके स्थान पर नये लोग आ गये हैं, वहाँ पुराने लोगों का ख़्याल नहीं किया जा सकेगा। दूसरे इस्तीफ़ों पर ध्यान किया जायेगा और फिर से नौकरी देने के मामले में प्रान्तीय सरकारें उदारनीति का अनुसरण करेंगी। उन्हीं लोगों के मामलों पर ग़ौर किया जायेगा जो कि फिर नौकरी पाने के लिये अर्ज़ी देंगे।

(१२) सरकार नमक क़ानून तोड़ने की नीति को उचित नहीं समझती। सरकार आर्थिक अवस्था को देखकर नमक क़ानून में परिवर्तन भी नहीं कर सकती। फिर भी ग़रीबों को आराम देने के लिये वह यह विधान कर देती है कि जिन जगहों पर नमक मिलते हैं वहाँ के गाँवों के लोग व्यक्तिगत इस्तेमाल के लिये नमक बटोर और बना सकते हैं। लेकिन वे इस नमक का व्यापार नहीं कर सकते ।

(हस्ता०) यच-डब्ल्यू० इमरसन
मन्त्री—भारत सरकार

भगतसिंह

भगतसिंह और उनके साथियों की फाँसी का प्रश्न बहुत टेढ़ा था। गाँधी जी और वाईसराय में कई बार इस विषय पर बात चीत हुई। गाँधी जी चाहते थे कि सरदार भगतसिंह, राजगुरू और सुखदेव को फाँसी न दी जाय। लेकिन वाईसराय वायदा नहीं कर सके। वाईसराय चाहते तो फाँसी की सज़ा रद्द कर सकते थे। लेकिन राजनैतिक कारणों से उन्होंने ऐसा नहीं किया, साथ ही, उन्होंने वादा किया कि वे पंजाब सरकार से सिफ़ारिश कर देंगे। लेकिन क्या पंजाब सरकार के सामने राजनीतिक प्रश्न नहीं था ? फिर इस बहानेबाज़ी से क्या फ़ायदा ? कराची काँग्रेस मार्च के अन्तिम सप्ताह में होने वाली थी। वाईसराय ने वायदा किया कि काँग्रेस के बाद इन लोगों को फ़ाँसी होगी । गाँधी जी का कहना था कि अगर फाँसी होना ही है तो वह कराची काँग्रेस के पहिले ही हो जाय। इससे देश का वातावरण साफ़ हो जायगा और लोगों

को अपना कर्तव्य निश्चित करने में आसानी होगी। लोगों के हृदयों में भूठी आशा नहीं रहेगी। अगर गाँधी—इरविन समभौते में कुछ दम है तो काँग्रेस उसको मान लेगी वरना उसे अस्वीकार कर देगी।

इस प्रकार सारे हिन्दुस्तान के एक स्वर से विरोध करने पर भी भगतसिंह तथा उनके साथियों की फाँसी रोकी नहीं जा सकी। देश को इससे जो धक्का लगा, तरुण वर्ग को जो क्षोभ हुआ और स्वयं काँग्रेस वालों की जो मानसिक स्थिति इन फाँसियों को सुनकर हुई उसका प्रदर्शन कराँची काँग्रेस में हुआ। कराँची काँग्रेस में यह निर्णय करना मुश्किल पड़ गया था कि भगतसिंह आदि की फाँसी सम्बन्धी प्रस्ताव अधिक महत्व पूर्ण था अथवा गाँधी—इरविन समभौता सम्बन्धी प्रस्ताव।

यह समभौता ५ मार्च, सन् १९३१ ई० को हुआ। इसके बाद

समभौते के बाद

मि० इमरसन ने गाँधी जी के पास एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें पिछले १० महीने के शासन (या दुःशासन) का ज़िम्मेदार उन्होंने अपने को बताया, साथ ही यह भी कहा कि वे स्वराज के बाद भी भारत की सेवा (?) करने के लिये तैय्यार हैं। पाठकों को याद होगा कि पिछले ४ मार्च को गाँधी जी की चुनौती का पत्र वाईसराय को दिया गया था। ५ मार्च ३१ को यह समभौता हुआ। पूरे एक वर्ष तक संघर्ष चलता रहा। समभौते के बाद गाँधी जी ने एक लम्बा वक्तव्य दिया। जिसमें उन्होने संघर्ष-युग को वीरता का ज़माना बताया, और उस संघर्ष को स्वराज का पहिला क़दम कहा।

६ मार्च को गाँधी जी से बहुत से पत्र सम्वाददाताओं ने भेंट की उनमें कई विदेशी पत्रों के प्रतिनिधि भी थे। इन लोगों ने गाँधी जी से कुछ प्रश्न पूछे। इनका उत्तर भी गाँधी जी ने दिया। उस समय काँग्रेस के नेता और स्वयं गाँधी जी राष्ट्र के विभिन्न प्रश्नों पर क्या विचार रखते थे इसका अन्दाज़ा इस प्रश्नोत्तरी से लगता है।

प्रश्नोत्तरी

(प्र०) 'पूर्ण स्वराज्य' का असली अर्थ क्या है ?

(उ०) मैं इसका सही उत्तर आपको नहीं दे सकता। अँग्रेज़ी भाषा में 'पूर्ण स्वराज्य' का पर्यायवाची शब्द नहीं है। स्वराज का अर्थ है Self Rule ; Independence का अर्थ स्वराज्य नहीं है। फिर भी कोई दूसरा शब्द न होने के कारण हम स्वराज्य के लिये 'Independence' शब्द का प्रयोग करते हैं। पूर्ण का अर्थ है Complete, इसलिये 'पूर्ण स्वराज्य' को अँग्रेज़ी में हम Complete Independence कहते हैं। लेकिन पूर्ण स्वराज्य का अर्थ किसी भी राष्ट्र से सहयोग न करना नहीं है। इसका अर्थ यह है कि एक दूसरे से सहयोग, एक दूसरे के लाभ की दृष्टि से हो सकता है।

(प्र०) समझौते के दूसरे पैरे के अनुसार क्या काँग्रेस के लिये यह संगत होगा कि वह मद्रास, कलकत्ता और लाहौर वाले पूर्ण स्वतन्त्रता के ध्येय को दुहरावे ?

(उ०) हाँ; ज़रूर। कराँची में इस प्रस्ताव को पास करने से काँग्रेस को कोई रोक नहीं सकता। न तो गोल मेज़ परिषद् में इस पर ज़ोर देने से रोका जा सकता है। समझौते के समय मैंने इस प्रश्न को साफ़ कर दिया था।

(प्र०) आप दूसरे गोलमेज़ परिषद् की बैठक भारत में पसन्द करेंगे या विलायत में ?

(उ०) मैं इस पर अभी कुछ नहीं कह सकता। लेकिन फिर मैं तो यह चाहूँगा कि बैठक भारत में शुरू हो और विलायत में समाप्त हो !

(प्र०) क्या आप बैठक में शामिल होंगे ?

(उ०) मैं समझता हूँ कि मैं शामिल हूँगा—शायद ज़रूर शामिल हूँगा।

(प्र०) क्या आप परिषद् में 'पूर्ण स्वराज्य' पर ज़ोर देंगे ?

(उ०) हम ऐसा न करके अपना अस्तित्व ही मिटा लेंगे।

(प्र०) क्या हमारा यह प्रश्न करना उचित होगा कि भगतसिंह और उनके साथियों को फ़ाँसी होगी या नहीं ?

(उ०) अच्छा होगा कि आप मुझसे यह सवाल न पूछें। अख़बारों में इस मसले पर काफ़ी लिखा जा चुका है, उसको पढ़ कर आप नतीजा निकाल सकते हैं। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता।

(प्र०) भावी शासन विधान में संरक्षणों को स्थान देना आप पसन्द करेंगे ?

(उ०) हाँ, जो सही और बुद्धिमत्तापूर्ण संरक्षण हैं उनको अवश्य स्थान दिया जायेगा। मिसाल के लिये अल्प संख्यकों के प्रश्न को लीजिये। मैं समझता हूँ कि एक महान राष्ट्र होकर भी हम अपने मक़सद को नहीं पहुँच सकते अगर हम अल्प संख्यकों

के हक़ों को एक पवित्र थाती नहीं समझते। मैं समझता हूँ कि यह संरक्षण उचित है।

(प्र०) फ़ौज और आर्थिक प्रश्न के लिये आप क्या कहते हैं ?

(उ०) अगर हमारे ऊपर क़र्ज़ है तो हम उसका वही हिस्सा अपने ऊपर लेंगे जो कि सही है। बाक़ी के जिम्मेदार हम नहीं हैं। फ़ौजों के मामले में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि अगर अँग्रेजी फ़ौजों के रखने की हमें जरूरत पड़े तो हम उनको तनख़ाहें देंगे।

(प्र०) क्या आप समझते हैं कि समझौते के बाद विदेशी वस्तु बहिष्कार का आन्दोलन ढीला कर देना चाहिये ?

(उ०) नहीं, विदेशी विस्तु बहिष्कार आन्दोलन राजनैतिक नहीं है। यह तो सिर्फ़ चर्ख़ा का प्रचार बढ़ाने के लिये है। अगर मेरे हाँथ में शासन की बागडोर हो तो मैं इन विदेशी मालों पर भारी 'संरक्षण कर' लगा दूँ। आज की सरकार भी चाहे तो ऐसा कर सकती है।

(प्र०) आप 'पूर्णस्वराज्य' का क्या अर्थ लगाते हैं ?

(उ०) मैं एक स्वप्न दर्शी हूँ। मैं तरह-तरह के सपने देखा करता हूँ। मैं समझता हूँ कि 'पूर्ण स्वराज्य' समानता की भित्ति पर स्थित है। लोगों का कहना है कि इंगलैण्ड इस स्थिति को क़बूल न करेगा। मैं समझता हूँ कि अँग्रेज़ यथार्थवादी हैं, वे अपने लिये स्वाधीनता चाहते हैं, वे अगर एक क़दम आगे बढ़ें तो वे हमको भी स्वाधीन होने देंगे। मेरी समझ में समानता का अर्थ है सम्बन्ध विच्छेद कर लेने का हक़ मिल जाना।

(प्र०) क्या परिषद् में जाने के पहिले आप हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न को हल कर लेना सम्भव समझते हैं ?

(उ०) चाहता तो यही हूँ। मैं तो समझता हूँ कि इस प्रश्न को हल किये वग़ैर वहाँ जाना बिल्कुल बेकार है। मैं नहीं समझता कि परिषद् में पहुँच कर इस प्रश्न को हल किया जा सकेगा।

(प्र०) क्या हिन्दू-मुस्लिम एकता में सालों लग जायेंगे ?

(उ०) मैं ऐसा नहीं समझता। हिन्दू और मुस्लिम जनता में कोई भेद नहीं है। अनैक्य तो ऊपर-ऊपर है। इस अनैक्य की अहमियत भी है क्यों यही ऊपर के लोग हैं जो भारत के राष्ट्रीय मस्तिष्क का प्रतिनिधत्व करते हैं।

(प्र०) क्या आप समझते हैं कि 'पूर्ण स्वराज्य' की स्थापना के बाद फ़ौजों को न रखने से काम चल जायेगा।

(उ०) स्वप्न दर्शी के नाते तो मैं कहता हूँ कि हाँ। परन्तु शायद मेरी ज़िन्दगी में ऐसा न हो सकेगा।

(प्र०) क्या आपको बोलशेविक हमले का डर है ?

(उ०) मुझे तो कोई डर नहीं है।

(प्र०) क्या आप भारत में बोलशेविक प्रचार होने से घबराते हैं ?

(उ०) भारतीय कोई हलुआ नहीं हैं कि जो चाहे खा जाये।

(प्र०) बोलशेविज़्म में आप क्या बुराई देखते हैं ?

(उ०) मैंने बोलशेविज़्म का इतना अध्ययन नहीं किया है कि इस प्रश्न का उत्तर दे सकूँ। अगर उसमें कोई अच्छी चीज़ है तो हिन्दुस्तान को उसे अपना लेने में कोई एतराज़ न होना चाहिये।

(प्र०) 'पूर्ण स्वराज्य' के बाद क्या आप मशीनों को बर्बाद कर देंगे ?

(उ०) बिल्कुल नहीं, शायद मुझे अमेरिका और विलायत से और भी मशीनें मँगानी पड़ें।

(प्र०) क्या आप समझते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों को भी हल करने में अहिंसा कारगर साबित होगी ?

(उ) हाँ, मैं ऐसा समझता हूँ। ज्यों-ज्यों लोगों के विचार बदलते जायँगे त्यों-त्यों कार्य प्रणाली भी बदलती जायेगी। धीरे-धीरे फ़ौजें घटती जायेंगी। वह ज़माना भी आयेगा जब कि फौजें बीते युग की स्मृति चिन्ह की भाँति रह जायेंगी।

कराँची काँग्रेस

इसके बाद कराँची काँग्रेस हुई। सरदार वल्लभ भाई पटेल सभापति बनाये गये। २५ मार्च को अधिवेशन शुरू हुआ। ठीक अधिवेशन के पहले सरदार भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु फाँसी पर चढ़ा दिये गये। सारे काँग्रेस पर सियापा छा गया। काँग्रेस का प्रधान और पहिला प्रस्ताव इन्हीं शहीदों के सम्बन्ध में था। इस प्रस्ताव पर बहुत झगड़ा हुआ। प्रस्ताव इस प्रकार था :—

"यह काँग्रेस किसी भी प्रकार की राजनैतिक हिंसा से कोई लगाव न रखते हुये भी सरदार भगतसिंह और उनके रफ़ीक़ श्री युत सुखदेव और राजगुरू की बहादुरी और त्याग की प्रशंसा करती है और उनके दुखी परिवार के साथ संवेदना प्रगट करती है। काँग्रेस का यह विचार है कि इन तीन वीरों की फाँसी घृणित प्रतिहिंसा का कार्य है और इस प्रकार राष्ट्र की संयुक्त माँग कि इनको फाँसी न देकर काला पानी दे दिया

जाय—की जान बूझ कर अवहेलना की गई है। काँग्रेस का यह विचार है कि सरकार ने दोनों देशों में प्रेम संबंध बढ़ाने का सुनहला मौक़ा खो दिया। इस समय ज़रूरत थी कि इस संबंध को बढ़ाया जाता और उस दल को अपनी ओर मिलाया जाता जो कि हर तरफ़ से विक्षुब्ध होकर राजनैतिक हिंसा को अपनाता है।"

गर्मदल, विशेषकर तरुणदल, यह चाहता था कि किसी भी प्रकार की राजनीतिक हिंसा से कोई लगाव न रखते हुये" अंश प्रस्ताव से निकाल दिया जाय। परन्तु ऐसा न हो सका। बाद में इसी प्रश्न को लेकर सारे देश में कान्फ्रेंसों और सभाओं में झगड़े हुये।

दूसरा प्रस्ताव राजनीतिक वन्दियों की रिहाई का था ; इस समय यह ज़ाहिर हो चुका था कि सरकार अपने वायदों को पूरा नहीं कर रही है। इसीलिये काँग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया कि :—

"अगर सरकार और काँग्रेस के समझौते का मतलब यह है कि ग्रेट ब्रिटेन और भारत में सद्भावना बढ़े और अगर सरकार ने समझौता करके यह बताने की कोशिश की है कि वह कुछ शक्ति छोड़ना चाहती है तो वह तमाम राजनैतिक वंदियों, नज़रबन्दों, मुलज़िमों आदि को, जो कि समझौते में नहीं आते, छोड़ दे।"

इसी समय कानपुर में साम्प्रदायिक दंगा हुआ जिसमें श्रीगणेश शंकर विद्यार्थी की हत्या हो गई। सरदार भगतसिंह आदि की फाँसी हो जाने पर और स्थानों की तरह यहाँ भी हड़ताल हुई। लेकिन मुसलमानों ने दुकानें नहीं बन्द कीं। जलूस जा रहा

गणेश जी की हत्या

था, आगे तीनों शहीदों की तसवीरें थीं; साथ में काले झण्डे भी थे। बस, दंगा शुरू हो गया। इस दंगे में हज़ारों आदमी मरे। गणेश जी एक भीड़ में घिर गये। भीड़ ने उन पर हमला किया, उन्होंने गर्दन झुका ली, छुरे का वार हुआ, गणेश जी धराशायी हो गये। २५ मार्च को गणेश जी की हत्या हुई, २९ को उनकी लाश मिली। उसी दिन गणेश जी ने सैकड़ों मुसलमानों की जान बचाई थी। गणेश जी उन दिनों सूबा कॉंग्रेस कमेटी के सभापति थे। कॉंग्रेस ने गणेश जी के निधान पर एक प्रस्ताव पास किया और उनकी क़ुर्बानी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। डा० भगवानदास के सभापतित्व में इस दंगे की जाँच के लिये एक कमेटी नियुक्त की गई।

इसके बाद गाँधी-इरविन समझौते पर विचार हुआ। कॉंग्रेस ने इस पर एक प्रस्ताव पास किया और समझौते को स्वीकार किया। साथ ही कॉंग्रेस ने गाँधी जी को कॉंग्रेस का एक मात्र प्रतिनिधि, गोलमेज़ परिषद् में जाने के लिये, चुना। इसके बाद मौलिक अधिकारों का प्रस्ताव पास हुआ।

इस अधिवेशन में सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights) पर था। हम इसको पूरा देना चाहते हैं। पाठक देखेंगे कि इस प्रस्ताव को पास करके कॉंग्रेस सचमुच जनता की संस्था बन गई। ३१ अगस्त में कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया, "इस कॉंग्रेस का विचार है कि जनता को यह समझाने के लिये कि 'स्वराज्य' का क्या अर्थ है कॉंग्रेस अपनी स्थिति को

मौलिक अधिकार

साफ़ कर दे। जनता का शोषण बन्द करने के लिये राजनैतिक स्वतन्त्रता में आर्थिक स्वतन्त्रता का भी शामिल होना ज़रूरी है। इसलिये कॉंग्रेस एलान करती है कि जो कोई भी विधान भारत के लिये बनेगा इसमें इन बातों का ध्यान अवश्य रखा जायेगा :—

(१) भारत के प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार होगा कि वह अपने विचारों को स्वतन्त्रतापूर्वक प्रगट कर सके, एक दूसरे से मिल सके और सम्मेलन कर सके। इन सम्मेलनों में कोई हथियार न ले जायेगा, यहाँ पर कोई ऐसा काम न हो सकेगा जो क़ानून अथवा नैतिकता के विरुद्ध हो।

(२) प्रत्येक नागरिक को धार्मिक स्वतन्त्रता रहेगी, वह अपने धर्म का प्रचार खुले आम कर सकेगा, उसके धार्मिक कार्यों में कोई बाधा न पड़ेगी। लेकिन इसमें भी क़ानून और नैतिकता का ध्यान करना पड़ेगा।

(३) अल्प संख्यकों की संस्कृति, भाषा और लिपि की रक्षा की जायेगी। साथ ही इसी प्रकार के विभिन्न क्षेत्रों की भी रक्षा की जायेगी।

(४) सभी नागरिक चाहे वह किसी भी जाति या धर्म के हों या स्त्री अथवा पुरुष हों, क़ानून की निगाह में एक हैं।

(५) कोई भी नागरिक चाहे वह किसी भी धर्म या जाति का हो, अथवा स्त्री या पुरुष हो उस पर इन कारणों से नौकरी, किसी इज्ज़त की जगह पाने या किसी भी व्यापार वाणिज्य के करने में कोई भी रुकावट न पैदा होगी।

(६) हर एक नागरिक का कुंये, तालाब, सड़क, स्कूल तथा जनता के स्थानों पर पूरा अधिकार है, इनके प्रति समान कर्तव्य भी है।

(७) हर एक नागरिक को क़ानून के मुताबिक़ हथियार रखने का अधिकार है।

(८) किसी भी नागरिक की स्वतन्त्रता, उसके मकान, उसका माल, ग़ैर क़ानूनी ढंग से न तो छीना जायेगा न उनको नुक़सान पहुँचाया जायेगा, न उन पर अधिकार किया जायेगा॥

(९) धार्मिक मामलों में सरकार निरपेक्ष रहेगी।

(१०) चुनाव बालिग़ मताधिकार से होगा।

(११) सरकार की ओर ने प्रारम्भिक पढ़ाई जब्रिया और मुफ़ होगी।

(१२) सरकार की ओर से उपाधियाँ न दी जायेंगी।

(१३) फाँसी की सज़ा बन्द हो जायेगी।

(१४) प्रत्येक नागरिक भारत के हर हिस्से में जा सकेगा, रह सकेगा, जायदाद ले सकेगा, व्यापार कर सकेगा। सब जगह पर एक सामान क़ानूनी ढंग बर्ता जायेगा।

मज़दूर

(१) आर्थिक व्यवस्था न्याय की भित्ति पर स्थिति होगी जिसमें कि मज़दूरों को सम्मान पूर्ण जीवन निर्वाह के लिये मज़दूरी मेल सके।

(२) सरकार औद्योगिक मज़दूरों के स्वार्थों की रक्षा करेगी

और उनके लिये ऐसे क़ानून बनायेगी तथा दूसरे ऐसे काम करेगी जिससे वे खाने भर को कमा सकें, कार्य करने की व्यवस्था स्वस्थ हो, काम करने के घंटे सीमित हों। समझौते और न्याय के लिये उपयुक्त ढंग अख़्तियार किया जायेगा, बुढ़ापे, बीमारी और बेकारी के समय संरक्षण मिलेगा।

(३) मजदूरी से ग़ुलामी का कोई सम्बन्ध न रहेगा।

(४) औरतों के लिये संरक्षण मिलेगा, जब पेट में बच्चा रहे उस समय के लिये विशेष इन्तजाम किया जायेगा।

(५) स्कूल में जाने लायक़ उम्र वाले बच्चे फ़ैक्टरियों और खदानों में काम करने के लिये नहीं रखे जायेंगे।

(६) किसानों और मजदूरों को अपने स्वार्थों की रक्षा के लिये यूनियन अथवा संघ बनाने का अधिकार रहेगा।

लगान और ख़र्चा

(१) खेतों के लगान मालगुज़ारी आदि का प्रबन्ध इस प्रकार किया जायेगा कि जिससे किसानों पर बोझ कम हो जाय। साथ ही खेतों पर का बोझ कम हो जाय। वे खेत, जिनकी ज़मीन ख़राब हो और आमदनी कम होती हो, कम लगान के और बेलगान कर दिये जायेंगे। जिनकी आमदनी एक हद से कुछ ज़्यादा होगी उनकी आमदनी पर उन्नति के अनुसार टैक्स लगता जायगा।

(२) मृत्युकर भी जायदाद के अनुसार लगाया जायेगा।

(३) आज कल फ़ौजों में जितना ख़र्चा होता है उसमें काफ़ी कमी की जायेगी, कम से कम आधी तो कर ही दी जायेगी।

(४) नौकरी विभाग में काफ़ी ख़र्चा कम किया जायेगा। विशेषज्ञों को छोड़ कर और किसी सरकारी कर्मचारी को ५०० सौ अधिक वेतन नहीं मिलेगा।

(५) नमक क़ानून पर कोई टैक्स न लगेगा।

आर्थिक और सामाजिक प्रोग्राम

(१) गाँवों में पैदा होने वाले कपड़ों की रक्षा सरकार करेगी। इस प्रोग्राम में सफलता पाने के लिये विदेशी कपड़ों का बॉयकॉट किया जायेगा। विदेशी कपड़ों को किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन न मिलेगा। सरकार की ओर से इसके लिये नियम क़ानून बनेंगे। सरकार की ओर से घरेलू उद्योग-धन्धों की रक्षा की जायेगी।

(२) दवा के लिये छोड़कर बाक़ी सब मादक वस्तुओं का पूरा बहिष्कार और निषेध होगा।

(३) राष्ट्रीय स्वार्थों और हितों को ध्यान में रखकर विनिमय और मुद्रा का संचालन होगा।

(४) बड़े उद्योग धन्धे, रेलवे डाक आदि विभाग, खनिज पदार्थ, जहाज़रानी, नहर आदि तथा दूसरे यातायात के साधन सभी पर सरकार का अधिकार रहेगा।

(५) खेती पर जो कुछ कर बाक़ी है उसकी वसूलयाबी में आसानी की जायेगी, इस सम्बन्ध में ऐसा प्रयत्न किया जायेगा कि किसानों को कष्ट न होने पावे।

(६) देश भर में फ़ौजी ट्रेनिंग होगी जिससे आत्म रक्षा के लिये देश तैयार हो सके। इसके अलावा स्थायी फ़ौज भी रहेगी।

इस प्रस्ताव को पढ़कर पाठक अच्छी तरह समझ सकते हैं हैं कि करॉंची काँग्रेस के समय तक काँग्रेस अपने ढंग से देश की ग़रीब जनता किसान और मज़दूरों—के हितों की रक्षा करने के लिये प्रस्तुत थी। इन प्रस्तावों को पास करके काँग्रेस ने इसी ग़रीब जनता का प्रतिनिधित्व किया।

समझौते के बाद की दशा

इधर १७ अप्रैल को लार्ड विलिंगडन ने चार्ज ले लिया। इरविन १८ को चले गये। देश में, काँग्रेस की ओर से यह प्रयत्न जारी था कि किसी प्रकार भी समझौते की शर्तें तोड़ी न जायँ। लेकिन सरकारी कर्मचारी और अफ़सर अपनी पुरानी नीति को छोड़ते न थे। गोलियाँ चलती रही, लाठियाँ बरसती रहीं, जलूस रोके जाते रहे। इस पर गाँधी जी ने साफ़ साफ़ कहा कि जहाँ तक हो सके झगड़ा बचाना चाहिये, अगर कोई झगड़ा करे ही तो कायरों की तरह भागना भी नहीं चाहिये। सुलह और समझौते के ज़माने में यू० पी० में सबसे अधिक ज़ुल्म हो रहा था। सुल्तानपुर में ९० आदमियों की चालान १०७ धारा में की गई। एक ताल्लुक़ेदार साहब ने झण्डे न हटाने के कारण किसानों की चालान करवाई। मथुरा में एक सब इन्सपेक्टर ने एक सभा को लाठियों से पिटवा कर तितर बितर किया। लखनऊ में उस समय ७०० मुक़दमें चल रहे थे। लोगों को नौकरियाँ फिरसे न मिलीं। जो लड़के कालेज स्कूल छोड़कर आ गये थे, फिर से नाम लिखने के लिये उनसे माफ़ी माँगने को कहा गया। बहुत से स्थानों पर पुलिस वालों ने घरों की तलाशी ली और

औरतों तक को बेइज़्ज़त किया। झण्डे छीनकर जला दिये गये। बाराबंकी में पुलिसवालों को दस्तख़त करके आर्डर के अलिखित काग़ज़ मैजिस्ट्रेट ने दे दिये। कुछ ताल्लुक़ेदारों ने आन्दोलन को दबाने के लिये सरकार की अनुमति माँगी। हथियार-बन्द पुलिस के लोग गाँवों को तहस नहस करते फिरते थे। एक ज़िलेदार और उसके आदमियों ने मिलकर एक काँग्रेसी को इतना मारा कि वह मर गया। यह जौनपुर ज़िले का क़िस्सा है। किसानों को धूप में खड़ा रखवाना, मुर्ग़ा बनाना आदि आम बात थी। स्वयंसेवक कैम्प के लिये जगह देने के अपराध में जुर्माना किये जाते थे।

बंगाल में तो वकीलों से भी माफ़ी मँगवाई गई। जोरहट में बच्चों की प्रभात फेरी पर सुपरिन्टेन्डेट बॉटले की आज्ञा से लाठी चलाई गई और बच्चों को चोट आई।

इस प्रकार के ज़ुल्म बम्बई, मद्रास, बंगाल, दिल्ली, अजमेर-मेरवारा, गुजरात, आदि सभी स्थानों पर हो रहे थे। जगह जगह पर जुलूस तोड़ने के लिये बेहिचक लोगों पर घोड़े दौड़ाये गये। बारदोली में २२,००,००० में से २१,००,००० रुपये लगान के अदा हो गये फिर भी वसूलयाबी बन्द न हुई और सख़्ती होती रही। गाँधी जी ने इन बातों के विषय में सरकार से काफ़ी लिखा पढ़ी की। सूरत के कलक्टर, बम्बई के गवर्नर, वाईसराय आदि के पास गाँधी जी ने पत्र लिखे। अन्त में इन्हीं विषयों को लेकर काफ़ी झगड़ा हुआ और लाचार होकर गाँधीजी को यह निश्चय करना पड़ा कि वे गोलमेज़ परिषद् में शामिल न होंगे। जून के ही महीने

से लोग इसी बात को डर रहे थे। १३ अगस्त को गाँधी जी ने न जाने का अपना निश्चय सरकार को बता दिया।

राष्ट्रीय झंडा

जब कि महात्मा गाँधी सरकार से बातचीत में लगे हुये थे, काँग्रेस कार्यकारिणी दूसरे ज़रूरी कामों को देख रही थी। उसने मुसलमानों के विषय में एक महत्व पूर्ण प्रस्ताव पास किया, हरिजन समस्या पर फिर ध्यान दिया और जमनालाल जी को यह काम सौंपा गया। मज़दूर कमेटी को भी नये आदेश मिले। उसके बाद कार्यकारिणी ने झण्डे के रंग रूप को हमेशा के लिये निश्चय किया। झण्डे के तीन रंग माने गये, नारंगी, सफेद और हरा। ऊपर नारंगी बीच में सफेद और नीचे हरा रहेगा। तीनों की चौड़ाई बराबर रहेगी। सफेद रंग के बीच में गाढ़े नीले रंग का चर्ख़ा बना रहेगा। रंग को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से नहीं रखा गया। नारंगी रंग हिम्मत और त्याग के लिये, सफ़ेद शान्ति और सच्चाई के लिये और हरा विश्वास और वीरता के लिये रखा गया। जनता को आशा दिलाने के लिये बीच में चर्ख़ा रखा गया।

सीमाप्रान्त के विषय में भी एक प्रस्ताव पास हुआ। वहाँ की काँग्रेस कमेटी में भी कुछ परिवर्तन किया, अफ़ग़ान जिरगा को भी इसमें शामिल कर लिया गया और यह भी निश्चय हुआ कि ख़ुदाई ख़िदमतगारों को काँग्रेस स्वयंसेवकों में शामिल कर लिया जाय। उसी समय फ्रान्टियर के नेता ख़ाँ अबदुलग़फ़्फ़ार ख़ाँ ने सीमान्त में काँग्रेस कार्य संभालने का ज़िम्मा लिया।

सब लोग भारत से गोलमेज़ परिषद् के लिये चले गये। केवल सर प्रभाशंकर पट्टाणी ने अपना जहाज़ छोड़ दिया। गाँधी जी और वाईसराय में पत्र-व्यवहार होता रहा। बाद में गाँधी जी, पं० जवाहरलाल, सरदार पटेल, सर प्रभाशंकर पट्टाणी और वाईसराय से शिमले में बातचीत हुई। जिसके फल-स्वरूप गाँधी जी विलायत जाने को तैयार हो गये। शिमले से गाँधी जी स्पेशल ट्रेन में बंबई गये और २९ अगस्त को विलायत जाने के लिये जहाज़ में सवार हो गये।

गाँधी-विलिगंडन समझौता

इसी यात्रा में गाँधी जी के साथ श्री महादेव देसाई, श्री देवदास गाँधी, श्री प्यारेलाल, श्रीमती मीराबेन तथा श्रीमती नायडू भी थीं। अदन में गाँधी जी का शानदार स्वागत हुआ, गाँधी जी को ३२८ गिन्नियों की थैली भेंट की गई, श्रीमती जगलूल पाशा तथा सभापति नहस पाशा ने मिश्र की ओर से गाँधी जी का स्वागत किया, जहाज़ में गाँधी जी ने ७०० का शाल ७००० में बेंच दिया, फ्राँन्स के बन्दरगाह मरसाई में भी आपका ज़ोरदार स्वागत हुआ। रोमॉरोलॉ की बहिन भी गाँधी जी से मिलीं। विलायत में गाँधी जी मिस लीस्टर के साथ रहे। गाँधी जी ने सरकार का मेहमान होना नापसन्द किया, आपको ग़रीबों के बीच रहना ठीक लगा।

गाँधी जी की विलायत यात्रा

गोलमेज़ परिषद् में गाँधी जी ने काँग्रेस का प्रतिनिधित्व बड़ी शान के साथ किया। पहिले आपने काँग्रेस का इतिहास बताया

और उसकी वर्तमान स्थिति पर रोशनी डाली। बाद में आपने मौलिक अधिकारों के प्रस्तावों को पढ़कर समझाया और प्रधान मन्त्री के भाषण की आलोचना की। आपने केन्द्रीय शासन, फ़ेडरेशन, संरक्षण आदि की बातें भी कहीं। आपने कहा कि इस समय एक विधान ही नहीं बनाना है बल्कि ब्रिटेन और भारत में समता का भाव पैदा करना है। आपने बताया कि क्यों आप पहिले सरकार की प्रजा थे और अब विद्रोही हो गये हैं। आपने कहा कि यह ब्रिटेन का काम है कि भारत के प्रेम का रेशमी धागा न तोड़े अल्प संख्यक कमेटी में बोलते हुये, आपने कहा कि विभिन्न सम्प्रदायों को भड़काया जाता है, जिससे वे केवल अपने ही स्वार्थों की बात कहें। आपने पूछा कि क्या ६,००० मील से लोग इन्हीं बातों को दुहराने के लिये बुलाये गये हैं या वे यहाँ सम्मान पूर्ण शासन विधान की बात तय करके उसका ख़ाका बनाने आये हैं ? आपने सर हरवर्ट कार को जबाब देते हुये साफ़ कह दिया कि "कांग्रेस अपनी हस्ती मिटा सकती है, परन्तु वह इस प्रकार के साम्प्रदायिक फ़ैसलों को कभी नहीं मान सकती जिनके कारण आज़ादी का पौधा कभी बढ़ ही नहीं सकता।"

गोल मेज़ परिषद् में गाँधी जी

गाँधी जी ने आगे कहा कि सिख सिख रह सकते हैं, मुसलमान मुसलमान परन्तु अछूत अछूत नहीं रह सकते। हिन्दू धर्म और जाति चाहे ख़त्म हो जाये, परन्तु अछूतपन क़ायम न रहे। जो अछूतों के हितों की बात करते हैं, और उनके राजनीतिक हक़ों की चर्चा करते हैं, वे भारतीय समाज को नहीं जानते। "मैं साफ़ कहे

देता हूँ कि अगर अछूतों को अलग करने का प्रयत्न किया गया तो मैं इसको रोकने के लिये प्राणों की बाज़ी लगा दूँगा।"

इस प्रकार गाँधी जी अन्य विषयों पर भी मौक़ा पड़ने पर प्रकाश डालते रहे। आपने कहा कि "काँग्रेस ज़िम्मेदार सरकार का बोझ संभालने को तैयार है।"

फ़ौज़ों के लिये आपने कहा कि "आज की फौजें तो सरकार का अधिकार जमाये रखने के लिये, ब्रिटिश स्वार्थों की रक्षा करने के लिये और राष्ट्रीय बग़ावत को दबाने के लिये रखी गई है। उसको काँग्रेस से घृणा करना सिखाया गया है। इन फ़ौजों में विदेशी लोग भरे हैं, जो हमारी बातों को समझ नहीं सकते। चाहिये यह कि सारी फौजें हिन्दुस्तानियों के अधिकार में आ जायँ। लेकिन शायद ऐसा सोचना बेकार है।" आगे आपने कहा कि "हिन्दुस्तान अपनी रक्षा करना जानता है। मुसलमान, गुरखे, सिख और राजपूत हिन्दुस्तान की रक्षा कर सकते हैं। राजपूतों ने हज़ारों लड़ाइयाँ जीती हैं। आज भी इनके अन्दर इतना दम है कि वे अपने देश की रक्षा कर कर सकें।"

काँग्रेस के बारे में गाँधी जी ने कहा कि "काँग्रेस ही सारे राष्ट्र की ओर से बोल सकती है। दूसरे लोग अपने विभिन्न वर्गों तथा सम्प्रदायों की ओर से बोलते हैं, परन्तु काँग्रेस देश की ३५ करोड़ जनता की ओर से बोलने का दावा करती है। यह तो देशी रजवाड़ों का भी प्रतिनिधित्व कर सकती है। काँग्रेस देश की राष्ट्रीय संस्था है, वह साम्प्रदायिकता से दूर रहती है, वह सभी वर्गों, श्रेणियों, स्वार्थों, और हितों का प्रतिनिधित्व करती है। वह

जाति या धर्म का भेद नहीं करती। लोग कहते हैं कि वह वर्तमान सरकार के समानान्तर सरकार बनाना चाहती है। लेकिन यह धारणा ग़लत है। काँग्रेस समानान्तर सरकार नहीं बनाना चाहती, वह तो अहिंसा के आधार पर सरकार बनाना चाहती है। इसी लिये वह आन्दोलन चलाती है; लेकिन उसको बर्दाश्त नहीं किया जाता। जेनरल स्मट्स (१९०८) ने इसको दबाना चाहा, परन्तु उन्हें सन् १४ में ख़ुद दबना पड़ा। लार्ड इरविन ने भी सन् ३० का आन्दोलन आर्डिनेन्सों के द्वारा दबाना चाहा था, वे भी असफल रहे। काँग्रेस आज़ादी चाहती है"।

आपने 'संरक्षणों' के बारे में कहा कि, "हम उन भारतीय हितों का सवाल नहीं उठाते जो ग़ैरक़ानूनी और बेजा हैं, हम ब्रिटिश हितों को नुक़सान भी नहीं पहुँचाना चाहते, परन्तु हम भारतीय हितों की रक्षा अवश्य चाहते हैं।"

अन्त में आपने बहुत मार्मिक शब्दों में कहा, "शायद आप मुझमें विश्वास करते हैं, परन्तु आप उस संस्था पर विश्वास नहीं करते जिसका मैं प्रतिनिधि हूँ। कृपा करके आप मुझे उस संस्था से अलग न समझें जिस संस्था रूपी समुद्र का मैं केवल एक बूँद हूँ। उस संस्था से मैं बहुत छोटा हूँ। अगर आप मुझ पर भरोसा रखते हैं, तो कृपया उस संस्था पर भी भरोसा कीजिये। मेरे पास जो कुछ अधिकार है, वह काँग्रेस का ही दिया हुआ है। अगर आप काँग्रेस की बात मान लेंगे तो आप को आतंकवाद से छुट्टी मिल जायेगी, आप को स्वयं आतंकवाद की आवश्यकता न रहेगी। आज आपको आतंकवादियों से लड़ना पड़ता है, उसके मुक़ाबले में

आपको संगठित और अनुशासित आतंकवाद का प्रयोग करना पड़ता है, क्योंकि आप स्थिति की गंभीरता को नहीं समझ सके हैं। क्या आप आतंकवादियों के अपने खून से लिखे हुए लेखों को नहीं पढ़ पा रहे हैं? क्या आप नहीं समझते कि हम केवल गेहूँ की रोटी नहीं चाहते, बल्कि हम स्वतंत्रता की रोटी चाहते हैं? हमारे देश में हजारों व्यक्ति ऐसे है जो बिना उस रोटी को पाये हुये न तो खुद शान्ति से बैठेंगे और देश को शान्ति से बैठने देंगे।"

इस भाषण के बाद गाँधी जी ने परिषद् के सभापति को धन्यवाद दिया और इसके बाद आपने सब से विदा ले ली। सब को मालूम था कि परिषद् में कुछ होना जाना नहीं है, परन्तु प्रयत्न करना अपना कर्तव्य है। इसी लिये गाँधी जी विलायत गये थे। परन्तु गाँधी जी को निराश होकर भारत लौटना पड़ा। १ ली दिसम्बर १९३१ ई० को परिषद् की बैठक समाप्त हुई।

यू० पी किसान आन्दोलन

जब गाँधी जी विलायत में थे। उसी समय उनको देश की दुर्दशा की खबर लग चुकी थी। उस समय बंगाल और यू० पी० में अत्याचार अधिक हो रहे थे। बारदोली की जाँच में काँग्रेस और सरकारी पक्षों में अनबन हो गई। इन मामलों को सुन कर गाँधी जी को क्षोभ हुआ। इधर वातावरण गर्म हो रहा था, यू० पी० में जमींदार और ताल्लुक़ेदारों ने किसानों की दुर्दशा कर डाली। परिस्थिति भयंकर होती जा रही थी। लगान वसूल करने में कुछ भी नर्मी नहीं की गई। काँग्रेस इस स्थिति को

बर्दाश्त नहीं कर सकती थी । सरकार के सहयोग से ज़िमीदारों, ताल्लुक़ेदारों और उनके गुर्गों ने काँग्रेस वालों पर अपना गुस्सा उतारना शुरू किया ।

यू० पी० किसान आन्दोलन का ब्यौरा इस प्रकार है । समझौते के बाद सूबा काँग्रेस कमेटी ने पं० गोविन्द वल्लभ पन्त को यह काम सौंपा कि वे किसानों की तक़लीफों के बारे में सूबा सरकार से बात चीत करें। पं० जवाहर लाल ने भी कई ख़त सरकार को लिखे। गाँधी जी ने स्वयं सर मैलकम हेली से मुलाक़ात की। परन्तु किसानों की दशा बिगड़ती ही गई और सरकार के रुख़ में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। भाव गिर गया, माफ़ी नहीं मिली, न लगान में ही कमी हुई। बेदख़लियाँ धड़ल्ले से होने लगीं, किसान बर्बाद होने लगे। पंत किसान कमेटी ने सितम्बर १९३१ में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। काँग्रेस के सभापति सरदार वल्लभ भाई ने भी वाईसराय को एक पत्र लिखा, परन्तु कुछ नतीजा न निकला। इधर १५३९ फ़सली की वसूलयाबी शुरू हो गई। सरकार की तरफ़ से जो छूट मिली वह बहुत कम थी। सरकार का यह भी एलान शाया हुआ कि अगर एक महीने में सारी लगान अदा न हो जायेगी तो जो छूट मिली है, वह भी न मिल सकेगी। इस एलान से एकाएक संकट उपस्थित हो गया।

इलाहाबाद ज़िला काँग्रेस कमेटी ने फ़ौरन ही यह सवाल उठाया कि किसानों से जितना लगान माँगा जा रहा है उतना किसान नहीं दे सकते। बन्दोबस्त कमिश्नर और इलाहाबाद काँग्रेस कमेटी के बीच बात चीत हुई। परन्तु इसका नतीजा कुछ न निकला। अब

उसने काँग्रेस के सभापति से लगान बन्दी आन्दोलन चलाने की आज्ञा माँगी। लगान बन्दी का आन्दोलन केवल तब तक चलाने का इरादा था, जब तक कि किसानों की उचित माँगों के बारे में सरकार से समझौता नहीं हो जाता। सरकार चाहती थी कि आन्दोलन बन्द कर दिया जाय, तब बात चीत शुरू हो। आन्दोलन चलता रहा। सरकार ने सैकड़ों अच्छे किसान-कार्यकर्ताओं को गिरफ़ार कर लिया और किसानों पर ज़्यादतियाँ कीं। पं० जवाहर लाल नेहरू, श्री तशद्दुक़ अहमद खाँ शेरवानी, बाबू पुरुषोतमदास टन्डन आदि सभी नेता गिरफ़ार कर लिये गये। इसके ५ दिन बाद गाँधी जी हिन्दुस्तान पहुँचे।

बंगाल ने हिजली कैम्प जेल चटगाँव में इस ज़माने में काफ़ी ज़ुल्म हुआ था। नौजवानों की ज़िन्दगी दूभर हो गई थी। कुछ योरिपियन अफ़्सर एक प्रेस में घुस गये, सारे सामान को तोड़ फोड़ डाला और मैनेजर को अच्छी तरह पीटा। वेक़सूर आदमियों को राह चलते पीटा जाने लगा। लोगों को खुले आम वेइज़्ज़त किया गया। हिजली कैम्प जेल में नज़र बन्दों को इस बुरी तरह पीटा गया कि उनमें से दो की मृत्यु हो गई और २० नज़र बन्द घायल हुये।

सीमाप्रान्त में १ लाख खुदाई ख़िदमतगार थे। इनके नेता खाँ अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँ थे। अगस्त के महीने तक इनका सम्बन्ध काँग्रेस से न था। बाद में ये लोग काँग्रेस के एक अंग हो गये। गाँधी जी ने समझौते के समय सीमाप्रान्त जाने की इजाज़त चाही थी। परन्तु वाइसराय ने नाहीं कर दी। सरकार इन खिदमतगारों

को शंका के निगाह से देखती थी। उसी ज़माने में एक दरबार चीफ़ कमिश्नर ने किया। खाँ साहब इसमें शामिल नहीं हुये। वे सीमाप्रान्त भर में घूम घूम कर 'पूर्ण स्वतन्त्रता' की आवाज़ पहुँचा रहे थे। इसलिये बेक़सूर खाँ अब्दुल ग़फ्फ़ार खाँ और उनके भाई डाक्टर खाँ गिरफ़्तार कर लिये गये। दरबार में न शामिल होना कोई क़ानूनी जुर्म नहीं था, परन्तु सरकार तो ख़ान बन्धुओं से घबराती थी और किसी बहाने से इनको गिरफ़्तार करके 'ख़ुदाई ख़िदमतगारों' के बीच से हटा लेना चाहती थी। उनकी गिरफ़्तारी से ख़िदमतगार आन्दोलन ने और ज़ोर पकड़ लिया।

गाँधी जी वापस आये

देश का वातावरण इन गिरफ़्तारियों से गरम हो उठा था, समझौते की शर्तें सरकार की ओर से खुले आम तोड़ी जा चुकी थीं और काँग्रेस आगे सक्रिय आन्दोलन की ओर बढ़नेवाली थी कि महात्मा गाँधी २८ दिसम्बर १९३१ को भारत वापस आ गये। बम्बई में गांधी जी का शानदार स्वागत हुआ। आपने आज़ाद मैदान में भाषण दिया। यहाँ पर आपने फिर से जनता के सामने हरिजनों के सवाल पर प्राण की बाज़ी लगाने का प्रण दोहराया। लेकिन उस समय कोई भी गाँधी जी के शब्दों की गम्भीरता को नहीं समझ सका। इसके बाद तीन दिन तक गाँधी जी को देश का हाल सुनाया गया। बम्बई, बंगाल, यू० पी०, सीमाप्रान्त, आन्ध्र, गुजरात सभी स्थानों के वाक़यात गाँधी जी के सामने रखे गये। इसके बाद गाँधी जी ने वाईसराय को तार दिया, उनके सामने मसले रखे और उनसे मिलने की इच्छा प्रगट की। कई तारों की

हेरा फेरी हुई परन्तु मुलाक़ात न हो सकी। वर्किङ्ग कमेटी ने भी वाइसराय के रुख़ से यह समझ लिया कि समझौते की कोई सूरत नहीं है, इसलिये सत्याग्रह फिर से छिड़ना अनिवार्य हो गया। वर्किङ्ग कमेटी ने सत्याग्रह प्रोग्राम को देश के सामने रख दिया और देश को आन्दोलन शुरू करने का आदेश मिल गया।

एक पराग्यन्त्र

इसी समय मि० बेन्थल, जो कि व्यापारियों के प्रतिनिधि होकर गोलमेज़ परिषद् में शामिल हुये थे, का एक पत्र सरक्युलर के रूप में गया। उस पत्र को देखने से मालूम पड़ता है कि किस प्रकार अंग्रेज़ व्यापारियों और देश द्रोही नेताओं ने मिल कर भारत को एक प्रगतिशील शासन विधान न मिलने दिया। सरक्युलर में कहा गया :—

"मुसलमानों ने एक टीम की तरह काम किया, केवल सर अली इमाम राष्ट्रीय मुस्लिम इसमें शामिल नहीं थे। इन नेताओं ने अपना काम किया। इन लोगों ने हमको मदद देने का वायदा किया था, इन्होंने अपने वायदों को पूरी तरह निबाहा। बदले में उन्होंने बंगाल के मुसलमानों की दुर्दशा की ओर हमारा ध्यान दिलाया और यह भी चाहा कि जहाँ तक हो सके हम उनको अपने फ़र्मों में स्थान दें, जिससे कि वे अपनी दशा सुधार सकें ....हम जानते थे कि हमें काँग्रेस से लोहा लेना पड़ेगा। इसलिये हम चाहते थे कि जितनी जल्दी यह संघर्ष आ जाय उतना ही अच्छा है। लेकिन अगर हमने निश्चय कर लिया कि हम काँग्रेस को करारी हार देंगे तो हमें अधिक से अधिक मित्र बना लेना आवश्यक था। मुसलमान तो ठीक थे ही, अल्पसंख्यक-समझौते (Minorites Pact)

और सरकार के रुख़ ने सब मामला संभाल लिया। देशी नरेशों और अल्प संख्यकों ने ख़ूब साथ दिया।...........मुसलमान योरोपियन लोगों के सच्चे और दृढ़ साथी बन गये हैं। अपनी स्थिति पर उनको संतोष है कि वे हमारे साथ काम करने के लिये तैयार हैं। हाँ, यह न समझ लेना चाहिये कि हम सुधारों के पक्षपाती हैं इसलिये हम हर एक सूबे में प्रजा-तान्त्रिक सुधार चाहते हैं। नये सुधारों से हम जो कुछ चाहते हैं वह केवल यह कि सरकार के विधान में ऐसा परिवर्तन हो जिससे उसका काम ज़रा अच्छी तरह चलने लगे।"

आन्दोलन फिर शुरू

सरकार ने ४ जनवरी, १९३२ ई० को अपना आक्रमण आरम्भ किया। काँग्रेस और उसका साथ देने वाली सभी संस्थायें ग़ैरक़ानूनी क़रार दे दी गईं। ग़ैर क़ानूनी क़ानूनों का राज्य फिर शुरू हो गया। पिछले आन्दोलन में लाठी चार्ज बाद की चीज़ थी। इस आन्दोलन में वह पहिली चीज़ हुई। वाईसराय ने इस आन्दोलन को केवल ६ हफ़्तों में दबा देने की शपथ ली थी। गाँधी जी गुजरात जाना चाहते थे, लेकिन ४ जनवरी के सबेरे ही वे सरदार पटेल के साथ गिरफ़्तार कर लिये गये। धीरे धीरे करके सभी काँग्रेसी नेता गिरफ़्तार कर लिये गये। हज़ारों की तादाद में सत्याग्रही गिरफ़्तार होने लगे। औरतें और बच्चे भी पकड़े गये। सन् ३० के आन्दोलन में क़रीब १ लाख आदमी पकड़े गये थे और चार लाख आदमियों को चोटें आईं थीं। इस आन्दोलन में इससे भी अधिक लोग घायल हुये। तला-शियों की धूम मच गई। इस आन्दोलन में यू० पी० और बंगाल में

विशेष सख़्तियाँ हुईं। स्थानीय अधिकारियों के अधिकार बढ़ गये। नागरिक स्वतन्त्रता समाप्त हो गई। गाँव के गाँव एक किसान के पीछे सज़ा पा सकते थे। नौजवानों के ऊपर पुलिस की विशेष नज़र थी। बंगाल में किसी भी नौजवान की ज़िन्दगी ख़तरे से से ख़ाली नहीं थी। यही हाल यू० पी० का भी था। दूसरे प्रान्तों में भी ज़ुल्मों का दौर दौरा था। सीमाप्रान्त में तीन आर्डिनेन्स लागू किये गये। कोई भी व्यक्ति विना वारन्ट के गिरफ़ार किया जा सकता था। सत्याग्रह करना, धरना देना, बायकाट करना, सामाजिक रोक लगाना, सभी ग़ैरक़ानूनी हो गया। ज़मींदार, स्कूल के मास्टर, वकील, स्थानीय बोर्डों के मेम्बर सभी के लिये यह लाज़िमी हो गया कि वे अमन क़ायम रखने में मदद करें। रेलवे, पब्लिक बिल्डिग, मोटर लारियाँ, तार घर और स्पेशल ख़बर भेजने के तरीक़ों पर रोक लग गयी। सब जगह पुलिस का पहरा पड़ गया। किसी भी लेख और सम्वाद को रोका जा सकता था। प्रेसों पर कड़े क़ानून लागू कर दिये गये। नये जुर्मों के लिये नई सज़ायें मुक़र्रर हुईं। सारा देश पुलिस और स्थानीय अधिकारियों के हाँथ में सौंप दिया गया। सर सैमुअल होर ने स्वयं कहा था कि, ये आर्डिनेन्स आवश्यकता से अधिक सख़्त थे, परन्तु अगर मुल्क में शान्ति रखनी थी तो इनकी ज़रूरत भी थी।

सन् १९३२-३३ का आन्दोलन ३०-३१ के तरह ही था। अब की दृढ़ता और गंभीरता अधिक थी, साथ ही सरकार का दमन चक्र भी कठोर और अधिक नृशंस था। गाँधी जी की गिरफ़ारी के बाद ही सारे देश में गिरफ़ारियाँ शुरू हो गईं। सारी प्रान्तीय

और स्थानीय काँग्रेस कमेटियाँ ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दी गईं।

ग़ैर क़ानूनी क़ानून राज्य

आश्रम और राष्ट्रीय संस्थायें बन्द कर दी गईं तमाम माल असबाब ज़ब्त कर लिया गया। एकाएक हमला हो जाने से काँग्रेस कमेटियों में नेताओं की कमी पड़ गई इसलिये कार्य-कर्त्ताओं ने स्वयं काम करना, आन्दोलन चलाना शुरू कर दिया। लोगों ने सभी क़ानूनों को तोड़ना उचित समझा।

यू० पी० में लगानबन्दी की धूम थी। बिहार, बंगाल आदि प्रान्तों में टैक्स देना बन्द हो गया, सी० पी०, बेरार, कर्नाटक, मद्रास और बिहार में जंगल क़ानून तोड़े गये। बहुत से स्थानों पर नमक क़ानून तोड़ा गया और नमक लूटा गया। आर्डिनेन्सों को सभी जगह तोड़ा गया। पुलिस ने धावा कर काँग्रेस की शृँखला को तोड़ना चाहा। इधर गुप्त रूप से पर्चे, बुलेटिन, अख़बार आदि निकलते रहे। पुलिस के लाख प्रयत्न करने पर भी गुप्त पर्चों का छपना और ख़बरों का पहुँचना नहीं रुक सका। काँग्रेस ने चिट्ठियों के भेजने का इन्तज़ाम भी किया। आल इन्डिया से लेकर तहसील तक सारा काम गुप्त रूप से चलता रहा। सरकार अखिल भारतीय काँग्रेस तथा सूबा काँग्रेस के दफ़्तरों तक का पता नहीं लगा सकी। जहाँ कहीं भी लोग गिरफ़्तार होते थे, दूसरे निकल आते थे। रेल गाड़ियों को रोकना, विना टिकट सवारी, पोस्ट आफ़िसों को नुक-सान पहुँचाना, साधारणतया होने लगा। इस आन्दोलन से रेलवे और पोस्ट आफ़िसों को काफ़ी क्षति उठानी पड़ी। अँग्रेज़ी दवाओं, बैंकों, बीमा कम्पनियों, विदेशी चीनी, मिट्टी का तेल सभी का

बायकाट किया गया। इस आन्दोलन में सवा लाख आदमी गिरफ़ार हुये और ५ या ६ लाख आदमी घायल हुये। पकड़ कर छोड़े जाने वाले लोगों की भी संख्या लाखों की थी। जेलों के अन्दर प्रतिहिंसा पूर्ण, अमानुषिक, घृणित व्यवहार किया गया। आज के और सन् ३२ के जेलों में बहुत अन्तर है। जोड़े जोड़े चलने, टिकट लेकर खड़े होने और न मानने पर बूटों की ठोकरों की बातें रोज़ के प्रोग्राम में थीं।

इस ज़माने के आन्दोलन की तीन विशेषतायें थी। (१) सरकार की ओर से आन्दोलन को दबाने के लिये कोई भी बात बाक़ी नहीं रखी गई (२) कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने अपनी कार्य कुशलता का पूरा परिचय दिया। ख़ुफ़िया पुलिस, साधारण पुलिस और फ़ौज तथा सरकारी पिट्ठुओं की पूरी कोशिश पर भी काँग्रेस का कार्य अबाध गति से चलता रहा। (३) जनता ने जी खोलकर आन्दोलन का साथ दिया। जनता की सहायता बग़ैर आन्दोलन का इतनी सफलता पूर्वक चलना असम्भव था। इसी ज़माने में देश भर में कान्फ्रेंसें हुईं, सभायें हुईं, जलूस निकले और काँग्रेस की सारी कर्तृत्व शक्ति का परिचय मिला।

इसी ज़माने में कांग्रेस के दो सालाना अधिवेशन दिल्ली और कलकत्ते में हुये। दिल्ली अधिवेशन के सभापति पं० मदन मोहन मालवीय थे। आप आगरा पुल पर ही पकड़ लिये गये। चाँदनी चौक में अधिवेशन हुआ, क़रीब ५०० डेलीगेट पहुँच पाये थे प्रस्ताव पास हो जाने के बाद गिरफ़्तारियाँ हुईं। सभापति श्री रणछोड़दास अमृत लाल थे। यहाँ ४ प्रस्ताव पास हुये। पूर्ण

स्वतन्त्रता के ध्येय को दोहराया गया, द्वितीय सत्याग्रह आन्दोलन का स्वागत किया गया, गाँधी जी के नेतृत्व में विश्वास किया गया, वीर पठानों की बड़ाई करते हुये सारे देश को अहिंसात्मक रहने के लिये बधाई दी गई।

इसी प्रकार कलकत्ते का भी अधिवेशन ३१ मार्च १९३३ ई० को हुआ। मालवीय जी तथा उनके साथी आसनसोल में ही पकड़ लिये गये। श्रीमती नेली सेन गुप्त के सभापतित्व में अधिवेशन हुआ। क़रीब २,२०० डेलीगेट उपस्थित थे। कहा जाता है कि दिल्ली अधिवेशन को न होने देने के लिये ७ लाख रुपये ख़र्च हुये थे। परन्तु जनता की सहायता से अधिवेशन हो ही गया। इसी प्रकार कलकत्ते के अधिवेशन को भी सरकार रोक नहीं सकी।

गाँधी जी का उपवास

इधर देश भर में भारी आन्दोलन चल रहा था, ठीक उसी समय प्रधान मन्त्री के साम्प्रदायिक बँटवारे का एलान प्रकाशित हुआ। फ़ौरन गाँधी जी ने प्रधान मन्त्री को पत्र लिखा और अनशन की बात साफ़ साफ़ कह दी। ८ सितम्बर को प्रधान मन्त्री ने जवाब भेजा। सारी बात १२ को प्रकाशित हो गई। २० सितम्बर से उपवास शुरू होने वाला था। अब क्या हो ? आठ दिन का समय था—इतने में ही प्रयत्न करके गाँधी जी की जान बचानी थी। श्री एम० सी० राजा, सप्रू, मालवीय जी सभी ने दौड़ धूप करना शुरू किया, मालवीय जी ने नेताओं की बैठक बुलाई। विलायत में ऐन्ड्रूज़, लैन्सबरी तथा पोलक ने शोर मचाना शुरू किया। सारे देश ने २० सितम्बर को 'हरिजन दिवस' मनाया। गाँधीजी को छोड़

देने की बात हुई, परन्तु गाँधीजी ने किसी भी शर्त पर अनशन तोड़ने से इन्कार कर दिया। पूने में सम्मेलन शुरू हुआ। सर्वश्री राजगोपालाचारी, चुन्नीलाल मेहता, मदनमोहन मालवीय, घनश्यामदास बिड़ला, वल्लभ भाई पटेल, जयकर, अम्बेदकर, राजा, राजेन्द्र प्रसाद, हृदय नाथ कुँजरू आदि नेता इसमें शामिल हुये। उपवास के पाँचवे दिन एक समझौता हुआ। सरकार ने इस समझौते को मान लिया और उपवास समाप्त हो गया। अनशन समाप्त करने के लिये स्वयं रवी बाबू उपस्थित थे। इसी के बाद ही 'हरिजत सेवक संघ' का जन्म हुआ। श्री घनश्याम दास बिड़ला इस संघ के सभापति और श्री अमृत लाल ठक्कर इसके मन्त्री हुये। इस संघ ने इन वर्षों में काफ़ी काम किया है। इस उपवास के बाद गाँधी जी को हरिजन आन्दोलन चलाने की इजाज़त जेल में रहते हुये भी मिल गई।

गाँधी जी ने ८ मई, १९३३ ई० से आत्मशुद्धि के लिये २१ दिन का उपवास शुरू किया। अब की बार उसी दिन सरकार ने गाँधी जी को छोड़ दिया। आपने छूटते ही वक्तव्य दिया और कहा कि आप हरिजन कार्य ही में अधिक समय देना चाहते हैं फिर भी आप सत्याग्रह आन्दोलन का अध्ययन ज़रूर करेंगे। आपने सत्याग्रहियों को वीरता की प्रशंसा की, परन्तु साथ ही गुप्त काँग्रेस कार्य को अनुचित बताया। आपने यह भी कहा कि अगर हो सका तो आप समझौते की बातें भी शुरू करेंगे। आपने सभापतियों से अपील की कि वे ६ या ७ रोज़ के लिये आन्दोलन रोक दें। अगर समझौता न हो सका तो आन्दोलन फिर चलने लगेगा। सरकार की ओर से इस अपील का जवाब भी निकला।

सत्याग्रह आन्दोलन पर भी एक बार दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है। हरिजन समस्या को इतना महत्व गाँधी जी के उपवास से मिला था परन्तु उस समय देश में सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था। ६ जनवरी १९३३ को श्री राजेन्द्र प्रसाद, सभापति अखिल भारतीय काँग्रेस, गिरफ़ार हो गये। राजेन्द्र बाबू के बाद लोक नायक अणे सदर बनाये गये। याद रहे यह जमाना सन् ३३ को शुरू का था। काँग्रेस मन्त्री इस जमाने में श्री जयप्रकाश नारायण, लाल जी मेहरोत्रा, गिरधारी क्रिपलानी, आनन्द चौधरी और जुगुल किशोर अग्रवाल हुए थे। गाँधी जी के कहने पर अणे महाशय ने आन्दोलन को ६ हफ़्ते के लिये स्थगित कर दिया। सरकार के रुख़ में कोई भी परिवर्तन इससे नहीं हुआ। इसी समय वियना से श्री विट्ठल भाई पटेल और सुभाषचन्द्र बोस ने 'रायटर' को एक वक्तव्य दिया जिसमें आप लोगों ने कहा कि, "गाँधी जी ने आन्दोलन स्थगित करके अपनी असफलता मान ली है। हमारी यह साफ़ राय है कि बहैसियत एक राजनैतिक नेता के गाँधी जी असफल हो गये हैं। इसलिये अब समय आ गया है कि काँग्रेस का उग्रवादी संगठन नये सिद्धान्तों और नये रास्तों पर किया जाय। इस कार्य के लिये एक नये नेता की जरूरत है।"

पूना सम्मेलन

पूना में वे नेता आपस में विचार विनिमय के लिये १२ जुलाई सन् ३३ में मिले जो अभी तक जेल के बाहर थे या जेल से छूट कर वापस आ गये थे। अणे जी ने पहले अपना भाषण दिया, इसके बाद गाँधी जी ने भी भाषण दिया। यह बात कि बिना किसी शर्त के

आन्दोलन वापस ले लिया जाय नहीं मानी गई, साथ ही व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रस्ताव भी पास नहीं हुआ। अन्त में गाँधी जी को अधिकार दिया गया कि वे सरकार से सुलह की बातचीत करें। बात चीत शुरू हुई, परन्तु मुलाक़ात नहीं हो सकी और समझौते का प्रयत्न शीघ्र ही असफल हो गया। इसके बाद सवाल यह था कि सत्याग्रह का अगला रूप क्या होगा। व्यक्तिगत सत्याग्रह की बात लोगों ने मान ली। गाँधी जी ने पहली अगस्त, १९३३ को रास गाँव जाने का इरादा किया। लेकिन रात ही में वे ३४ स्वयं सेवकों के साथही गिरफ़ार कर लिये गये। श्री अणे और उनके बाद सरदार शार्दूल सिंह कवीश्वर काँग्रेस के सभापति हुये। अब हर एक व्यक्ति अपनी इच्छा से सत्याग्रह कर सकता था।

जेल जाते ही गाँधी जी ने फिर हरिजन कार्य के लिये सहूलियत माँगी और न मिलने पर भूख हड़ताल शुरू कर दी। आप सासून अस्पताल में हालत बिगड़ने के कारण पहुँचाये गये, बाद में आप छोड़ दिये गये, लेकिन छूटने पर आपने फिर सत्याग्रह न करने का निश्चय किया और अपने को साल भर तक (अगस्त ४, १९३४ ई०) केवल हरिजन कार्य करने का निश्चय किया। इस बीच में अपनी माँ की बीमारी के कारण ३० अगस्त को जवाहर लाल जी भी छोड़ दिये गये। आपने छूटने पर गाँधी जी से बातचीत की। काँग्रेस वालों को मार्ग सुझाने के लिये आप दोनों के पत्र व्यवहार प्रकाशित कर दिये गये।

नवम्बर, १९३३ ई० में गाँधी जी ने हरिजन-भ्रमण प्रारम्भ किया। १० महीने तक आप सारे भारत में घूमते रहे। इस भ्रमण

से प्रचार कार्य काफ़ी हुआ और आपने हरिजन कार्य के लिये क़रीब आठ लाख रुपया इकट्ठा किया। इसी

हरिजन भ्रमण

भ्रमण में गाँधी जी के ऊपर बम फेंका गया था और एक स्थान पर गाँधी जी की मोटर पर लाठियाँ बरसाई गई थीं। इसी बीच में बिहार में (१६ जनवरी ३४) में भूकम्प आया। हज़ारों कार्यकर्ता इस संकट में सहायता देने बिहार पहुँचे। बिहार से पं० जवाहर लाल कलकत्ते गये, वहाँ आपने कई भाषण दिये। पर आपको गिरफ़ार कर लिया गया।

अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी की बैठक पटने में १८ और १९ मई १९३४ ई० में हुई। इसके पहिले ही

पटना की बैठक

राँची में काँग्रेस के उन लोगों की बैठक हो चुकी थी जो असेम्बली के चुनाव लड़ना चाहते थे। राँची में 'स्वराज्य पार्टी' को फिर से जीवित करने की बात सोची गई। अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी की अनुमति लेना आवश्यक समझा गया और असेम्बली के अन्दर पहुँच कर सरकार को हराने पर विशेष ज़ोर दिया गया। पटने की बैठक ने इस बात को मान लिया।

पटने की बैठक में सबसे बड़ी बात यह हुई कि सत्याग्रह आन्दोलन रोक दिया गया। २० मई १९३४ ई० से सत्याग्रह आन्दोलन बन्द कर दिया गया। काँग्रेस ने असेम्बली में जाने का प्रोग्राम मान लिया। महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह करने का अधिकार केवल अपने तक सीमित रखा। पटने में यह भी तय हुआ कि आन्दोलन

के ज़माने में जिस प्रकार काँग्रेस संस्था चल रही थी, वैसे न चले। संगठित रूप से उसका कार्य शुरू होना चाहिये। सूबा काँग्रेस कमेटियों का फिर से संगठन होने लगा और साथ ही काँग्रेस विधान में भी बहुत से परिवर्तन हुये।

काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी

पटने में एक बात और भी हुई थी वह है काँग्रेस समाजवादी दल का जन्म। १७ मई, १९३४ ई० आचार्य नरेन्द्रदेव के सभापतित्व में अखिल भारतीय समाजवादी दल का सम्मेलन हुआ। यहीं पर इस दल को एक संगठित रूप देने का निश्चय हुआ। साथ ही एक कमेटी भी इसलिये नियुक्त की गई कि वह दल का विधान तैयार करे।

असेम्बली का चुनाव

बम्बई काँग्रेस के सभापति बाबू राजेन्द्र प्रसाद थे, इस काँग्रेस में विधान के सवाल पर काफ़ी बात चीत हुई। राजेन्द्रबाबू ने अपने भाषण में आने वाले विधान की कड़ी आलोचना की। साम्प्रदायिक बँटवारे के सवाल पर भी विचार किया गया। आमतौर से जो सवाल उठे उन पर निर्णय करने के बाद 'काँग्रेस पार्लियामेन्टरी बोर्ड' का सवाल आया। हम जानते हैं कि पहले ही यह निश्चय हो चुका था कि केन्द्रीय असेम्बली का चुनाव काँग्रेस की ओर से लड़ा जाय। बोर्ड ने इस चुनाव में हिस्सा लिया और सफलता भी मिली। पं० मदनमोहन मालवीय तथा श्री अणे का साम्प्रदायिक बँटवारे के प्रश्न पर काँग्रेस चुनाव बोर्ड से मतभेद हो गया। इसलिये इन सज्जनों ने अपना सम्बन्ध इस बोर्ड से तोड़

लिया। काँग्रेस ने निश्चय किया कि जहाँ से पं० मालवीय और श्री अणे खड़े हों वहाँ पर काँग्रेस के आदमी न खड़े किये जाँय।

इस चुनाव का असर सारे देश पर पड़ा। इसी चुनाव में सर शणमुखम् चेट्टी को हज़ारों वोट से हराकर सामी बेंकटाचेलम चेट्टी चुने गये थे। इस चुनाव में ४४ प्रतिनिधि सफल हुये। काँग्रेस नेशनलिस्ट बंगाल में अधिक सफल हुये। ये लोग साम्प्रदायिक बँटवारे को छोड़ कर और सब बातों में काँग्रेस के साथ थे। काँग्रेस वालों ने शेरवानी साहब को असेम्बली का सभापति बनाना चाहा था, पर वे असफल रहे। इसी ज़माने में अभयंकर तथा शेरवानी साहब का देहान्त हो गया। असेम्बली में कई प्रस्ताव पास हुये। पहली ही बैठक में क़रीब २९ प्रस्तावों पर सरकार की करारी हार हुई। आमतौर से काँग्रेसी, काँग्रेस नेशलिस्ट, मुस्लिम लीगी और स्वतन्त्र लोग साथ ही वोट देते थे। इधर असेम्बली में सरकारी पक्ष की हार हो रही थी। उधर नया शासन विधान भारत पर लादे जाने के लिये तैयार किया जा रहा था। हम शासन विधान और उसके कार्यान्वित होने की चर्चा अगले अध्याय में करेंगे।

गाँधी जी काँग्रेस से अलग

इसी ज़माने में महात्मा गाँधी ने अपना नाता काँग्रेस से तोड़ लिया (?) इस समय गाँधी जी ने कहा कि वे काँग्रेस से अलग रह कर ही काँग्रेस और देश की अधिक सेवा कर सकते हैं। गाँधी जी का काँग्रेस से अलग होना एक महत्व पूर्ण चीज़ थी। पाठकों को याद होगा कि हम पहले ही यह कह चुके हैं कि सन् २४ के बाद 'गाँधी युग' समाप्त हो गया। सन् २४ के बाद

काँग्रेस के लोग असेम्बली में गये। गाँधी जी ने इसका विरोध नहीं किया, बल्कि स्वयं अपना सम्बन्ध काँग्रेस से तोड़ लिया। इसके बाद कलकत्ता काँग्रेस (१९२८ ई०) में गाँधी जी ने काफ़ी हिस्सा लिया। 'संघर्ष युग' समाप्त होने के बाद जब फिर असेम्बली में जाने का प्रश्न आया तो गाँधी जी ने अपना सम्बन्ध काँग्रेस से तोड़ लिया। गाँधी जी कौंसिलों और असेम्बली को 'माया का मन्दिर' (Temples of Maya) कहते थे। उनको इस कार्य में बिल्कुल विश्वास नहीं था, इसीलिये आपने काँग्रेस से नाता तोड़ लिया। देश को 'गाँवों की ओर' (Back to the villages) का नारा गाँधी जी ने दिया और रचनात्मक कार्यों में अधिक दिलचस्पी ली।

एक नज़र

'गाँधी युग' से 'संघर्ष युग' तक में हमने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अखिल भारतीय सक्रिय रूप का अध्ययन किया। जिस आन्दोलन का बीज सन् २०—२१ में बोया गया वही वृक्ष रूप में ३०—३४ के ज़माने में हमारे सामने आया। इस ज़माने में हमने कई उतार चढ़ाव देखे। एक तरफ़ जब जनता में उबाल आता था और सक्रिय आन्दोलन अखिल भारतीय भित्ति पर चलता था तो दूसरी तरफ़ सरकार का भी खून गर्म होता था और दमन चक्र चलता था। फिर दोनों तरफ़ से समझौते की बातें होती थीं। फल स्वरूप हमारे राष्ट्र को कुछ न कुछ अधिकार मिल जाते थे। सक्रिय आन्दोलन के बाद असेम्बली-कौंसिलों की ओर ध्यान जाना और वहाँ से ऊबने पर फिर सक्रिय आन्दोलन की ओर खिंचना यही हमारी परिपाटी रही है।

लेकिन एक बात और भी साथ ही साथ होती रही है। जब कभी सक्रिय आन्दोलन असफल हुआ और नेतृत्व को असेम्बली-कौंसिलों की बात सूझी उसी समय प्रगतिशील तथा नौजवान लोगों ने इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप अधिक क्रान्तिकारी प्रोग्राम देश के सामने रखे। प्रगतिशील लोगों ने इस निष्क्रियता के ज़माने में भी किसानों और मज़दूरों की संस्थाओं को जन्म दिया। सन् ३४ के बाद जब एक तरफ़ विधानवादियों की बन आई तो दूसरी तरफ़ काँग्रेस समाजवादी दल का जन्म हुआ। इसी तरह कम्युनिस्ट पार्टी की भी उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जब जब राष्ट्रीय संकट उपस्थित हुये तब तब आन्दोलन चला, जब जब आन्दोलन रुका तब तब प्रगतिशील लोगों ने जनता का संगठन किया और क्रान्ति का अलख जगाते रहे। प्रगतिशील संस्थाओं और लोगों के कार्यों का असर काँग्रेस पर पूरा पड़ा और वह विधान वादियों से अपना दामन छुड़ाकर आगे बढ़ती गई। काँग्रेस इस तरह दिनों-दिन जन-संस्था बनती गई।

१०

नवीन शासन विधान

[महारानी विक्टोरिया का एलान—सन् १८८५ से सन् १९१९—सन् १९१९ के सुधार—केन्द्रीय सरकार—कौंसिल आफ़ स्टेट—केन्द्रीय सरकार—प्रान्तीय सरकार—मताधिकार—देशी रियासतें—सन १९१९ से १९३५—सन् १९३५ के विधान के सिद्धान्त—प्रान्तीय सरकारें—साम्प्रदायिक निर्वाचन—सदस्यता की योग्यता—साम्प्रदायिक निर्णय और पूनापैक्ट—गवर्नर जेनरल के अधिकार—मन्त्रियों की कौंसिल— चुनाव और मन्त्रिमण्डल असफलता - निराशा— इस्तीफ़ा ।]

संघर्ष युग के बाद हमारे देश में वैधानिकता का काल आया। संघर्ष युग की थकावट दूर करने, देश के दबे हुये मनोबल को क़ायम रखने और अवसर से पूरा लाभ उठाने के लिये यह आवश्यक था कि राष्ट्रीय शक्तियों का रुख़ मोड़ दिया जाय और उसे समयानुकूल रचनात्मक कार्यों में लगाया जाय '

जब यह दृष्टि कोण गाँधी जी के सामने रखा गया तो उन्होंने कुछ हिचकिचाहट और पशोपेश के बाद इसे अपना आशीर्वाद दे दिया। डा० अन्सारी, डा० विधान चन्द्रराय आदि नेताओं की देख-रेख में केन्द्रीय असेम्बली के चुनावों को लड़ने का निश्चय तभी हुआ था।

नवीन शासन विधान इसी समय आया। इसके निर्माण का

पूर्व-वृत्तान्त हम दे चुके हैं। इस स्थल पर यह उचित होगा कि हम समय-समय पर होने वाले वैधानिक सुधारों का थोड़े में सिंहावलोकन करलें जिससे वर्तमान शासन विधान के निर्माण की पृष्ठ-भूमि मिल जाय; साथ ही, पहिले के सुधारों की रोशनी में वर्तमान शासन-विधान की रूप रेखा समझ में आ जाय और हम उसका मूल्यांकन कर सकें।

अँग्रेज़ों को दीवानी का अधिकार १७६५ ई० में मोग़ल सम्राट शाह आलम ने दिया। बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी इनको इसी ज़माने में मिली। इन स्थानों का इन्तज़ाम करने के लिये शासन विधान की आवश्यकता पड़ी। १७७३ ई० में रेगूलेटिंग ऐक्ट बना। इसके बाद १८३३ ई० में ईस्टइण्डिया कम्पनी को नये अधिकार दिये गये। गवर्नर जेनरल को अधिकार मिला कि वह सारे इन्तज़ामी और फ़ौजी कामों को सँभाले। १८५३ ई० के चार्टर के अनुसार सम्राट की ओर से २० वर्ष और शासन करने का अधिकार कम्पनी और गवर्नर जेनरल को मिला।

पाठकों को मालूम है कि सभी देशी रजवाड़ों को किसी न किसी प्रकार अपने मातहत इस समय तक अँग्रेज़ कर चुके थे। इनकी ज़्यादतियों और बेईमानियों से तंग आकर इन रजवाड़ों ने सारे देश में संगठित ग़दर किया। मरणासन्न सामन्तवाद ने उभरते हुये विदेशी पूँजीवाद से अन्तिम लोहा सन् ५७ की ग़दर में लिया। परन्तु वह असफल रहा और विदेशी पूँजीवाद की जीत हुई।

सन् ५७ की ग़दर का दमन करके विदेशी पूँजीवाद ने अपना पंजा मज़बूत किया। १८५८ ई० में महारानी विक्टोरिया भारत साम्राज्ञी बनाई गई। १८५८ के ऐक्ट के अनुसार कम्पनी का शासनकाल समाप्त हो गया और भारत मन्त्री के द्वारा भारतवर्ष पर शासन करना शुरू हुआ। महारानी विक्टोरिया ने एलान किया कि अब से सरकार की ओर से जाति, धर्म के कारण कोई भेद-भाव नहीं किया जायेगा, और सब लोग सरकारी नौकरी आज़ादी के साथ कर सकेंगे।

महारानी विक्टोरिया का एलान

१८६१ ई० में इण्डिया कौंसिल ऐक्ट पास हुआ। जिसके अनुसार गवर्नर जेनरल की कौंसिल में ५ आदमी रखे गये। एक लेजिस्लेटिव् कौंसिल बनाने की भी बात कही गई। इस कौंसिल में गवर्नर जेनरल की कौंसिल के ५ मेम्बर और साथ ही ६ और ११ के बीच में अन्य मेम्बर भी रहेंगे। इनमें से आधे को ग़ैर सरकारी होना ज़रूरी था।

सन् १८८५ ई० में काँग्रेस का जन्म हुआ। काँग्रेस के वैधानिक आन्दोलन के फलस्वरूप १८९२ ई० में इण्डियन कौंसिल ऐक्ट पास हुआ। जिसके अनुसार केन्द्रीय तथा सूबे की कौंसिलों के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। इन कौंसिलों को 'आर्थिक विवरण' पर बहस करने का अधिकार था। सन १९०९ ई० में फिर सुधार हुआ। इस सुधार को 'मार्ले-मिन्टो सुधार' कहा जाता है। इन सुधारों से प्रान्तीय तथा केन्द्र की सरकारों के विधान में परिवर्तन

सन् १८८५ से सन् १९१९

हुये। प्रतिनिधि सरकार की स्थापना करना इन सुधारों की दृष्टि-कोण के बाहर की चीज़ थी। इसी ज़माने में लार्ड सिन्हा को गवर्नर जेनरल की कौंसिल का 'लॉ मेम्बर' बनाया गया। भारत मन्त्री के कौंसिल में दो हिन्दोस्तानी रखे गये। बंगाल, बम्बई, मद्रास, बिहार और उड़ीसा की सरकार की इक्ज़ीक्यूटिव कौंसिलों में हिन्दुस्तानी आदमी लिये गये।

दिल्ली दरबार १२ दिसम्बर १९११ ई० में हुई। जिसमें सम्राट जार्ज पंचम मौजूद थे। इसी समय नये परिवर्तनों का एलान हुआ। बंग-भंग रुक गया। दिल्ली राजधानी बनाई गई। गवर्नर जेनरल की लेजिस्लेटिव् कौंसिल के ६९ सदस्य हुये। अधिक से अधिक ५० सदस्य बड़े सूबों में और ३० सदस्य छोटे सूबों में और बढ़ाये गये। सदस्यों का ब्यौरा देखने से पता चलता है कि सरकारी पक्ष हमेशा मज़बूत रखा गया था। पृथक निर्वाचन के सिद्धान्त को माना गया। श्रेणियों के हितों के दृष्टिकोण से चुनाव रायज किया गया। इन कौंसिलों के तीन काम थे (१) क़ानून बनाना (२) विचार करना और (३) प्रश्न पूछना। बजट पर बहस करने और वोट देने का अधिकार दिया गया। महत्वपूर्ण प्रश्नों पर प्रस्ताव रखने का भी अधिकार मिला। इन कौंसिलों के बारे में प्रसिद्ध अँग्रेज़ विद्वान प्रो० बेरीडेल कीथ का कहना है कि, "कौंसिलों की मशीनें इसलिये बनाई गई थीं कि वे क़ानून बना कर शासन करने वालों की सहायता करें।" इन कौंसिलों ने अपना यह काम ख़ूबी के साथ किया इसमें शक नहीं।

२० अगस्त १९१७ ई० में भारत मन्त्री ने कामन्स सभा में एक

महत्वपूर्ण एलान किया:—"सरकार की यह नीति है और भारत सरकार इस नीति से पूरी तरह सहमत है कि शासन की हर शाखा में अधिक से अधिक सहयोग हिन्दुस्तानियों से लिया जाय और स्वयं-शासक संस्थाओं को उन्नत किया जाय जिससे बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवर्ष एक ज़िम्मेदार सरकार को पा सके।"

इसी नीति के आधार पर इन्डिया ऐक्ट १९१९ का निर्माण हुआ। यह ऐक्ट सन् २१ में कार्यान्वित किया गया। इसी सुधार को मान्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार कहा जाता है।

सन् १९१९ के सुधार

सन् १९१९ के सुधारों में चार बातों का विशेष ध्यान रखा गया था:—(१) जहाँ तक हो सके स्थानीय बोर्डों पर ग़ैर सरकारी अधिकार अधिक हो। (२) सूबों में ज़िम्मेदार सरकार बनाने का सफल प्रयत्न किया जा सकता है। (३) हालाँकि केन्द्रीय कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी जानी चाहिये, फिर भी, अभी कुछ दिनों के लिये, भारत सरकार पूरी तरह से बृटिश पार्लियामेन्ट को ही जवाब देह रहे। (४) धीरे-धीरे पार्लियामेन्ट और भारत मन्त्री के जो अधिकार भारत सरकार पर हैं, ढीले किये जाँय।

सन् १९१९ के सुधारों ने सम्राट के अधिकारों को बढ़ा दिया। ऊँचे से ऊँचे न्याय, शासन आदि विभाग सीधे सम्राट को ही जवाब देह बनाये गये। इन अधिकारों का प्रयोग सम्राट की ओर से एक मिनिस्टर के द्वारा होगा, जो भारत मन्त्री कहलायेगा। साथ ही

गवर्नर जेनरल को, जो कि भारत सरकार के कार्य संचालन का ज़िम्मेदार है, भारत मन्त्री की सारी आज्ञाओं का पालन करने को कहा गया। इस प्रकार भारत सरकार को पूरी तरह भारत मन्त्री के आधीन कर दिया गया।

केन्द्रीय सरकार

केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि गवर्नर-जेनरल हुआ। इस ऐक्ट के अनुसार गवर्नर-जेनरल की कौंसिल के मेम्बरों की संख्या निर्धारित नहीं की गई। सुधारों के बाद इस कौंसिल में सात सदस्य थे। (१) प्रधान सेनापति (२) गृह सदस्य (३) अर्थ सदस्य (४) क़ानून सदस्य (५) व्यवसाय सदस्य (६) शिक्षा-सदस्य और उद्योग सदस्य। गवर्नर जेनरल के हाँथों में वैदेशिक और राजनैतिक विभाग दिये गये। वाईसराय की हैसियत से देशी नरेशों और ब्रिटिश भारत में सम्बन्ध स्थापित रखने का ज़िम्मा उसको मिला।

(१) *केन्द्रीय विषय* :—इसमें रक्षा, वैदेशिक विषय, देशी नरेशों से सम्बन्ध, रेल, तार, जहाज़, डाक, बन्दरगाह, सड़कें, मुद्रा संचालन, कर्ज़े, व्यवसाय और कम्पनियाँ, कर, आमदनी के कर, दीवानी और फ़ौजदारी के क़ानून, अखिल भारतीय नौकरियाँ आदि थीं।

(२) *प्रान्तीय विषय* :—इसमें वे तमाम विषय शामिल थे जो केन्द्रीय नहीं थे। प्रान्तीय सरकारों पर केन्द्रीय सरकार का पूरा अधिकार था।

केन्द्रीय सरकार के दो हिस्से थे। कौंसिल आफ़ स्टेट और केन्द्रीय असेम्बली। कौंसिल आफ़-स्टेट के अधिक से अधिक ६०

सदस्य हो सकते थे। इनमें से ३३ चुने हुये और बाक़ी नामज़द सदस्य होते थे। जिसमें २० से अधिक सरकारी अफ़सर सदस्य नहीं हो सकते थे। चुने हुये सदस्यों को वोट देने वाले वे ही लोग थे जिनकी आमदनी बहुत अधिक होती थी। इन वोटरों की संख्या कुल २०,००० थी।

केन्द्रीय असेम्बली के नामज़द और चुने हुये दोनों मिला कर १४० सदस्य थे। इनकी संख्या कुछ घटाई बढ़ाई जा सकती थी। इनमें से कम से कम $\frac{5}{6}$ सदस्य चुने हुये और नामज़दों में से कम से कम $\frac{1}{3}$ सदस्य ग़ैरसरकारी होते थे। असेम्बली की अवधि आमतौर से ३ साल की रखी गई। केन्द्रीय असेम्बली के कुल १५ लाख वोटर हुए। पृथक निर्वाचन के सिद्धान्त को इस चुनाव में भी माना गया; मुसलमान, योरोपियन, सिक्ख, मद्रास के अब्राह्मण और महाराष्ट्र के लोगों को पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिया गया।

केन्द्रीय असेम्बली के अधिकार ये माने गये :—केन्द्रीय असेम्बली में, उन तमाम लोगों, अदालतों, स्थानों और चीज़ों के लिये क़ानून बन सकते हैं जो बृटिश भारत में हैं। जो सरकार के कर्मचारी हैं या प्रजा हैं, चाहे वह भारत के अन्य किसी भी स्थान पर हों, उनके लिये भी क़ानून असेम्बली में बन सकते हैं।

असेम्बली के अधिकार पर ये प्रतिबन्ध हुए :—(१) बहुत सी ऐसी चीज़ें हैं जिनके बारे में कोई भी क़ानून बिना पार्लियामेन्ट की आज्ञा के नहीं बन सकता, (२) बहुत से मामलों में भारत मन्त्री की आज्ञा पहिले ही से ले लेना आवश्यक है (३) क़र्ज़ा या कर इसी

प्रकार के बहुत से ऐसे विषय हैं जिन पर विचार करने के पहिले गवर्नर जेनरल की आज्ञा लेनी ज़रूरी है। गवर्नर जेनरल को अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करके किसी भी क़ानून को रद्द करने या बनाने का हक़ मिला। आम बजट, फ़ौजी बजट और राजनैतिक विभाग के ख़र्चे पर असेम्बली को वोट देने का अधिकार नहीं मिला।

प्रान्तीय सरकार

सन् १९ के शासन सुधार के अनुसार हिन्दुस्तान में १० सूबे थे। बंगाल, बम्बई, मद्रास, यू० पी०, पंजाब, बिहार और उड़ीसा, सी० पी०, आसाम, बर्मा, सीमाप्रान्त। यहाँ पर जो सरकारें बनीं उनकी जवाब देही दोतर्फ़ा थी। कुछ ऐसे विषय थे जो बिल्कुल प्रान्तों से सम्बन्ध रखते थे। इन विषयों पर प्रान्तीय सरकारों का पूरा अधिकार था। दूसरे विषयों पर केन्द्रीय सरकार की देख रेख रहती थी। प्रान्तों के गवर्नर अपने मिनिस्टरों की नामज़दगी करते थे। ये मिनिस्टर ग़ैर सरकारी चुने हुए सदस्यों में से ही हो सकते थे।

गवर्नर को लम्बे चौड़े अधिकार मिले। हर प्रकार के विषयों पर उसे अधिकार था। विशेष मामलों में मिनिस्टरों की बात मानने से गवर्नर इनकार कर सकता था और उनकी बातों को वह रद्द कर सकता था। वह विशेष क़ानून भी बना सकता था। इस तरह हम देखते हैं गवर्नर अपने मन के अनुसार जनता के सारे अधिकारों को कुचल सकता था और अपने हस्तक्षेप से सारे विधान को ठप कर सकता था।

नया विधान सारे देश में सन् १९२१ में लागू हुआ, केवल सीमाप्रान्त में देर हुई और वहाँ सुधार १९३२ में लागू हुए।

मताधिकार

विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में रहने के आधार पर मताधिकार का सिद्धान्त बनाया गया। इन निर्वाचन क्षेत्रों में रहने वालों को तभी मताधिकार मिल सकता था जब कि वे भूमि कर देते हों, या दूसरे कर देते हों। कुछ विशेष जातियों के लिये सामाजिक और आर्थिक आधार पर भेद रखा गया। केन्द्रीन असेम्बली में जो साम्प्रदायिक मताधिकार थे उसी के आधार पर सूबों में भी मताधिकार मिले।

देशी रियासतें

नये शासन विधान का अध्ययन करते समय हमारा ध्यान देशी रियासतों की ओर भी जाता है। मान्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट के बाद ८ फ़रवरी १९२१ ई० को शाही फ़रमान के अनुसार 'नरेन्द्र मण्डल' का जन्म हुआ। दीवान-ए-आम, दिल्ली में ड्यूक आफ़ कनाट ने सम्राट की ओर से, नरेन्द्र मण्डल का उद्‌घाटन करते हुये कहा कि, "आपसे पिछले जितने भी सुलहनामें हुये हैं उनकी क़द्र की जायेगी"। वायसराय नरेन्द्र मण्डल के सभापति बनाये गये। सदस्यों में से चान्सलर और प्रोचान्सलर होते हैं। 'नरेन्द्र मण्डल' का काम केवल राय देना है। पुराने समझौतों के बारे में अथवा किसी भी रियासत के अन्तरंग मामलों में यह हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

सन् १९१९ के शासन विधान का जनता ने घोर विरोध किया। युद्ध के समय अँग्रेज़ों ने जो बड़े बड़े वायदे किये थे उनकी

झलक भी इन सुधारों में दिखाई न दी। सरकार की दमन नीति से देश में अशान्ति फैल गई जिसके फल स्वरूप पहला असहयोग आन्दोलन हुआ। आन्दोलन बन्द होने के बाद कौंसिलों और केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव लड़े गये। सन् २८ में नेहरू रिपोर्ट में औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की गई। उधर 'साईमन कमीशन' के स्वागत से हिन्दुस्तानी अलग रहे। उस कमीशन की रिपोर्ट के बाद सन् १९२९-३० का बड़ा आन्दोलन चला। उधर गोलमेज़ परिषद् बुलाई गई। इसमें काँग्रेस का कोई प्रतिनिधि नही शामिल हुआ। दूसरी बैठक में गाँधी जी शामिल हुये थे, परन्तु उन्हें असफल वापस आना पड़ा। तीसरी बैठक के बाद एक शासन विधान का ख़ाका बना। सन् ३५ में शासन विधान बन कर तैयार हो गया।

सन् १९१९ से १९३५

नये विधान के अनुसार बर्मा हिन्दुस्तान से अलग कर दिया गया और बृटिश भारत को ११ सूबों में बाँटा गया। इन सूबों के विभाजन का मूल सिद्धान्त क्या है ? अँग्रेज़ों की नीति के अनुसार सूबों का विभाजन अवैज्ञानिक ढंग से हुआ। आधुनिक राजनीतिक विचारक यह मानते हैं कि सूबों का विभाजन संस्कृति और भाषा के आधार पर होना चाहिये; ऐसा विभाजन टिकाऊ, न्याय-संगत और प्राकृतिक होता है। अमेरिका और रूस में इसी नींव पर सङ्घ शासन क़ायम है। अमेरिका में जितनी भी रियासतें (States) हैं सभों ने मिल कर संघ-शासन क़ायम

सन् ३५ के विधान के सिद्धान्त

किया है। इस संघ शासन की बातें सर्वोपरि मानी जाती हैं। रूस ने इसी सिद्धान्त को माना है, परन्तु यहाँ छोटी छोटी रियासतों और छोटी छोटी साँस्कृतिक इकाइयों (Cultural units) को भी धार्मिक, साँस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि स्वतन्त्रता प्राप्त है। संघ के दायरे से अलग हो जाने का हक़ इनको पूरा है। लेकिन हमारे देश के सामने जो संघ शासन का चित्र आया वह बड़ा विचित्र था। सभी राजनीतिक दलों, विद्वानों और विचारकों ने उसका विरोध किया।

नये संघ शासन में लोगों ने आज़ादी की कोई झलक नहीं देखी। गर्वनर जेनरल को विशेषाधिकार मिले थे। विदेशी राष्ट्रों से किसी भी प्रकार भारत आज़ाद सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता था। खज़ाना, फ़ौज आदि पर संघ असेम्बली को कोई अधिकार नहीं दिया गया। साथ ही प्रतिक्रियावादी वर्गों, हितों और संस्थाओं और देशी राजाओं को आवश्यकता से अधिक मताधिकार देकर केन्द्रीय असेम्बली के हाथ पाँव काट लिये गये। पृथक निर्वाचन के कारण साम्प्रदायिक एकता असम्भव कर दी गई और भारतीय जनता को कई भागों में बाँट दिया गया।

प्रान्तीय सरकारें

सन् १९३५ के संघ शासन विधान के दो हिस्से हैं। प्रान्तीय और केन्द्रीय-प्रान्तों में असेम्बलियाँ हुईं जिनमें जनता द्वारा चुने हुये प्रतिनिधि और सरकारी नामज़द सदस्य थे। सब से मज़बूत दल को प्रधान को चुनने का अधिकार मिला। प्रधान मन्त्री अपनी इच्छानुसार अपना मन्त्रि-मण्डल बना सकता था। नवीन सुधार के

अन्तर्गत बर्मा को अलग करने के बाद जो ग्यारह सूबे माने गये वे इस प्रकार हैं :—

(१) बंगाल, (२) मद्रास, (३) बम्बई, (४) यू० पी० (५) सी० पी० (६) बिहार, (७) उड़ीसा, (८) सिन्ध, (९) आसाम, (१०) सीमा प्रान्त, (११) पंजाब।

सिन्ध पहले बम्बई सूबे में शामिल था। अब यह सूबा अलग कर दिया गया। इसी प्रकार उड़ीसा भी बिहार से अलग कर दिया गया। मद्रास प्रेसिडेन्सी का थोड़ा सा हिस्सा काट कर उड़ीसा प्रान्त में मिला दिया गया। इन प्रान्तों में शासक गर्वनर रहेंगे।

बलूचिस्तान, दिल्ली, अजमेर—मेरवाड़ा, कुर्ग, अण्डमन्, नीकोबार और पन्थ पिप लोदा में चीफ़ कमिश्नर का शासन हुआ।

बंगाल, यू० पी०, मद्रास, बम्बई बिहार और आसाम में असेम्बलियों के अलावा कौसलें भी बनीं। असेम्बली की अवधि पाँच वर्ष हुई। कौंसिलों की कोई अवधि नहीं रखी गई, पर कहा गया कि हर तीसरे वर्ष इसके तिहाई सदस्य रिटायर हो जायेंगे और उनके स्थान पर दूसरे सदस्य चुनकर आ जायेंगे।

ईमानदार लोगों ने कौसिलों का विरोध किया। सर तेज बहादुर सप्रू ने अपने वक्तव्य में कहा :—

"यह सच है कि जहाँ कहीं भी ज़िमींदार हैं वहीं इन कौंसिलों की माँग की गई है। लेकिन इस माँग में जनता शामिल नहीं है। मुझे शक है कि इन कौंसिलों के होने से ज़िमींदारों के हितों की रक्षा हो सकेगी... ये कौंसिलें तमाम प्रगतिशील प्रस्तावों और कार्यों को रोक देंगी।"

पाठक देखेंगे कि इन कौंसिलों का निर्माण उन्हीं प्रान्तों में हुआ जहाँ के धनिकों, पूँजीपतियों, ज़िमीदारों और स्थिर स्वार्थ वालों की रक्षा करना और प्रगतिशील कार्यवाही के रास्ते में रोड़े अटकाना पार्लियामेन्ट और बृटिश सरकार ने अपना कर्तव्य समझा।

विधान में कहा गया कि गवर्नर मन्त्रिमण्डल की सहायता और सलाह से प्रान्तों का शासन कार्य चलायेगा। मन्त्रियों को केवल उन्हीं बातों पर राय देने या प्रस्ताव पास करने का अधिकार मिला जिनका उल्लेख विधान की विभिन्न धाराओं में हुआ।

गवर्नर का सूबे के शासन में सब से बड़ा हाथ रखा गया जिससे कि वह मंत्रिमण्डल पर सदारत कर सके। वह किसी भी विषय पर अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार कार्य कर सकता था और वह इन व्यक्तिगत विचारों के लिए मंत्रिमण्डल को जवाबदेह भी नहीं था। कहा गया कि आम तौर से गवर्नर मन्त्रियों की राय से ही शासन करेगा। वह उनकी बातें तभी तक मानेगा जब तक उसके विचार में मन्त्रियों की कोई सम्मति उसकी 'विशेष जिम्मेदारी' के विरुद्ध नहीं जाती। इस सिलसिले में गवर्नरों की विशेष जिम्मेदारियाँ (Governor's Special Responsibilities) ये मानी गईं:—

(अ) सूबों में अगर अमन और शान्ति में गम्भीर ख़तरा हो तो उसको रोकना।

(ब) अल्पसंख्यकों के विशेष हितों की रक्षा करना।

(स) सरकारी कर्मचारियों और उनके ऊपर निर्भर रहने वालों के हितों और हक़ों की रक्षा करना।

(द) प्रस्तावित कार्यों की देख भाल करना।

(इ) विशेष क्षेत्रों के सुशासन की देख भाल करना।

(फ) किसी भी देशी रियासत के हक़ों और सम्मान की रक्षा करना।

(ज) गवर्नर जेनरल की आज्ञाओं और आदेशों को कार्यान्वित करना।

गवर्नर अपने सूबे के लिये ऐडवोकेट जेनरल नियुक्त करेगा जो प्रान्तीय सरकार को क़ानूनी राय देगा। गवर्नर ही अपने सेक्रेटैरियट को नियुक्त करेगा और उसकी देख भाल करेगा। गवर्नर हिंसात्मक संगठनों, आन्दोलनों और षणयन्त्रों को रोकने के लिये अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग करेगा। गवर्नर आतंकवाद को दबाने के लिये ऐसे काम भी कर सकता है जिसको वह मन्त्रियों से भी गुप्त रखे। खोफ़िया विभाग के काग़ज़ात जिनका सम्बन्ध आतंकवादी आन्दोलन से है केवल इन्सपेक्टर जेनरल पुलिस या पुलिस कमिश्नर को दिखलाये जा सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मन्त्रियों को किसी बात की भी पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं दी गई। गवर्नर ही पूर्ण रूप से प्रान्त का शासक माना गया।

नये विधान में जैसा कि हम पहले कह चुके हैं ११ में से ६ सूबों में दो धारा सभायें हुईं। प्रान्तीय असेम्बली के सभापति को 'स्पीकर' कहा गया, और कौंसिल के सभापति को 'प्रेसीडेन्ट'। ज़रूरत पड़ने पर असेम्बली और कौंसिल की संयुक्त बैठक हो सकती है। इनमें आमतौर से सारी कार्यवाही अँग्रेज़ी में होगी, पर देशी भाषाओं का भी प्रयोग हो सकता है। मन्त्रियों के वेतन

का निर्णय असेम्बली करेगी, इसी प्रकार सदस्यों के भत्ते का भी निश्चय असेम्बली ही करेगी।

१९३५ के विधान के अनुसार नीचे लिखे प्रकार के लोग ही असेबम्ली या कौंसिल के सदस्य हो सकते हैं :—(१) अवस्था २५ वर्ष से कम न हो, असेम्बली के लिये; अवस्था ३० वर्ष से कम न हो—कौंसिलों के लिये।

सदस्यता की योग्यता

(२) सदस्य को किसी एक सम्प्रदाय या धार्मिक इकाई का होना चाहिये और उसके पास जायदाद की योग्यता भी होनी चाहिये।

(३) सदस्य को ख़ास तरह की शपथ लेनी पड़ेगी।

सदस्यता के लिये अयोग्य ऐसे लोग माने गये जो वेतन भोगी हों, या लाभप्रद सरकारी विभागों से सम्बन्धित हों, या जिनका दिमाग ख़राब हो, या जिन्हें २ साल के ऊपर या कालेपानी की सज़ा मिली हो, या जो किसी प्रकार के अनैतिक जुर्म के लिये सज़ा काट रहे हों, इत्यादि।

प्रान्तीय धारा सभाओं में निम्नांकित विषयों पर प्रस्ताव पास हो सकते हैं, बिल बन सकते हैं और उनको ऐक्ट का रूप दिया जा सकता है।

१—अमन चैन का इन्तज़ाम, प्रान्तीय कचहरियों का संगठन, उनकी देख भाल, तथा उनके सम्बन्ध में क़ानून।

२—लगान सम्बन्धी नियमों को बनाना, परिवर्तन करना, उसका प्रबन्ध करना आदि।

३—आम पुलिस, रेलवे पुलिस और गाँवों की पुलिस के सम्बन्ध में क़ानून बनाना।

४—जेलखाना, सुधार के स्थान, नज़रबन्दों को रखने के लिये स्थान आदि के बारे में क़ानून बनाना।

५—प्रान्तीय क़र्ज़े की देखभाल करना और उस पर विचार करना, नियम बनाना आदि।

६—प्रान्तीय नौकरियों और पेन्शनों की देख रेख रखना। मन्त्रियों आदि के वेतन आदि का भी प्रबन्ध रखना।

७—बाचनालय, अजायबघर, लोकल बोर्डों, जनता के स्वास्थ्य, अस्पतालों, जन्म और मृत्यु की संख्या का हिसाब, तीर्थ स्थानों का प्रबन्ध, मरघटों, क़ब्रिस्तानों आदि का देख रेख करना और प्रबन्ध करना।

८—शिक्षा का इन्तज़ाम, प्रचार और प्रसार करना, शिक्षालयों की देख रेख और सहायता करना।

९—सड़कों, पुलों, घाटों, ट्रामवे, आदि के विषय में आवश्यक क़ानून बनाना और उनकी देख रेख रखना।

१०—पानी का प्रबन्ध करना, सिंचाई, नहर, तथा इसी से सम्बन्धित, दूसरे मुहकमों की देख भाल करना।

११—ज़मीन का सारा प्रबन्ध करना। जँगलों, खानों, जंगली ज़ानवरों, चिड़ियों, मछली मारने के स्थानों की देख भाल और प्रबन्ध करना।

१२—व्यापार, वाणिज्य, उद्योग-धन्धों, उत्पादन, वितरण, खाने के सामान, शराब आदि मादक पदार्थों, ज़हरों और ज़हरीली

चीज़ों का समुचित प्रबन्ध करना और सफल कार्य सञ्चालन की देख रेख रखना।

१३—बेकारी और ग़रीबी दूर करना।

१४—तमाम संस्थाओं की देख रेख करना।

१५—क़ानूनों का पालन कराना और क़ानून तोड़ने वालों का पूरा इन्तज़ाम करना।

१६—विभिन्न प्रकार के लगान, कर, टैक्स, चुंगी आदि की देख भाल करना, बढ़ाना-घटाना आदि।

इस प्रकार सङ्घ धारा सभाओं और प्रान्तीय धारा सभाओं को इन उपरोक्त बातों पर विचार करने, नियम बनाने आदि का अधिकार नवीन शासन विधान में दिया गया। बहुत से ऐसे विषय हैं जिन पर संघ और प्रान्तीय दोनों धारा सभाओं में विचार किया जा सकता है।

साम्प्रदायिक निर्वाचन

नये विधान में साम्प्रदायिकता पर ज़ोर दिया गया। पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन को सिद्धान्त की दृष्टि से सभी राष्ट्रीय विचारों वाले राजनीतिज्ञों ने अमान्य, अप्रगतिशील और राष्ट्रीय एकता में बाधक माना है। परन्तु इस शासन विधान का मूल आधार पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन का सिद्धान्त ही था। विधान की कड़ी आलोचना करते हुये किसी विचारक ने कहा है:—

"इस प्रकार हिन्दुस्तान की एकता के मूल में कुठाराघात किया गया और सारे देश को कई टुकड़ों में बाँट दिया गया। स्थिर स्वार्थों, विशेष हितों, अमीर श्रेणियों, योरोपियनों, स्त्रियों, मुसलमानों और हरिजनों को

कई तरह से बाँट कर हिन्दुस्तानी समाज के १८ टुकड़े कर दिये गये। फलस्वरूप आपसी एकता टूट जायेगी, सदियों की सांस्कृतिक एकता नष्ट हो जायेगी, सारा देश एक राष्ट्रीय इकाई के रूप में नहीं रह जायेगा, मनमुटाव बढ़ेगा और सदियों से जिस महान आदर्श को लेकर देश के नेता प्रयत्न करते आये हैं वह विफल हो जायेगा। पृथक निर्वाचन के सिद्धान्त को अपना कर अँग्रेज़ राजनीतिज्ञों ने अच्छा नहीं किया।"

सचमुच पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन से देश में फूट फैली और आज हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य इस हद तक पहुँच गया है कि वह अब राष्ट्रीय प्रगति में बाधक हो रहा है।

वोट के लिये हिन्दुस्तानी समाज को १८ हिस्सों में बाँटा गया। ये वोट देने वाले अपने धर्म और जातिवालों को ही वोट दे सकते हैं। वोट देने वाले इस प्रकार विभाजित किये गये:—

(१) हिन्दू, (२) हरिजन, (३) मुसलमान, (४) योरोपियन, (५) ऐंग्लो-इन्डियन (अर्ध गोरे), (६) हिन्दुस्तानी ईसाई, (७) सिक्ख (पंजाब में), (८) स्त्रियाँ (आम), (९) स्त्रियाँ (सिक्ख), (१०) स्त्रियाँ (मुसलमान), (११) स्त्रियाँ (ऐंग्लो-इन्डियन), (१२) स्त्रियाँ (हिन्दुस्तानी ईसाई), (१३) विशेष कर अँग्रेज़ी व्यवस्था, उद्योग धन्धे आदि जैसे चैम्बर ऑफ़ कामर्स, प्लान्टर्स असोसियेशन (चाय बगान के मालिक), माइनिंग, असोसियेशन (खानों के मालिक), (१४) हिन्दुस्तानी व्यवसाय और धन्धे, (१५) जिमीदार, (१६) मज़दूर, (१७) विश्वविद्यालय और (१८) पिछड़े हुये क्षेत्र और क़बीले। स्त्रियों को मताधिकार नीचे लिखी योग्यता पर ही मिल सकता था :—

(१) वह स्त्रियाँ जो अपनी जायदाद के कारण वोट देने का अधिकार पा सकती हैं।

(२) वह स्त्रियाँ जो अपने जीवित या मृत पति की जायदाद के कारण वोट देने की अधिकारिणी बनीं हैं।

(३) वह स्त्रियाँ जिनके पतियों को फ़ौजी कार्यों के लिये वोट देने का हक़ मिला हो।

(४) वह स्त्रियाँ जो अपने मृत पति या पुत्र जो फ़ौज या पुलिस विभाग में रहा हो—के कारण पेंशन पाती हों।

(५) वह स्त्रियाँ जिनको अपनी पढ़ाई के कारण वोट देने का अधिकार मिला हो।

मत देने वालों की संख्या ३० लाख से नये विधान में ३½ करोड़ हो गई, परन्तु अभी तक बालिग़ मताधिकार का सिद्धान्त माना नहीं गया था। अँग्रेज़ों को भय था कि बालिग़-मताधिकार के कारण देश की क्रान्तिकारी, प्रगतिशील शक्तियों को उभरने, संगठित होने और शक्ति संचय करने का अवसर मिलेगा। फलस्वरूप अमीर श्रेणियों और स्थिर स्वार्थ वालों (जिसमें स्वयं अँग्रेज़ शामिल हैं) के हितों के मूल में कुठारा घात होता। हमारे शासक इस बात को बर्दाश्त नहीं कर सकते थे, इसलिये यह कह कर कि, "३½ करोड़ से अधिक लोगों के लिये एक दिन में वोट देना असम्भव है और इतने ही आदमियों को वोट देने का प्रबन्ध करना सरकार के लिये मुश्किल काम है" बालिग़ मताधिकार की बात कुछ समय के लिये टाल दी गई। परन्तु देश की आज़ादी की लड़ाई और बालिग़

मताधिकार की माँग साथ साथ चलती हैं। यह माँग अब दिन बदिन ज़ोर पकड़ती जा रही है।

साम्प्रदायिक निर्णय और पूना पैक्ट

साम्प्रदायिक निर्णय के अनुसार भारतीय राष्ट्र को टुकड़ों में बाँट देने का प्रयत्न किया गया। हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख ईसाई, पारसी, योरोपियन, स्थिर स्वार्थ वाले वर्ग और किसान, मज़दूर, स्त्री और पुरुष सब को अलग अलग वोट देने का अधिकार देकर हमारे शासकों ने हमारे देश के राष्ट्रीय जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। पिछली अर्ध शताब्दी में काँग्रेस ने भारत को एक राष्ट्रीय इकाई बनाया, विभिन्न सम्प्रदायों को एकता के सूत्र में बाँधा और सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन में सामञ्जस्य पैदा किया परन्तु हमारे शासकों ने इसको बर्दाश्त नहीं किया। राष्ट्रीय एकता हमारे शासकों के स्वार्थों के विरूद्ध थी और वे हमारे बीच भेद डालकर शासन करने की नीति में असफल रहते अगर उन्होंने पृथक निर्वाचन के सिद्धान्त को तिलाञ्जिलि दी होती।

साम्प्रदायिक निर्णय के बारे में बहुत काफ़ी कहा जा चुका है। इससे किसी भी वर्ग, किसी भी जाति, किसी भी सम्प्रदाय, किसी भी श्रेणी का भला नहीं हो सकता, राष्ट्रीय हिन्दुस्तान इस बात को जानता है। साम्प्रदायिक निर्णय ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच एक ऐसी दीवार खड़ी कर दी है जिसका तोड़ सकना आज असम्भव प्रतीत हो रहा है। हिन्दुओं और हरिजनों के बीच मनमुटाव बढ़ाने का भी प्रयत्न इसी साम्प्रदायिक निर्णय के जरिये किया गया। गाँधी जी ने इसका घोर विरोध किया और आखिर

में पूना समझौता हुआ जिसे पूना पैक्ट कहते हैं। यह पैक्ट हिन्दुस्तान के इतिहास में अमर रहेगा। यह सच है कि इस पैक्ट से हरिजनों का मसला हमेशा के लिये तय नहीं हुआ, परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि महात्मा जी की कोशिश से हिन्दू समाज का अंग भंग कुछ रुक गया। सरकार ने हरिजनों के प्रश्न पर फिर से ग़ौर किया और कुछ आवश्यक परिवर्तन भी उस सम्बन्ध में किये। गाँधी जी की ज़िन्दगी बच गई और हरिजनों तथा हिन्दुओं का काम चलाऊ समझौता हो गया।

साम्प्रदायिक निर्णय के बारे में कुछ प्रगतिशील विचारों की बातें हम यहाँ रखना चाहते हैं। इस निर्णय पर भाषण देते हुये ऐटली महाशय ने कहा :—

"आख़िरकार, साम्प्रदायिक निर्णय का आधार काम चलाऊ ही नहीं होना चाहिये। इस निर्णय ने मुसलमानो के साथ पक्षपात किया है और हिन्दुओं के साथ अन्याय किया है। साम्प्रदायिक निर्णय तो केवल इसलिये होना चाहिये कि विभिन्न अल्पमत वालों को उचित संरक्षण (Protection) मिल सके। लेकिन साम्प्रदायिक पृथक निर्वाचिन से घोर साम्प्रदायिकता बढ़ेगी। संयुक्त निर्वाचन से ही साम्प्रदायिकता का विष बढ़ने और फैलने से रोका जा सकता है।"

लार्ड स्ट्रैबोल्गी ने अपने ओज पूर्ण भाषण में कहा :— "जिस साम्प्रदायिक मन मुटाव की चर्चा आज हम इतने जोरो से सुन रहे हैं उसका नाम भी मान्टेग्यूचेम्स फ़ोर्ड सुधारो के पहिले नहीं सुना जाता था। आज जब कि हम एक निकास ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रहे है, कुछ टुकड़ों के लिये लड़ा करके साम्प्रदायिक समझौता असम्भव कर दिया जा

रहा है। कहा जाता है कि वे आपस में समझौता नहीं कर सकते तो क्या किया जाय ? अगर वे वापस में नहीं मिल सकते तो क्या यह हमारा फ़र्ज हो जाता है कि हम उनके ऊपर इस निर्णय को लाद ही दें—वह निर्णय जो कि हमेशा के लिये उन दोनों जातियों को अलग कर देगा ? मैं बहुत गंभीरता पूर्वक यह सब कह रहा हूँ। क्या हम संयुक्त निर्वाचन के लिये उन पर ज़ोर नहीं डाल सकते ? मुझे तो केवल यही कहना है कि आज हिन्दुस्तान के प्रत्येक जाति और वर्ग के नौजवानों में राजनीतिक कार्यों के लिये साम्प्रदायिक मनमुटाव बढ़ाने की नीति के विरूद्ध जोरों का आन्दोलन चल रहा है। नौजवान हिन्दू, मुसलमान, पारसी सभी काँग्रेस तथा दूसरे राजनीतिक संस्थाओं में शामिल हो रहे हैं मुझे पता है। कि जहाँ तक मज़दूरों आदि का सवाल है वहाँ किसी प्रकार का साम्प्रदायिक प्रश्न नहीं है।"

सर (उस समय मि० सी० वाई० चिन्तामणि ने भी उस समय कहा था :—

"किसी भी दृष्टि से मैं इस निर्णय को सही, बुद्धिमन्ता पूर्ण और न्याय पूर्ण नहीं मानता।.........मैं इस भयानक साम्प्रदायिक निर्णय का नतीजा अभी से देख सकता हूँ। इससे साम्प्रदायिक मनमुटाव बढ़ेगा। आई० सी० यस के अफ़सरों के हाँथ मज़बूत होंगे, जनता द्वारा चुने हुये देशी मन्त्री आई० सी० यस० और आई० पी० यस के अफ़सरों को छू भी न सकेंगे, प्रान्तों का शासन मन्त्रियों के हाँथों में न रह कर इन्हीं नौकरशाही के अफ़सरों के हाँथों में रहेगा। ये अफ़सर हमेशा की तरह अपने को सर्व शक्तिमान समझते रहेंगे और इनको अपने से ऊपर के अधिकारियों

(मन्त्रियों) की कार्य क्षमता, ज्ञान और बुद्धिमत्ता में कभी विश्वास या भरोसा न होगा।"

साम्प्रदायिक निर्णय नौकर शाही की चक्की को पूर्ववत चालू रखने के लिये किया गया था इसमें कोई शक नहीं।

गवर्नर जेनरल के अधिकार

संघ सरकार की रूप रेखा यहाँ देना अब उचित होगा। कहा गया कि सम्राट की ओर से गवर्नर जेनरल इंस्ट्रूमेन्ट आफ़ इन्स्ट्रक्शन्स के अनुसार काम करेगा। रक्षा, धार्मिक मामलों और वैदेशिक मसलों में वह अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करेगा। अपनी सहायता के लिये वह सम्मतिदाताओं को नियुक्त कर सकता था जिनकी संख्या तीन से अधिक नहीं हो सकती। ये सम्मतिदाता केवल गवर्नर जेनरल को जवाबदेह थे। ये लोग संघ असेम्बली और कौंसिल के Ex-officio सदस्य रहेंगे और वहाँ गवर्नर जेनरल की बातों को रखेंगे।

पिछले शासन सुधार के अनुसार भारत के फ़ौजी सरकार पर और लोगों के साथ कम से कम ३ हिन्दुस्तानियों को भी देख भाल करने, और रोक थाम करने का अधिकार था, परन्तु नये विधान के अनुसार यह अधिकार भी छिन गया और कौंसिल तथा गवर्नर जेनरल के अधिकार में फ़ौज का सारा काम चला गया। इसका विरोध हिन्दुस्तानियों की ओर से हुआ और माँग पेश की गई कि (१) रक्षा विभाग का इन्चार्ज गवर्नर जेनलर का सम्मति दाता ग़ैर-सरकारी हिन्दुस्तानी होना चाहिये। अच्छा हो कि वह चुना हुआ व्यक्ति हो।

गया और इस विभाग को भी गवर्नर जेनरल के ही हाथों में रखा गया।

वैदेशिक मामलों के विषय में कहा गया कि इस विषय को तो अवश्य ही गवर्नर जेनरल के हाथों में रखना चाहिये, क्योंकि इसका सम्बन्ध रक्षा और वैदेशिक नीति से है। यह भी कहा गया कि विदेशों से व्यापार आदि का सम्बन्ध स्थापित करना और उसकी देख भाल करना महत्वपूर्ण कार्य है, इसीलिये इस विभाग और व्यवसाय-व्यापार विभाग से काफ़ी घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिये। गवर्नर जेनरल के हाथों से इस विभाग को ले लेने से गड़बड़ी हो जायेगी।

सर तेजबहादुर सप्रू ने इसका विरोध करते हुये आयात-निर्यात कर-निर्धारण के अधिकार की ओर सर सैमुअल का ध्यान खींचा और कहा कि, "इस मामले में केन्द्रीय असेम्बली का हाथ न होना बिल्कुल अनुचित होगा। साथ ही संघ असेम्बली को इन वैदेशिक मामलों पर विचार विनिमय और वादाविवाद करने का अधिकार न देकर उसकी उपयोगिता कम कर दी जा रही है।" लेकिन और विभागों की तरह उस विभाग को भी गवर्नर जेनरल के ही हाथों में सौंपा गया।

इस प्रकार इन मामलों में दख़ल देने का अधिकार छीन कर संघ धारा सभा के साथ अन्याय हुआ। किसी भी राष्ट्र के औद्योगिक और व्यावसायिक जीवन के लिये वैदेशिक सम्बन्ध, तट कर आदि का कितना महत्वपूर्ण स्थान होता है! अगर केन्द्रीय संघ धारा सभा इस पर अपनी आवाज़ न उठा सके तो जिस तरह भी

गवर्नर जेनरल महोदय चाहें भारत के हितों के विरुद्ध (और ब्रिटेन के व्यवसायियों के हितों के पक्ष में) नीति अख्तियार कर सकते हैं।

कहा गया कि मन्त्रियों की संख्या १० से अधिक न होगी। मन्त्री गवर्नर जेनरल को 'सहायता और सलाह' देंगे।

मन्त्रियों की कौंसिल

गवर्नर जेनरल अपनी इच्छानुसार मन्त्रियों की कौंसिल की सदारत कर सकता है। गवर्नर जेनरल की इच्छानुसार ही वे चुने जा सकते हैं और जब तक वह चाहे तभी तक वे मन्त्री भी रह सकते हैं। मन्त्री केवल चुने हुये लोग ही हो सकते हैं। वेतन की निश्चय संघ धारा सभा द्वारा ही होगा। परन्तु एक दफ़ा वेतन निश्चित हो जाने पर उसमें कमी बेशी नहीं हो सकती। मन्त्रियों का चुनाव करते समय गवर्नर जेनरल इस बात का ध्यान रखेगा कि इन मन्त्रियों को धारा सभाओं का विश्वास प्राप्त है और वे संयुक्त जिम्मेदारी के प्रतीक हैं। साथ ही इस चुनाव के समय अल्प मतवालों के हितों की रक्षा का भी विशेष ध्यान रखा जायेगा।

गवर्नर जेनरल के सम्मतिदाताओं और मन्त्रियों में मिलजुल कर कार्य करने की प्रवृत्ति होनी चाहिये। रक्षा विभाग के कार्यों में, जहाँ तक हो सके, मन्त्रियों की बातों और सलाहों का ध्यान रखना चाहिये। परन्तु मन्त्रियों की सलाह से गवर्नर जेनरल को बाँधा नहीं जा सकता।

नीचे लिखी बातों को गवर्नर जेनरल की विशेष जिम्मेदारियों के अन्तर्गत रखा गया।

(१) अमन और शान्ति में ख़तरे को रोकना चाहे, वह सारे हिन्दुस्तान में हो अथवा हिन्दुस्तान के किसी ख़ास हिस्से में हो।

(२) संघ सरकार को आर्थिक स्थायित्व को क़ायम रखना और उसके 'देना पावना' की देख-रेख रखना।

(३) अल्प संख्यकों के जायज़ हितों की रक्षा करना।

(४) उन लोगों पर निर्भर रहने वालों के हितों की रक्षा करना और उनके अधिकारों को अक्षुण्ण रखना जो कि सरकारी कर्मचारी हैं या सरकारी कर्मचारी रहे हैं।

(५) धारा सभा में प्रस्तावित विषयों को कार्यान्वित कराने की ज़िम्मेदारी और उसकी देख भाल।

(६) संयुक्त राष्ट्र (United Kingdom) और बर्मा के उन मालों पर नज़र रखना जो भारत में आते हों, जिससे कि उनके विरुद्ध पक्षपात पूर्ण व्यवहार न हो।

(७) सभी देशी रियासतों के अधिकारों और सम्मान की रक्षा करना।

(८) गवर्नर जेनरल को जो अधिकार नवीन शासन विधान के अनुसार मिले हैं या जिन बातों में उसे व्यक्तिगत इच्छा के अनुसार कार्य करना है।

मन्त्रियों में कार्य विभाजन भी गवर्नर जेनरल अपनी इच्छानुसार ही करेगा। मन्त्रियों को सारी बातें गवर्नर जेनरल को बता कर, उससे पूछ कर और उसकी राय लेकर करनी पड़ेगी। धारा १७ के अनुसार मन्त्रियों को इस मामले में ढीला ढाली करने की गुंजायश नहीं है।

इस प्रकार गवर्नर जेनरल को निरंकुश अधिकार दिये गये। उसे भी अगर किसी के कहे में रहना था तो वह भारत मन्त्री था, जिसके आदेशों को मानना उसके लिये आवश्यक था। गवर्नर जेनरल संघ धारा सभा को जवाबदेह, नहीं वह भारत मन्त्री को जवाबदेह था।

हमने अभी देखा कि संघ शासन को गवर्नर जेनरल के निरंकुश अधिकार में देकर उसकी सारी उपयोगिता नष्ट कर दी गई और उसे पंगु बना दिया गया। अगर हम संघ धारा सभाओं की बनावट देखें, उसमें शामिल होने वाले सदस्यों की योग्यताओं पर नज़र डालें, अगर सरकारी सदस्यों तथा देशी नरेशों के प्रतिनिधियों की संख्या पर ध्यान दें, अगर धारा सभाओं में विचार किये जाने वाले विषयों को देखें, अगर गवर्नर जेनरल के विशेष अधिकारों की पृष्ठ भूमि में धारा सभाओं के अधिकारों को देखें तो पता चलेगा कि हमारी ये संघ धारा सभायें निष्प्राण, तत्वहीन, अधिकार हीन, अशक्त और बेबस ठठरियाँ हैं जिनकी एक मात्र विशेषता उनकी अक्षमता, निष्प्रयोजनता और अनावश्यकता है। फिर इसमें क्या आश्चर्य कि उसी समय लगभग सभी विचारों के राजनीतिज्ञों ने उसका विरोध किया, सुभाष बाबू ने सन् (१८३९ में) उसके लागू होने के विरुद्ध सङ्घर्ष छेड़ने की बात कही, काँग्रेस ने उसे अस्वीकार कर दिया और जन्म लेने से पहिले ही स्वयं सम्राट ने ११ सितम्बर १९३९ को उसका अन्तिम संस्कार अपने हाथों से कर दिया।

बहुत कुछ सोचने समझने के बाद सन् ३७ में काँग्रेस ने प्रान्तीय

धारा सभाओं के चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया। चुनाव के पहिले स्वयं काँग्रेस वालों को अपनी सफ-लता पर भरोसा नहीं था। चुनावों के फल पर सब से अधिक आश्चर्य स्वयं काँग्रेस वालों को हुआ। पुराने अप्रगतिशील लोग बुरी तरह हारे और सारे देश में काँग्रेस की अपूर्व विजय हुई। जिमींदारों, व्यापारियों, मिलमालिकों और सरकारी आदमियों को जनता ने ठुकरा दिया और इनमें से कितनों की ज़मानत तक जब्त हो गई। इन चुनावों का असर देश पर अच्छा पड़ा। नवीन शक्ति और नवजीवन का अनुभव हुआ। प्रतिगामी हमेशा के लिये पछाड़ दिये गये और काँग्रेस के लोग चुने गये। सरकारी पत्रों को भी अचम्भा हुआ। वे भी काँग्रेस की इस अपूर्व विजय के लिये तैयार नहीं थे।

चुनाव और मन्त्रिमण्डल

चुनावों के बाद मन्त्रि मण्डल बनाने का प्रश्न आया और काँग्रेस ने मन्त्रिमण्डल बनाने से इन्कार कर दिया। काँग्रेस का बहुमत होने के कारण काँग्रेस के विरोध करते हुये कोई भी स्थायी मन्त्रिमण्डल बन नहीं सकता था। काँग्रेस के मन्त्रिमण्डल बना देने से इन्कार कर देने पर गुड़िया मन्त्रिमण्डल बनाये गये और इन मन्त्रिमण्डलों ने गवर्नरों की सलाह से अपने प्रान्तों में कार्य आरम्भ कर दिया। गर्मियों में काँग्रेस की ओर से 'नेशनल कन्वेशन' बुलाया गया। यहाँ पर निश्चय हुआ कि अगर गवर्नर दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप न करने का वायदा करें तो काँग्रेस शासन की ज़िम्मेदारी ले सकती है। गवर्नर जेनरल की ओर से इस प्रकार

का आश्वासन मिल जाने पर काँग्रेस ने मन्त्रिमण्डल बनाये और शासन करना आरम्भ किया। इस स्थान पर काँग्रेस मन्त्रिमण्डलों की सफलता और असफलता पर विषद विचार करना आवश्यक नहीं है, न तो यह सम्भव ही है। हम यहाँ केवल कुछ मोटी मोटी बातों पर ही निगाह डालने की कोशिश करेंगे।

काँग्रेस ने मन्त्रिमण्डल ग्रहण किया और देश में आशा, भरोसा की लहरें उठनें लगीं। चुनाव के एलान में जिन वायदों को जनता के सामने रखा गया था उनके पूरे होने के दिन आगये ऐसा जनता ने समझा। इसीलिये काँग्रेसी मन्त्रिमण्डलों से बड़ी बड़ी उम्मीदें की जाने लगीं। लोगों ने समझा कि जनता के हाथों में सच्ची राज्यशक्ति आ गई। परन्तु यह जनता की भूल थी।

असफलता

काँग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के पग पग पर रोड़े अटकाये जाने लगे। प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ बार बार रोक थाम करने लगीं। जरूरी कामों में बाधा पहुँचाई जाने लगी। संयुक्त प्रान्त को ही लीजिये। साम्प्रदायिकता का सब से भयंकर और वीभत्स दृष्य हमें दंगों के रूप में देखने को मिला। अगर हमारा मन्त्रिमण्डल हमारा प्रतिनिधित्व करता था तो उसको हमारा सहयोग मिलना चाहिये था। हम चाहे हिन्दू हों या मुसलमान वज़ारत तो हमारी थी, जनता की थी। लेकिन कुछ लोगों ने उसे ऐसा नहीं समझा। उन्होंने उसको बदनाम किया, उसके कामों में रुकावट पैदा की जाने लगी। विशेषकर मुस्लिम लीग तो मन्त्रिमण्डलों के पीछे पड़ी हुई थी। असेम्बली के अन्दर हर बार 'काम रोको' प्रस्ताव और नाना

प्रकार के एतराजात की धूम थी। बाहर विरोधी सभाओं, प्रचार प्रदर्शनों और दंगों की भरमार थी। पृथक निर्वाचन और साम्प्रदायिकता का विष अपना काम कर रहे थे। हमारे मन्त्रियों का ज्यादा समय इन्हीं मसलों को हल करने में बीता।

निराशा

चूँकि किसानों और मज़दूरों को नाना प्रकार की आशायें चुनाव के समय दिलाई गई थीं इसलिये अब वे अपनी माँगों को पूरा करने के लिये दबाव डालने लगे। इसीलिये देश भर में प्रदर्शन हुये और सभायें हुईं। असेम्बलियों के सामने हज़ारों, लाखों किसानों ने बार बार प्रदर्शन करना शुरू किया। इनकी माँगों को पूरी करना हमारे मन्त्रिमण्डलों का प्रथम कर्तव्य था। इसलिये इनका उतावला होना स्वाभाविक था। मन्त्रिमण्डल ने जब लगानों में सुधार किये और किसानों को कुछ लाभ पहुँचाने का प्रयत्न किया उसी समय ज़िमींदारों ने चिल्लपों मचाना शुरू किया। नतीजा यह हुआ कि किसानों का लाभ न हो सका। न तो हमारे मन्त्रिमण्डलों में इतना दम था कि वे धड़ल्ले से अपनी इच्छानुसार कार्य करते चलते, न विरोधियों ने ही उनको चैन लेने दिया। मज़दूरों ने भी अपनी माँगों को पूरा कराने के लिये हड़तालें शुरू की। उनकी लड़ाइयों का भी यही हाल हुआ।

अन्त के दिनों में हमारे मन्त्रिमण्डलों की क्रान्तिकारी भावना में उतार आने लगा। ऐसा मालूम पड़ने लगा कि वे धारा सभाओं को ही अपने कर्तव्य का मुख्य क्षेत्र समझने लगे हैं।

इसी समय युद्ध शुरू हुआ। हिन्दुस्तान को जबरदस्ती लड़ाई में शामिल कर दिया गया और काँग्रेस के १४ सितम्बर १९३९ वाले प्रस्ताव को ठुकरा दिया गया। इसके विरोध में मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफ़ा दे दिया। सारे देश में जहाँ कहीं भी काँग्रेस मन्त्रिमण्डल थे, वहाँ गवर्नरों की तानाशाही हुकूमत क़ायम हो गई। इस प्रकार जो सरकार इतनी आनबान से बनी थी स्वयं अपनी इच्छा से ही मैदान खाली कर अलग हो गई। इस प्रकार काँग्रेस ने अपनी युद्ध-विरोधी भावना का प्रदर्शन किया।

इस्तीफ़ा

हम देखते हैं कि जिस जोश के साथ जनता ने चुनावों में काँग्रेस का साथ दिया था, वह जोश ठंढा हो गया। किसानों और मजदूरों को निराशा हुई। गवर्नर के विशेषाधिकार, साम्प्रदायिकता वादियों की बुद्धिहीनता और उद्दण्डता, अमीर तथा स्थिर स्वार्थ वाली श्रेणियों के विरोध, बड़े सरकारी अफ़सरों के मामले में मन्त्रिमण्डलों की लाचारी और स्वयं अपनी कमजोरियों ने मन्त्रिमण्डलों को गौरवान्वित न होने दिया।

इधर देश में निर्जीवता आने लगी। क्रान्तिकारी जोश ठंढा पड़ने लगा और सभी ओर निष्क्रियता का राज्य हो गया। काँग्रेस की सारी कर्तृत्वशक्ति मन्त्रिमण्डलों के कीचड़ में फँस कर नष्ट होने लगी। इसलिये मन्त्रिमण्डलों का पद-त्याग ही ठीक था। शासन विधान के खोखलापन को जान लेने के बाद उससे चिपका रहना बुद्धिमानी नहीं थी।

—॰※॰—

११

युद्ध और भारत (१)

[काँग्रेस और युद्ध—आन्तरिक परिस्थिति—मुस्लिम लीग के आरोप—सरकारी तैयारियाँ—काँग्रेस का रुख—मुक्ति-दिवस—पाकिस्तान की माँग—लीग, काँग्रेस और सरकार—व्यक्तिगत-सत्याग्रह—नीति परिवर्तन—क्रिप्स-मसौदा—भारत छोड़ो—इलाहाबाद की बैठक—गाँधी की चिट्ठी—विभिन्न पार्टियों का रुख—राजनैतिक अवस्था ।]

गत युद्ध ने संसार के सभी देशों पर अपना असर डाला। जिन देशों ने सीधे सीधे युद्ध में भाग लिया वे काफ़ी बरबाद हो गये। जब युद्ध की लपटों ने लगभग सभी देशों को झुलसाया तो हिन्दुस्तान ही कैसे उससे अलग रह सकता था ?

१ सितम्बर १९३९ को लड़ाई शुरू हुई। ३ सितम्बर को अँग्रेज़ी-सरकार ने युद्ध का एलान किया और भारत को भी युद्ध में भाग लेने वाला देश क़रार दे दिया। युद्ध में ज़बरदस्ती घसीटा जाना देश को पसन्द नहीं था। काँग्रेस ने इसी लिये फ़ौरन 'युद्ध के मन्तव्यों' के लिये सरकार से पूछ ताछ की। सरकार ने टालमटोल का जवाब दिया और काँग्रेस ने युद्धोद्योग में शिरकत करने से इनकार कर दिया। इसके बाद से युद्ध काल भर सरकार और काँग्रेस में अनबन ही रही और सरकारी नीति का विरोध ही काँग्रेस ने किसी न किसी रूप में किया। हम इसका विषद् वर्णन इस अध्याय में करेंगे।

आज की अवस्था समझने के लिये ज़रूरी है कि हम युद्ध के साल दो साल पहिले की अवस्था को भी थोड़े में देख लें। फ़रवरी १९३८ में हरीपुरा में काँग्रेस का वार्षिक अधिवेषन हुआ। उसमें काँग्रेस ने नवीन शासन विधान के केन्द्रीय (फ़ेडरल) भाग पर अपना मत प्रगट किया। एक सर्व सम्मत से पास प्रस्ताव में कहा गयाः—

काँग्रेस और युद्ध

"काँग्रेस ने नये नवीन शासन विधान को अस्वीकार कर दिया है। वह उसी विधान को स्वीकार कर सकती है जिसे जनता स्वीकार करे और जिसका आधार स्वतन्त्रता हो; उसका निर्माण विधान-निर्मातृ सभा करे और कोई भी विदेशी सत्ता उसमें दख़ल न दे। अस्वीकृति की इस नीति को मानते हुये भी कांग्रेस ने प्रान्तीय मन्त्रि-मन्त्रि मण्डलों को बनने दिया है जिससे राष्ट्र की स्वाधीनता की लड़ाई अधिक मज़बूत हो सके।

"काँग्रेस थोड़े दिनों के लिये भी संघ-शासन व्यवस्था को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं है। अगर यह व्यवस्था ज़बरदस्ती देश पर लादी गई तो हिन्दुस्तान को आघात पहुँचेगा और उसकी ग़ुलामी की जंज़ीरें अधिक मज़बूत हो जायेंगी.........।"

काँग्रेस के इस प्रस्ताव से साफ़ ज़ाहिर है कि उसने अन्तिम रूप से केन्द्रीय संघ व्यवस्था अस्वीकार कर दिया था, लेकिन सरकारी-हल्कों में अब भी यह विश्वास था कि जिस प्रकार कांग्रेस ने प्रान्तीय विधान को कार्यान्वित किया उसी प्रकार वह केन्द्रीय विधान को भी कार्यान्वित करेगी। शायद इस विश्वास का कारण यह था कि केन्द्रीय शासन विधान को अस्वीकृत करने के बाद क्या होगा, काँग्रेस किस प्रकार का युद्ध छेड़ेगी, उसकी रूप रेखा क्या

होगी, इसके बारे में कुछ भी नहीं कहा गया था। अस्वीकृति के बाद एक ही रास्ता था, वह था जन संघर्ष का रास्ता लेकिन इस जन संघर्ष के लिये कोई तैयारी नहीं हुई। अधिकारियों ने समझा समझौता अब भी हो सकता है। इसीलिये सन् १९३८ में राष्ट्रीय नेताओं और सरकारी प्रतिनिधियों में कई बार बातचीत हुई।

बामपक्षी नेता इस समझौते के विरुद्ध थे, और संघर्ष पर जोर दे रहे थे। इधर, प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों से धीरे धीरे जनता ऊब चली थी। इसलिये तमाम किसान-मजदूर संस्थायें संघर्ष छेड़ने के लिये उतावली हो रही थीं।

आन्तरिक परिस्थिति

इसी परिस्थिति में दूसरी बार बाबू सुभाषचन्द्र बोस काँग्रेस की सदारत के लिये बाम पक्षियों की ओर से खड़े किये गये। सुभाष बाबू को बाम पक्षी-राष्ट्र वादियों, समाजवादियों और कम्युनिस्टों का पूरा समर्थन प्राप्त था। देश के सामने 'फ़ेडरेशन' के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का नारा उठाया गया और दक्षिण-पन्थियों की समझौते वाली नीति का जोरदार विरोध किया गया।

सुभाष बाबू के विरुद्ध गाँधी जी की ओर से डा० पट्टाभि सितारामैया खड़े किये गये। चुनाव जोरदार ढंग से हुआ। सुभाष बाबू को १, ५७५ वोट मिले और डा० पट्टाभि सीतारामैया को १, ३७६। इस प्रकार सुभाष बाबू १९९ वोटों से जीत गये। गाँधी जी ने कहा, "पट्टाभि की हार मेरी हार है।"

सुभाष बाबू के चुनाव ने काँग्रेस नेतृत्व के दोनों पक्षों के बीच की दरार को और भी चौड़ी कर दिया। काँग्रेस वर्किंग कमेटी के

१५ सदस्यों में से १२ ने इस्तीफ़ा दे दिया। इस्तीफ़ा देने वालों में पंडित जवाहर लाल नेहरू भी थे। पं० नेहरू ने उसी समय एक छोटी सी पुस्तिका 'हम कहाँ हैं ?' में अपने इस्तीफ़े का कारण बताया था। काँग्रेस कार्य-कारिणी की सदस्यता पर झगड़ा बढ़ा और जब त्रिपुरी में (मार्च १९३९) अधिवेशन हुआ तो दक्षिण पन्थियों ने पूरी कोशिश की कि उनका प्रस्ताव, जिसमें गाँधी जी पर पूरा विश्वास रखने और उनके आदेश के अनुसार वर्किंग-कमेटी के सदस्य चुनने पर ज़ोर दिया गया था, पास हो जाय। इस समय दक्षिण पन्थियों की जीत हुई। २१८ वोट इनको मिले और वाम पक्षियों को १३५ वोट मिले।

कुछ दिन तक बोस बाबू और गाँधी जी से बातचीत चलती रही मगर कोई नतीजा नहीं निकला और अन्त में १९३९ के अप्रैल में उन्होंने अपना इस्तीफ़ा दाखिल कर दिया। इसी समय उन्होंने काँग्रेस के ही अन्दर एक नई संस्था को जन्म दिया जिसका नाम 'फ़ारवर्ड-ब्लाक' था।

राजेन्द्रबाबू सुभाषबाबू के स्थान पर चुने गये और काँग्रेस ने अपने विधान के अन्दर भी कड़ाई शुरू की। प्रान्तीय काँग्रेस कमेटियों तथा मन्त्रि मण्डलों को भी आदेश मिला कि वे अधिक प्रदर्शन अथवा आन्दोलन न होने दें। प्रान्तीय काँग्रेस कमेटियों के अधिकारों को कम कर दिया गया और मन्त्रि मण्डलों को काफ़ी आसानियाँ हो गईं। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि बढ़ते हुये मज़दूर-किसान आन्दोलनों पर रोक लगाई जाय। इसके विरोध में सुभाष बाबू और 'वाम पक्षी संगठन समिति' ने मिल कर ९

जुलाई १९३९ को सारे देश में प्रदर्शन किया। उस काम को अनुशासन के विरुद्ध समझा गया और सुभाष बाबू बंगाल प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी के भी सदर रहने योग्य नहीं माने गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि युद्ध शुरू होने के पहिले वामपक्षी उग्र दलों और दक्षिण पन्थी गुट के बीच अच्छी तरह मनमुटाव हो चुका था।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है सुभाष बाबू के 'फ़ारवर्डब्लाक' और गाँधी जी के असर की काँग्रेस में कोई बुनियादी भेद नहीं था। सुभाष बाबू ने कहा था —

"'फ़ारवर्डब्लाक' गाँधी जी के व्यक्तित्व तथा उनकी राजनैतिक विचार धारा—अहिंसात्मक असहयोग—के लिये अधिक से अधिक आदर भाव रखता है फिर भी वर्तमान 'हाई कमाण्ड' में उसे विश्वास नहीं है।"

काँग्रेस के दक्षिण पन्थी नेतृत्व और उग्रवादी 'फ़ारवर्ड ब्लाक' के इस विरोध ने, आगे चल कर, युद्ध कालीन राजनैतिक अवस्था पर भारी असर डाला। 'फ़ारवर्डब्लाक' और गाँधीवादी दल की राजनैतिक विचार धारा में मौलिक भेद न होते हुये भी दोनों ने युद्ध काल में जैसा रुख़ अख़्तियार किया वह मनोरंजक है।

मुस्लिम लीग के आरोप

इसी जमाने में मुस्लिम लीग ने काफ़ी शक्ति-संचय कर लिया था। मन्त्रि मण्डलों के विरोध में उसकी ओर से तरह-तरह के आरोप लगाये गये थे। आरोपों की तह में यद्यपि सच्चाई की मात्रा बिल्कुल नहीं थीं, फिर भी मुस्लिम जनता में उसके आधार पर प्रचार करने से काँग्रेस के विरुद्ध और लीग के

पक्ष में काफ़ी असर हुआ। मुस्लिम लीग ने भी युद्ध काल में एक विशेष रूख अख़्तियार किया। इसका वर्णन हम आगे करेंगे।

वामपक्षी दलों ने, विशेष तौर से कम्युनिस्टपार्टी ने, फ़ौरन साम्राज्यवाद पर हमला करने और इस अवसर से लाभ उठाकर ब्रिटिश हुकूमत को समाप्त कर स्वतन्त्रता प्राप्त करने का नारा बुलन्द किया।

जिस समय युद्ध का एलान हुआ, देश की राजनैतिक परिस्थिति ऐसी ही थी। युद्ध के आरम्भ ने देश की दबी हुई राजनैतिक आग को एकाएक भड़का दिया।

सरकारी तैयारियाँ

'गर्वनमेन्ट आफ़ इण्डियाँ अमेन्डिग ऐक्ट' पालियामेन्ट के अन्दर कुल ११ मिनट में पास हो गया। इस ऐक्ट से वाइसराय को केन्द्रीय ही नहीं, प्रान्तीय सरकारों की कार्यवाही में भी दख़ल देने का अधिकार मिल गया। ३ सितम्बर को ही, 'भारत रक्षा आर्डिनेन्स बन गया जिससे केन्द्रीय सरकार को अधिकार मिल गया कि वह "ऐसे नियम बनावे और लागू करे जिसे वह ब्रिटिश भारत की रक्षा, जनता के बचाव, शान्ति क़ायम रखने, युद्ध कार्य ठीक से संचालित होने के लिये......ज़रूरी समझती है।" उसे सभाओं, अन्य प्रचार के साधनों को रोक देने, बिना वारन्ट के गिरफ़्तारी करने और ानून तोड़ने के जुर्म में आजन्म काले पानी तथा मौत की सज़ा देने तक का अधिकार मिल गया।

११ सितम्बर को सम्राट ने भारत को एक सन्देश दिया जिसमें उन्होंने कहा कि, "इस संघर्ष में, जिसमें मैं और मेरी जनता अब

शामिल हैं, हम इस आम ख़तरे के सामने भारत की प्रत्येक जाति की सहानुभूति और सहयोग पर भरोसा कर सकते हैं।" उसी समय एलान किया गया कि 'फ़ेडरेशन की सारी तैयारियाँ रोक दी जायेंगी'।

काँग्रेस का रुख़

१४ सितम्बर १९३९ को काँग्रेस वर्किंग कमेटी ने युद्ध के ऊपर अपना लम्बा वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उसने युद्ध सम्बन्धी नीति में ब्रिटिश सरकार से अपना विरोध प्रगट किया और कहा:—

"सरकार ने भारत को युद्ध में शामिल देश मान लिया, आर्डिनेन्स लागू कर दिये, 'गवर्नमेन्ट-आफ़ इण्डिया बिल' पास कर दिया और ऐसे-ऐसे काम किये जिनका जनता के ऊपर गहरा असर पड़ा। उसने सूबा सरकारों के अधिकारों और कामों पर प्रतिबन्ध लगा दिये। यह सब जनता की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ किया गया। वर्किंग कमेटी इन बातों को गम्भीरता पूर्वक देखती है।"

जहाँ तक ब्रिटिश सरकार के इस दावे का सम्बन्ध था कि वह प्रजातन्त्र के लिये लड़ रही है, काँग्रेस ने एलान किया:—

"कमेटी जानती है कि ग्रेट ब्रिटेन और फ्राँस ने एलान किया है कि वे प्रजातन्त्र और आज़ादी के लिये लड़ रहे हैं, लेकिन पिछले सालों का इतिहास ऐसे प्रमाणों से भरा पड़ा है जिनमें कहे हुये शब्दों; एलान किये हुये आदेशों और छिपे हुये मन्तव्यों में अन्तर रहा है। पिछली लड़ाई में एलान किये हुये मन्तव्यों में प्रजातन्त्र की रक्षा, आत्म निर्णय और तमाम छोटे राष्ट्रों की आज़ादी भी शामिल थी। यह कह कर भी कि वे देशों को जीतना नहीं चाहते, इन्हीं विजयी शक्तियों ने गुलाम देश बनाये

और उपनिवेशों की संख्या बढ़ाई। वर्तमान योरोपीय युद्ध स्वयं वर्साई सन्धि और उसके बनाने वालों की घृणित असफलता का प्रमाण है। इन्हीं लोगों ने अपने वायदों को तोड़ा और हारे हुये देशों पर साम्राज्यवादी शान्ति लाद दी।"

इसलिये कॉंग्रेस ने आगे कहा:—

"हिन्दुस्तानियों को आत्म-निर्णय का अधिकार मिलना चाहिये, जिससे वे बिना किसी बाहरी शक्ति के दखल के, विधान-निर्मातृ परिषद के द्वारा, अपना शासन विधान बना सकें और अपनी नीति चला सकें।...वर्किंग कमेटी ब्रिटिश सरकार को दावत देती है कि वह साफ़ शब्दों में बतावे कि जहाँ तक प्रजातन्त्र और साम्राज्यवाद का सम्बन्ध है, जहाँ तक संसार के लिये नये ज़माने का सम्बन्ध है, उसके 'युद्ध-मन्तव्य' क्या हैं।"

सरकारी उत्तर नकारात्मक और निराशा जनक ही रहा। सरकार ने अपने पुराने वायदे फिर दोहराये। कॉंग्रेस ने बार बार समझौते का हाथ बढ़ाया था, लेकिन असफलता ही उसके पल्ले पड़ी। इधर देश की प्रगतिशील शक्तियाँ संघर्ष के लिये उतावली हो रही थीं। इसी समय बम्बई के ९०,००० मज़दूरों ने राजनैतिक आम हड़ताल की और कामगार मैदान की सभा में एलान किया कि "वह अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर वर्ग और संसार की उस जनता के साथ एका ज़ाहिर करती है जिसे साम्राज्यवादी शक्तियों ने जबरन् युद्ध में ढकेल दिया है।" सभाने इस युद्ध को अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिकवर्ग के लिये चुनौती रूप समझा "इस मानवता विरोधी साम्राज्य वादी षणयन्त्र को ख़त्म करना ही संसार भर की जनता और मज़दूरों का कर्तव्य बताया।"

भारतीय जनता की यह कठोर चुनौती ब्रिटिश साम्राज्य वाद के लिये थी, क्योंकि भारत की ग़ुलामी उस अन्तर्राष्ट्रीय ग़ुलामी का ही एक हिस्सा है जिसे क़ायम रखने के लिये ऐसे भयानक युद्ध चलाये जाते हैं। भारत की आज़ादी वह सुदृढ़ नींव थी जिस पर संसार भर के देशों की आज़ादी की इमारत खड़ी हो सकती थी। इस तरह समय की इस माँग ने, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता के भेद को मिटा दिया। भारतीय जनता की आज़ादी का सवाल संसार भर की स्वतन्त्रा प्रिय जनता का सवाल बन गया, जिसने न मानकर अथवा जिसकी चुनौती स्वीकार करने से मुँह चुराकर ब्रिटिश शासन सत्ता ने अपनी नीति और मन्तव्यों के खोखलेपन को प्रमाणित कर दिया।

इसी बीच कुछ और घटनायें हुईं। जैसा कि हम कह चुके हैं, वर्किंग कमेटी ने युद्ध-विरोधी नीति अपनाई और उसने प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों को आदेश दिया कि वे अपने इस्तीफ़े दाख़िल कर दें। शीघ्र ही एक एक करके सारे काँग्रेसी मन्त्रि मण्डलों ने इस्तीफ़े दे दिये। युक्त-प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी ने एक युद्ध समिति भी बनाई और वालंटियरों की भर्ती भी शुरू हो गई।

काँग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के इस्तीफ़ों से, मन्त्रिमण्डलों के विरुद्ध जनता का बढ़ता हुआ लोभ रुक गया, काँग्रेसी कार्यकर्ताओं में फिर से कर्मठता और त्याग की भावना आने लगी; लोगों को यह विश्वास होने लगा कि अब किसी न किसी प्रकार का संघर्ष अवश्य छिड़ेगा।

उधर मुस्लिम लीग ने काँग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के इस्तीफ़ों पर ख़ुशी मनाई। सारे देश में २२ दिसम्बर को 'मुक्ति-दिवस' मनाया गया। इन सभाओं में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के ख़त्म हो जाने पर आनन्द का प्रदर्शन किया गया। लेकिन, इसी प्रदर्शन ने आगे आने वाले दिनों में काँग्रेस और लीग के आपसी सम्बन्ध को बहुत कड़ुवा कर दिया जिसका फल हमारा देश अब तक भुगत रहा है।

मुक्ति दिवस

मुस्लिम लीग का ऐसा रुख़ क्यों हुआ? इसके उत्तर में बहुत सी बातें कही जा सकती हैं। १९३६ का साल काँग्रेस और लीग दोनों के लिये महत्वपूर्ण था। इसी साल पंडित जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में काँग्रेस की रूपरेखा में अन्तर आया और उसे साम्राज्य-वाद विरोधी संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा का रूप मिला। पं० नेहरू का लखनऊ काँग्रेस का भाषण और बाद के उनके वक्तव्य इसके प्रमाण में उधृत किये जा सकते हैं। इसी ज़माने से सभी वामपक्षी पार्टियाँ भी उभरीं। विद्यार्थी सङ्घ, मज़दूर सभा और किसान सभाओं का उदय और उनकी उन्नति हुई। मन्त्रिमण्डलों के ज़माने में इन्हीं संस्थाओं के द्वारा जनता ने शक्ति-सञ्चय किया; और इसी ज़माने में मुस्लिम लीग ने अपने लखनऊ वाले अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता (Full Independence) का प्रस्ताव पास किया। इसके पहिले मुस्लिम लीग एक मृतप्राय संस्था सी रह रही थी। लेकिन इस अधिवेशन से उसमें फिर से जान आनी शुरू हुई।

चुनावों में मुस्लिम लीग और काँग्रेस ने आपस में समझौता कर लिया और दोनों ने मिलकर चुनाव की लड़ाई लड़ी। लेकिन

चुनाव का जब नतीजा निकला तो काँग्रेस का बहुमत बहुत बड़ा हो गया और काँग्रेस संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनाने के अपने वायदे से मुकर गई। इससे मुस्लिम लीग वालों को बड़ा धक्का लगा और मुस्लिम लीग के भीतर काँग्रेस के समर्थकों का हाथ कमजोर पड़ने लगा। साथ ही, मुस्लिम लीग और काँग्रेस में अनबन भी हो गई। धीरे धीरे, इसी अनबन ने और अधिक कटुता पैदा की, देश भर में दंगे फ़साद हुये और लीग ने पीरपुर कमेटी रिपोर्ट शाया की। मन्त्रिमण्डल ने जब इस्तीफ़े दिये तो मुक्ति-दिवस मनाया गया। आपस में मनमुटाव, ईर्ष्या, द्वेष, झूठे मद और मोल-तोल ने मुस्लिम-लीग और काँग्रेस के समझौते को असम्भव कर दिया। बीच बीच दर्जनों बार समझौते के प्रयत्न हुये परन्तु वे सब प्रयत्न एक के बाद एक असफल होते रहे। नतीजे में एक दूसरे के प्रति अविश्वास भी बढ़ता रहा।

पाकिस्तान की माँग

मार्च १९४० में, लाहौर अधिवेशन में, मुस्लिम लीग ने अपना ध्येय बताया :—"इस देश में ऐसा कोई विधान कार्यान्वित नहीं हो सकेगा, अथवा, मुसलमानों को स्वीकृत नहीं होगा जिसमें निम्नलिखित बुनियादी सिद्धान्त—भौगोलिक आधार पर आपस में बिलकुल अविभाज्य इकाइयों के खण्ड बना दिये जाँय, जिनका विधान ऐसा हो और जो इस प्रकार के पुनर्वितरण के आधार पर बने हों, जिससे कि जिन क्षेत्रों में मुसलमान संख्या की दृष्टि से बहुमत में हों, यानी, भारत के उत्तर पश्चिम और पूर्वी खित्ते—वे आपस में मिल कर स्वतन्त्र 'स्टेट'

बन सके, ऐसा राज्य जिसमें शामिल होने वाली इकाइयाँ स्वतन्त्र और स्वाधिकार पूर्ण हो, स्वीकृत न किया गया हो।

"यह कि इन इकाइयों के भीतर बसने वाली अल्प-सख्यक जातियों को ऐसे सरक्षण दिये जाँय जिनसे उनके धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा शासन सम्बन्धी अधिकारों और हितों की रक्षा के सम्बन्ध मे उनसे राय लेकर प्रबन्ध हो......!"

मुस्लिम लीग का यही ध्येय बाद में जाकर 'पाकिस्तान' कहलाया। इसी जमाने से 'पाकिस्तान' का नारा ज़ोरों से सुनाई पड़ने लगा। पाकिस्तान की विवेचना करने पर अनेकों प्रश्न उठते हैं जिनका वैज्ञानिक और संतोप जनक उत्तर लीग के नेता आज तक नहीं दे पाये हैं। पिछले वर्षों मे मि० जिन्ना और उनके सहयोगियों ने इस विपय पर प्रकाश डालने की बार बार कोशिश की। पाकिस्तान को मुसलमानों का जन्म सिद्ध अधिकार, अन्तिम ध्येय, सर्वोच्च आदर्शों की पूर्ति, मुस्लिम जनता का अन्यतम लक्ष्य आदि आदि कहा गया। इस पाकिस्तानी कल्पना को साकार और वैज्ञानिक रूप-रेखा प्रदान करने की भी कोशिश की गई, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि अभी तक पाकिस्तान के समर्थक राजनैतिक शब्दावली में यह बताने मे सर्वथा असफल रहे हैं कि सचमुच उनका मन्तव्य क्या है।

फिर भी पिछले सालों की मुस्लिम राजनीति इसी माँग के चारो ओर घूमती रही हैं। इस प्रस्ताव को पास कर लेने के बाद मुस्लिम जनता में यह भी प्रचार किया गया कि अब लीग ही मुसल-मानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था है, वह उनकी सारी महत्वा-

काँक्षाओं का प्रतीक है। इसी नारे के आधार पर संगठन का काम भी शुरू हुआ और धीरे धीरे मुस्लिम जनता अधिक से अधिक तायदाद में मुस्लिम लीग में शामिल होती गई। मि० जिन्ना का यह दावा कि वह बहुसंख्यक भारतीय मुसलमानों के प्रतिनिधि हैं सही साबित हो चुकी है और स्वयं कॉंग्रेस भी मुस्लिम लीग के इस दावे को स्वीकार कर चुकी है।

लीग, कॉंग्रेस और सरकार

जैसा कि हमने कहा है, युद्ध के मन्तव्यों के बारे में कॉंग्रेस ने सरकार से पूछ ताछ की और सरकार ने हमेशा टालमटोल की। लीग ने भी सरकार से यही सवाल पूछा। उसे भी निराश होना पड़ा। सरकार की ओर से पार्लियामेन्ट में भी वक्तव्य दिया गया, भारतमन्त्री और वाइसराय ने भी वक्तव्य दिये और दोनों संस्थाओं के प्रतिनिधियों को मिला कर वाइसराय की कौंसिल बनाने का प्रस्ताव सामने आया। लेकिन यह प्रयत्न भी असफल रहा।

उधर अहिंसा के प्रश्न पर गाँधी जी की बात वर्किंग कमेटी ने नहीं मानी और गाँधी जी भी चुपचाप अलग होकर बैठ गये। इस प्रकार ज़िच में पड़ कर राजनैतिक प्रगति की धारा बिल्कुल रुक गई। सरकार की ओर से भी पेशक़दमी नहीं हुई।

वर्किंग कमेटी ने परिस्थिति पर ग़ौर कर यह निश्चय किया कि कॉंग्रेस के मन्तव्यों को पूरा करने के लिये संघर्ष छेड़ना आवश्यक हो गया है। वामपक्षियों का अनवरत प्रचार, उनकी गिरफ़्तारी

और नज़रबन्दी, आर्डिनेन्सों के ज़ुल्म, सबने मिलकर नेतृत्व को कुछ न कुछ करने के लिये मजबूर किया ।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

गाँधी जी को फिर मैदान में आना पड़ा और नवम्बर महीने में (१९४०) यह निश्चय हुआ शासन सत्ता की दुर्नीति के विरुद्ध, राष्ट्र के स्वाभिमान की रक्षा के लिये, व्यक्तिगत सत्याग्रह किया जाय । इस सत्याग्रह को सर्वथा संयत, सीमित तथा प्रतीकात्मक रखने का पूरा प्रयत्न किया गया । जिस समय श्री विनोवा भावे ने प्रथम सत्याग्रही के रूप में सत्याग्रह किया, देश ने उसे गम्भीरता पूर्वक नहीं लिया । बाद में धीरे-धीरे सत्याग्रहियों की संख्या बढ़ने लगी और ऐसा भी अवसर आया जब कि मजबूर होकर गाँधी जी को ऐसे नियम बनाने पड़े और ऐसी सख्ती बरतनी पड़ी जिससे सत्याग्रहियों की यह बाढ़ रोकी—थामी जा सके । और, अन्त में सरकार ने भी जब यह देख लिया कि ये सत्याग्रही बिल्कुल निर्दोष और मासूम हैं तो उसने भी उन्हें गिरफ़ार करना बन्द कर दिया ।

नीति परिवर्तन

३० दिसम्बर १९४१ के बारदोली प्रस्ताव में एलान किया गया कि यह सत्याग्रह वापस ले लिया गया और कहा गया कि:—

"हालाँकि, भारत के सम्बन्ध में ब्रिटेन की नीति में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है फिर भी वर्किंग कमेटी को इस नई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर जिसमें कि यह युद्ध संसार व्यापी हो गया और भारत के छोरों तक पहुँच रहा है ग़ौर करना पड़ा है । काँग्रेस की सहानुभूति निश्चय ही उन लोगों

के साथ है जो हमले के शिकार हैं और जो अपनी आज़ादी के लिये लड़ रहे हैं।"

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी लखनऊ में प्रेस के सामने बयान देते हुये (८ दिसम्बर १९४१) कहा था:—

"...मैं सोचता हूँ कि जिस तरह की गुटबन्दी हुई है उसे ध्यान में रखते हुये, इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसार की प्रगतिशील शक्तियाँ उस दल के साथ हैं जिनका प्रतिनिधित्व रूस, चीन, अमेरिका और इंगलैण्ड कर रहे हैं।"

यहाँ यह याद रखने की बात है कि युद्ध छिड़ते ही (२३ सितम्बर, १९३९) महात्मा गाँधी ने ब्रिटेन की मदद बिना किसी शर्त के करने के लिये कहा था। लेकिन काँग्रेस नेतृत्व ने उनकी यह बात नहीं मानी थी।

सवाल उठता है कि इस समय अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष और परिस्थिति में कौन-सा ऐसा परिवर्तन हुआ जिसके कारण उसके सम्बन्ध में काँग्रेस को मौलिक रूप से नये दृष्टि कोण और नीति का अनुसरण करना पड़ा? उस समय अन्तर्राष्ट्रीय रंग मंच पर क्या हो रहा था?

पूरब में, जापान चीन को चारों ओर से घेर चुका था। परवश परंतु लड़ाकू चीन आत्म रक्षा के अनथक प्रयास में अपनी सारी शक्ति लगाकर प्राण-पण से जुटा हुआ था। सिंगापूर, मलाया, बर्मा सभी जापानी बूटों के नीचे रौंदे जा रहे थे। तोजो की सेनायें आगे बढ़ती जा रही थीं और उनका मुक़ाबला करने वाली मित्र सेनायें नियम पूर्वक वापस भागती जा रही थीं। लगता था केवल कुछ ही

दिनों अथवा महीनों में जापानी सेनायें भारतीय सीमा के भीतर घुस आयेंगी।

पश्चिम में—२२ जून १९४१ को हिटलर ने एकाएक रूस पर हमला कर दिया और जर्मन सेनायें तीर की तरह रूसी नगरों, ज़िलों और प्रान्तों को तहस-नहस करतीं, जलातीं, बरबाद करतीं आगे बढ़ी जा रही थीं। रूसी फ़ौजें स्वरक्षा का हर सम्भव प्रयत्न कर रही थीं; परन्तु कुछ महीनों तक जर्मन सेनायें इतनी तीव्रगति और प्रबलवेग से आगे बढ़ती गईं कि संसार भर के प्रगतिशील लोगों का दिल दहल गया। यद्यपि सभी के हृदय में यह विश्वास पक्का था कि समाजवादी रूस अजेय है और हिटलरी सेनायें उसे अन्ततोगत्वा परतन्त्र न बना सकेंगी, फिर भी, प्रजातन्त्रवादी विश्वमानवता की चिन्ता अत्यधिक बढ़ गई थी। हिटलर ने एलान किया था कि शीघ्र ही उसकी सेनायें तेहरान होती हुई दिल्ली पहुँचेंगी और तोजो की सेनाओं से वहीं भेंट करेंगी। यद्यपि, रूसी स्वरक्षक लाल सेना ने हर क़दम पर हिटलरी सेना का जुटकर सामना किया और कई बार उनकी कमर तोड़ दी, फिर भी इस संघर्ष के असमंजस और अनिश्चयता ने जनता के सब्र को निश्चय ही समाप्त होने की सीमा तक पहुँचा दिया था।

सारे संसार के प्रगतिशील लोगों ने चीन और उसके साथ सहानुभूति प्रकट की। हिन्दुस्तान में 'चीन-सोवियत-मित्र संघ' की शाखाओं के जाल बिछ गये। देश के सभी महान विज्ञान वेत्ताओं, दार्शनिकों, साहित्यकारों, कवियों, राजनैतिक विचारकों और विद्वानों ने अपनी हार्दिक कामना प्रकट की कि चीन और रूस इस अग्नि-

परीक्षा में उत्तीर्ण हों। हमारे प्रान्त के वयोवृद्ध नेता श्रद्धेय टन्डन जी ने एक आम सभा में, कहा "मैं बूढ़ा और अशक्त हूँ। बन्दूक़ का भारी बोझ मैं नहीं उठा सकता। लेकिन अगर मौक़ा मिले तो मैं रूस जाकर वहाँ की गलियों में झाड़ू लगाने के लिये तैयार हूँ।"

इतना ही नहीं, टन्डन जी और उनके साथ ही अनेक नेताओं ने रूस यात्रा के लिये पासपोर्ट की भी कोशिश की, लेकिन नौकर शाही ने उन्हें इजाज़त देना उचित नहीं समझा।

यही भूमिका थी, यही पृष्ठभूमि थी, जिसने कांग्रेस वर्किंग कमेटी को नीति परिवर्तन के लिये मजबूर किया। व्यक्तिगत सत्याग्रह की असफलता, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति की ख़राबी, प्रगतिशील विश्व जनता के साथ सक्रिय सहानुभूति की कामना और अपनी परम्परागत उदाराशयता ने वर्किंग कमेटी को इस बात पर आमादा किया कि वह व्यक्तिगत सत्याग्रह को रोककर नई परिस्थिति से मेल खाने वाली नई नीति का अनुसरण करे। इसी लिये ३० दिसम्बर १९४१ वाला बारदोली प्रस्ताव पास हुआ।

देश की आन्तरिक राजनैतिक अवस्था भी बदलती जा रही थी। युद्ध के आरम्भ से ही हमारे देश पर निरंकुश शासन हो रहा था। जितने भी वामपक्षी कार्यकर्ता थे वे बीन-बीन कर नज़र बन्द कर लिये गये और उन्हें दिवली तथा हिजली कैम्प में फ़ौजी देख रेख में रख दिया गया। इस प्रकार गिरफ़्तार होने वाले लोगों में सबसे बड़ी संख्या कम्युनिस्टों की थी। उन्होंने ही "न एक पाई, न एक भाई" का नारा दिया था और वे ही जगह-जगह युद्ध-विरोधी हड़तालों और प्रदर्शनों का संगठन कर रहे थे। विद्यार्थियों

ने भी इस अवसर पर युद्ध विरोधी नारा दिया और उनके अनेक नेता नज़रबन्द कर लिये गये। ५ मिनट के युद्ध-विरोधी भाषण के लिये कानपुर के मज़दूर चचा जानमुहम्मद जैसे ५५ बरस के बूढ़े को फाँसी की सज़ा दी गई। यह सज़ा बाद में घटा कर आजन्म काले पानी की कर दी गई थी।

जिस समय काँग्रेस का ३० दिसम्बर १९४१ वाला प्रस्ताव पास हुआ, काँग्रेस के लगभग सभी कार्यकर्ता जेलों से छूट कर बाहर आ चुके थे। जो कुछ बचे बचाये लोग जेलों में रह गये थे वे भी धीरे-धीरे रिहा कर दिये गये। अब जेलों में केवल कम्युनिस्ट, फ़ारवर्डब्लाकी, कुछ काँग्रेस समाजवादी और गिनेचुने युवक कार्य कर्ता ही रह गये थे।

बारदोली प्रस्ताव पास करते समय काँग्रेस वर्किंग कमटी के अन्दर दो तरह के विचारों वाले दल हो गये थे। एक दल का, जिसमें सरदार पटेल, राजेन्द्रबाबू, आचार्य कृपलानी, डा० प्रफुल्ल घोष आदि थे, ख्याल था कि हमें हिटलर अथवा मित्रराष्ट्रों में से किसी के साथ भी सहयोग नहीं करना चाहिये, बल्कि दोनों से असहयोग करना चाहिये। दूसरा दल पं० नेहरू, पं० गोविन्द वल्लभ पन्त, मौलाना आज़ाद मि० आसफ़ अली का था। यह दल मित्र राष्ट्रों की मदद करना चाहता था लेकिन वह कुछ कर नहीं सकता था जब तक कि उसे कुछ करने की आज़ादी न मिले। बारदोली में काफ़ी बहस के बाद दोनों दलों ने मिल कर सर्व सम्मत हो अपना प्रस्ताव पास किया।

इस स्थिति से बृटिश सरकार ने फ़ायदा उठाना चाहा और

उसके प्रतिनिधि स्वरूप सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स दो ढाई महीने बाद हिन्दुस्तान आये। बातचीत चली। लीग और काँग्रेस के नेताओं ने उस बात चीत में हिस्सा लिया। काँग्रेस ने उस समय उन सूबों के लिये आत्म-निर्णय का अधिकार देना स्वीकार कर लिया था जिसमें मुसलमान बहुमत में थे। काँग्रेस ने यह भी कहा था कि, साथ ही, वह तमाम अल्पसंख्यकों को आत्म-निर्णय का अधिकार देने को प्रस्तुत है। ऐतिहासिक दृष्टि से काँग्रेस का यह रुख़ महत्वपूर्ण है। लेकिन क्रिप्स प्रस्ताव को देखने से ऐसा लगता है कि उसमें हिन्दू-मुसलमानों के आपसी भेद बढ़ाने, विभिन्न जातियों के आपसी सम्बन्ध को अधिक ख़राब कर देने तथा सभी जातियों के बीच ऐसी दीवारें खड़ी कर देने की स्कीम थी जिसे स्वीकार करना देश के लिये अहितकर होता।

क्रिप्स-मसौदा

मुस्लिम लीग ने अपने दृष्टिकोण से क्रिप्स मसौदे को देखा, कुछ बातें ठीक लगीं। लेकिन मुस्लिम लीग को यह लगा कि उसमें मुसलमानों को एक अलग पूर्ण राष्ट्र नहीं माना गया है। आत्म-निर्णय की बात को भी ऐसे ढंग से स्वीकार किया गया था जिससे लीग की पाकिस्तानी माँग को धक्का लगता था।

क्रिप्स ने महात्मा गाँधी, पं० नेहरू, मि० जिन्ना, मौलाना आज़ाद, सरदार बलदेव सिंह तथा अन्य दर्जनों नेताओं से बातें कीं। कई बार ऐसा लगा कि समझौता हो जायेगा। एक बार तो समाचार पत्रों में निकल गया कि समझौता हो गया। लेकिन अन्त में समझौता न हो सका। मौलाना आज़ाद और जवाहरलाल जी ने हर मुमकिन

कोशिश की, अपने बहुत से आदर्शों को भी कुछ समय के लिये छोड़ने को तैयार हो गये फिर भी समझौता नहीं हो सका। क्रिप्स को खाली हाथ वापस जाना पड़ा।

क्रिप्स की चालबाज़ियों का पर्दा फ़ाश हो गया। उन्होंने तमाम नेताओं को तरह तरह की आशायें दीं थीं, लीग, काँग्रेस, सिक्ख, सभी प्रतिनिधियों को धोखे में रखा था और अन्त में जब उनकी चाल न चल सकी तो काँग्रेस के सर सारा दोष मढ़ कर वापस चले गये।

क्रिप्स मसौदे को देखते ही गाँधी जी ने कहा था कि, यह मसौदा टूटते हुये बैंक का ऐसा चेक है जिसकी तारीख़ गुज़र चुकी है। वह मसौदा जहाँ का तहाँ धरा रह गया। हिन्दुस्तान की राजनैतिक ज़िच ख़त्म न हो सकी। बृटिश हुकूमत और हिन्दुस्तानियों के बीच की दुर्भावना की खाई और भी अधिक चौड़ी हो गई।

उस समय जापानी सेनायें भारत के पूरबी फाटक की कुण्डी खट खटाने लगीं थीं। दीमापूर, ताम, मनीपूर, मितकीना आदि हिन्दुस्तान की सीमान्त के प्रदेश और कुछ हिन्दुस्तान की सर ज़मीन के हिस्से युद्ध की लपटों में झुलस चुके थे। देश में भयानक महँगी फैली हुई थी। जापानी फ़ौजों ने जिन देशों को जीत लिया था वहाँ के भागे हुये शरणार्थी हिन्दुस्तान में लगातार चले आ रहे थे। देश की जनता ख़ास तौर से पूरबी तट की जनता में बड़ी घबड़ाहट थी और अमन-शान्ति में भी ख़तरा पैदा होने का डर था। ऐसी स्थिति में क्रिप्स-मिशन की असफलता ने अँग्रेज़ी हुकूमत ही नहीं स्वयं भारतवर्ष की स्वरक्षा के लिये भी भयानक ख़तरा पैदा कर दिया।

कॉंग्रेस के सामने इस समय देश की आज़ादी से बढ़कर देश की रक्षा का प्रश्न था। कॉंग्रेस वर्किंग कमेटी ने इसीलिये २९ मार्च से ११ अप्रैल तक लगातार मसविदे के हर पहलू पर ग़ौर किया। उसने हमेशा देश की रक्षा का आदर्श अपने सामने रखा।

भारत-छोड़ो

क्रिप्स प्रस्ताव की असफलता के बाद गाँधी जी के धीरज की बाँध टूट गई। उन्होंने अनेकों लेख 'हरिजन' में लिखे और नारा दिया "अँग्रेज़ो, भारत छोड़ो!"

भारत-छोड़ो का यह नारा अब सारे देश का नारा हो चुका है। १८ जनवरी १९४२ में गाँधी जी ने कहा था :—

"मैं ब्रिटेन का शत्रु नहीं हूँ। मैं ब्रिटेन की बुराई नहीं चाहता...मेरे हृदय में जर्मनों, जापानियों, इटली वालों के लिये भी बुराई नहीं है। रूस के लिये हमारे दिल में बुराई हो ही नहीं सकती। वहाँ के लोगों ने सर्वहारा के लिये महान कार्य किये हैं। चीन वालों का क्या कहना है? उनकी हमारी हालत तो एक ही जैसी है।

"यह समझना बहुत बड़ी ग़लती होगी कि हमला करने वाले लोग कभी लाभ पहुँचाने वाले भी साबित हो सकते हैं। जापानी अँग्रेज़ों से तो हिन्दुस्तान को आज़ाद कर सकते हैं, लेकिन ऐसा करके वे स्वयं यहाँ जम जायेंगे। मैंने हमेशा कहा है कि हिन्दुस्तान को अँग्रेज़ी जुये से आज़ाद करने के लिये हमें किसी दूसरी शक्ति का सहारा नहीं लेना चाहिये।"

गाँधी जी ने आगे चलकर प्रत्येक अँग्रेज़ से अपील की जिसमें आपने कहा :—

"मैं प्रत्येक इँगलैण्ड निवासी से माँग करता हूँ कि वह अँग्रेज़ों से मेरी इस मांग का समर्थन करे कि वे तमाम एशियाई, अफ्रीकी मुल्कों और कम से कम हिन्दुस्तान से इसी घड़ी चले जाँय।......अब तक शासकों की ओर से कहा गया है कि वे .खुशी-.खुशी वापस जाने को तैयार हैं लेकिन उन्हें यह नहीं पता चलता कि वे शासन-सूत्र किसके हाँथो में सुपुर्द करें। मेरा जवाब है 'भारतवर्ष को भगवान के भरोसे छोड़ दो।"

हिन्दू-मुस्लिम एकता के सम्बन्ध में गाँधी जी ने कहा :—

"मेरा पक्का विश्वास है कि जब तक तीसरी शक्ति यहाँ रहेगी एकता सम्भव नहीं है। इस तीसरी शक्ति ने हमारे बीच बनावटी फूट डाल।दी है। वह इस फूट को पाल-पोस रही है। जब तक यह शक्ति यहाँ बनी रहेगी हिन्दू और मुसलमान इसी की ओर अपनी आँखें लगाये रहेंगे।"

अपनी 'भारत छोड़ो' माँग के बारे में गाँधी जी कहते हैं :—

"इसकी सुन्दरता और आवश्यकता इसी बात में है कि यह काम फ़ौरन हो। हम दोनों इस समय आग की लपटों के बीच हैं। अगर वे चले जाँय तो इस बात की सम्भावना है कि हम दोनो बच जाँय। अगर वे नहीं जाते तो भगवान जाने क्या होगा।......हो सकता है कि उनके चले जाने से आपसी एकता क़ायम हो जाय। यह भी हो सकता है कि सारे देश में बदअमनी फैल जाय। यह भी खतरा है कि कोई दूसरी शक्ति इस मौक़े से लाभ उठावे और रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये प्रयत्न शील हो। फिर भी अगर अँगरेज़ शान्ति पूर्वक, स्वेच्छा से चले जाँय तो इससे उनका नैतिक स्तर ही अधिक ऊँचा न होगा, उनको एक विशाल राष्ट्र का स्वेच्छा पूर्ण साहाय्य भी प्राप्त हो जायेगा।

"...मैं कहा करता था कि मेरा नैतिक समर्थन बिल्कुल अँगरेज़ को है। मुझे यह स्वीकार करते हुये दुख होता है कि मेरा मस्तिष्क अब उन्हें वह समर्थन देने को तैयार नहीं है। भारत के प्रति अँगरेज़ों के व्यवहार ने मुझे बहुत दुख दिया है। मैं एमरी साहब की कलाबाज़ियां के लिये तैयार न था, न सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स के मिशन के लिये। मेरे अनुसार इन चीज़ों ने अँगरेज़ों को नैतिक दृष्टि से आपदपूर्ण स्थिति में डाल दिया है।"

ऊपर हमने कुछ लम्बे उद्धरण इसलिये दिये हैं जिससे गाँधी जी के मस्तिष्क की दशा का कुछ अन्दाज हमें लग जाय।

इलाहाबाद की बैटक

इधर २७ अप्रैल को इलाहाबाद में काँग्रेस वर्किंग कमेटी और ए० आई० सी० सी० की बैठक शुरू हुई। बैठक १ मई तक चलती रही। साथ ही २९—३० अप्रैल और १-२ मई को आल इण्डिया काँग्रेस कमेटी का इजलास भी हुआ। यह इजलास ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हुआ है। गाँधी जी इस इजलास में शामिल नहीं हुये। उन्होंने मीराबेन के हाथ एक मसविदा वर्किंग कमेटी के पास भेजा था।

इलाहाबाद में वर्किंग कमेटी और ए० आई० सी० सी० ने तीन बातों पर विशेष ध्यान दिया (१) जहाँ तक युद्ध का सम्बन्ध है, उन्होंने निश्चय किया कि वे उसमें किसी प्रकार भी बाधा नहीं पहुँचायेंगे, परन्तु, उसमें साथ भी नहीं देंगे। यह भी निश्चय किया कि अगर जापानी सेनायें भारत की सीमा के भीतर घुस आईं तो वे उनके साथ शान्तिमय असहयोग का एलान करेंगे। हिन्दुस्तानी किसी भी प्रकार जापानियों के सामने घुटने नहीं टेकेंगे। यह भी

निश्चय हुआ कि ए० आर० पी० तथा इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं से साथ पूरा सहयोग किया जाय। आत्म-रक्षा और स्वावलम्बन के कार्यक्रम को फ़ौरन अखिल भारतीय स्तर पर संगठित किया जाय। इस प्रकार देश की नैतिक शक्ति को बनाये रखा जाय। इस प्रोग्राम में स्वयं सेवक दल को संगठित करना, खादी तथा अन्य आवश्यक पदार्थों को पैदा करना, ग़ल्ले आदि के उत्पादन तथा वितरण का प्रबन्ध करना इत्यादि शामिल था। इस प्रोग्राम को पूरा करने के लिये महिलाओं को भी संगठित करने का निश्चय हुआ।

(२) जहाँ तक मुस्लिम लीग का सम्बन्ध है, बा० जगतनारायण लाल का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इस प्रस्ताव के अनुसार काँग्रेस ने यह निश्चय किया कि वह अब कभी भी मुस्लिम लीग के दरवाज़े पर समझौते के लिये नहीं जायेगी। राजा जी का प्रस्ताव ऐसा था कि जिसमें पाकिस्तान सम्बन्धी माँग को 'छोटी बुराई' की तरह स्वीकार कर एकता के आधार पर राष्ट्रीय सरकार क़ायम करने और जापानी हमले वाली 'बड़ी बुराई' का सामना करने की बात कही गई थी। लेकिन पं० नेहरू जैसे व्यक्तियों ने भी उसका विरोध किया। बाबू जगत नरायण लाल का प्रस्ताव एकता सम्बन्धी बात चीत के लिये हानिकर हुआ, उसे केवल चन्द हफ़्तों के बाद ही समाप्त भी कर दिया गया। लेकिन इस प्रस्ताव ने जिन्ना साहब को यह कहने का मौक़ा दे दिया कि चूँकि काँग्रेस ने अपना दरवाज़ा बन्द कर लिया इसलिये समझौते की कोई गुंजायश नहीं है।

यह प्रस्ताव उस समय पास हुआ जब कि, जैसा कि हम कह चुके हैं, देश को क़ौमी एकता के आधार पर बनी क़ौमी सरकार की

अत्यन्त आवश्यकता थी। इतना ही नहीं, भारत से लौट कर क्रिप्स और दूसरे अँग्रेज़ी लीडरों ने काँग्रेस के खिलाफ़ ज़हर उगलना और उनको प्रजातन्त्र विरोधी तथा फ़ासिस्टवाद का समर्थक कहना शुरू कर दिया था। साथ ही, देश के भीतर भी तरह तरह के ज़ुल्म, ज़्यादतियाँ, धर पकड़ भी शुरू हो गई थीं।

परिस्थिति इतनी गंभीर थी और स्वयं नेताओं के अन्दर शासकों के झूठे प्रचार और हरकतों से इस क़दर बेचैनी फैल रही थी कि उनके लिये भी संयत और तर्कशील होना कठिन हो रहा था। पं० जवाहर लाल नेहरू ने इसीलिये १२ अप्रैल को एक प्रेस कान्फ्रेन्स में कहा था :—

"देश के सामने सवाल इतने गम्भीर हैं कि कोई भी ज़िम्मेदार आदमी इस समय केवल कटुता की ही बात नहीं सोच सकता। इस समय कटु होने से काम नहीं चलेगा। क्योंकि कटु होने से दिमाग़ ठीक से काम नहीं करता और इससे संकट काल में सही फ़ैसला लेने में दिक़्क़त होती है।

१३ अप्रैल को पं० नेहरू ने देश के सामने ख़तरे की बात करते हुए कहा :—

"यह हमारा फ़र्ज़ है, यह प्रत्येक काँग्रेस वाले का फ़र्ज़ है, यह प्रत्येक व्यक्ति का फ़र्ज़ है कि वह अन्तिम सीमा तक स्वरक्षा और स्वयं-पूरकता के प्रोग्राम को पूरा करे। हो सकता है कि हमें छापे मार लड़ाई लड़नी पड़े। मैं नहीं जानता कि काँग्रेस क्या निश्चय करेगी। लेकिन यही एक ज़मीन है और यही एक संगठन है जिसे हम बनाने जा रहे हैं, और, जो अन्त में मौजूदा परिस्थिति का सामना करने में हमें सहायता देगी।

मेरी आपसे सलाह है :—हार मत मानो, हथियार मत डालो, रसद मत पहुँचने दो, हमलावरों से असहयोग करो, उन्हें हर तरह से परेशान करो। फ़ौजें लड़ाई का काम करेंगी।"

स्वयं राजा जी इसी दृष्टिकोण से सोचते थे और इसीलिये उन्होंने मद्रास सूबे में फिर से मन्त्रिमण्डल बनाने की इजाज़त चाही थी जो कि उन्हें नहीं मिली। इसी जापानी 'बड़े ख़तरे' का मुक़ाबिला करने के लिये वे किसी भी क़ीमत पर राष्ट्रीय सरकार बनाने की माँग कर रहे थे।

(३) (अ) काँग्रेस वर्किंग कमेटी और ए० आई० सी० सी० में दो प्रकार के विचारों के लोग थे। राजा जी और उनके साथ के लोगों ने साफ़ साफ़ यह चाहा कि काम चलाऊ राष्ट्रीय सरकार केन्द्र में बन जाय। इसी प्रकार का प्रस्ताव उन्होंने मद्रास असेम्बली में पास भी किया। लेकिन राष्ट्रपति आज़ाद के अनुसार राजा जी का यह काम काँग्रेस की खुली नीति के विरुद्ध था। राजा जी इलाहाबाद आये थे और ए० आई० सी० सी० की बैठक में शामिल भी हुये थे। उनको कठिन विरोध का सामना पड़ा। नेताओं की अदूरदर्शिता, जल्दबाज़ी और भावुकता के कारण राजा जी को अपमानित होना पड़ा। राजा जी इस परिस्थिति को देख रहे थे, इसलिये ३० अप्रैल १९४२ को ही उन्होने वर्किंग कमेटी की सदस्यता से इस्तीफ़ा दे दिया। इस्तीफ़े वाले अपने पत्र में उन्होंने कहा था:—
"मेरा ख्याल है कि अगर मैं अपने विश्वास के अनुसार लोगों को सोचने और काय करने के लिये न कहूँ धो मैं अपना फ़र्ज़ न पूरा करूँगा।"

(ब) पं० नेहरू, पंत जी, आसफ़ अली आदि ने राजेन्द्र बाबू, सरदार पटेल आदि से समझौता कर लिया। यद्यपि यह दल मुस्लिम लीग से समझौता करके राष्ट्रीय सरकार बनाकर जापान से भिड़ने के पक्ष में था। परन्तु उस समय की लीग की नीति और शासकों की दुर्नीति ने उन्हें मजबूर किया कि वे पटेल गुट के साथ समझौता कर लें। इसलिये अधिवेशन की विशेष तजवीज़ पं० पंत ने रक्खी और राजेन्द्र बाबू ने उसका समर्थन किया। प्रस्ताव बहुत बड़े बहुमत से पास हो गया। सज्जाद ज़हीर तथा डा० अशरफ़ की तरमीम नहीं मानी गई।

इस प्रस्ताव के पास हो जाने के बाद काँग्रेस का रुख़, जहाँ तक ब्रिटिश हुकूमत और मुस्लिम लीग का सम्बन्ध है, कुछ समय के लिये अवश्य ही निश्चित हो गया।

इलाहाबाद अधिवेशन में जो कुछ हुआ उसका मूल्यांकन करने और उसके महत्व को समझने के लिये गाँधी जी के उस प्रस्ताव को देख लेना ज़रूरी है जिसे उन्होंने मीरा बेन के हाथ भेजा था और जिसमें विशेष बातें ये थीं :—

गाँधी जी की चिट्ठी

(१) जापान का झगड़ा हिन्दुस्तान के साथ नहीं है। वह बृटिश साम्राज्य के साथ युद्ध कर रहा है।

(२) अगर हिन्दुस्तान आज़ाद हो जाय तो शायद उसका पहिला क़दम होगा जापान से सुलह की बात चीत करना।

(३) अँग्रेज़ अगर भारत छोड़ दें तो हिन्दुस्तान जापानी अथवा किसी अन्य आक्रमण से अपनी रक्षा कर लेगा।

(४) इसलिये, अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी का मत है कि अँग्रेजों को भारत छोड़ देना चाहिये।

(५) अगर जापान हमला करता है तो हमें अहिन्सात्मक असहयोग के द्वारा उसका विरोध करना चाहिये। हमें उसके सामने घुटने नहीं टेकना चाहिये।

(६) साथ ही, हमें ब्रिटेन की मदद भी सक्रिय रूप से नहीं करनी चाहिये।

(७) अँग्रेज़ चाहते हैं कि हम ग़ुलाम रहकर ही उनकी मदद करें—इस स्थिति को हम कदापि स्वीकार नहीं कर सकते।

(८) दुश्मन के हमले के अवसर पर आग लगा देने वाली नीति को केवल लड़ाई के सामान के साथ लागू करनी चाहिये, ऐसा केवल युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर करना चाहिये।

(९) हिन्दुस्तान में विदेशी सैनिकों का रहना हानिप्रद है। उनको फ़ौरन हिन्दुस्तान के बाहर चला जाना चाहिये।

इलाहाबाद ए० आई० सी० सी० का ज़रूरी नतीजा वर्धा का प्रस्ताव था। उस प्रस्ताव के बारे में में हम आगे बतायेंगे। इस समय हमारे देश में कुछ और भी धारायें चल रही थीं:—

विभिन्न पार्टियों का रुख़

(१) काँग्रेस समाजवादी दल अपना रुख़ निश्चित नहीं कर पा रहा था। समाजवादी होने के नाते उसकी इच्छा यह ज़रूर थी कि अन्तर्राष्ट्रीय जनता के हितों के विरुद्ध कुछ न किया जाय, लेकिन ब्रिटिश हुकूमत की दुर्नीति, मित्र सेनाओं की हार और जापानी सनाओं की जीतने—जहाँ तक उसका सम्बन्ध है—

देश के लिये एक ही रास्ता रहने दिया, वह यह कि शासक जिस समय मुसीबत में फँसे हों, हमें उस मौक़े से लाभ उठाना चाहिये। जिस समय अँग्रेज़ों के पाँव उखड़ रहे हों, हमें हमला बोल देना चाहिये। लेकिन यह दल ज़ोरदार ढंग से अपना असर नहीं डाल सका और पं० नेहरू की भाँति इसने भी काँग्रेस के मुख्य प्रस्ताव ही का समर्थन किया।

(२) फ़ारवर्ड ब्लाक सब से कमज़ोर दल था। इसकी निगाहें साफ़-साफ़ जापान की ओर लगी हुई थीं। जापान की जीत और हिन्दुस्तान की ओर उसका बढ़ाव उसे उत्साहित करता था। उनकी इस मनोवृत्ति की तह में तीन बातें थीं--(अ) उनका विश्वास था कि हिन्दुस्तानी अपने बल पर अँग्रेज़ों को भगा नहीं सकेंगे (ब) अँग्रेज़ों को भगाने के लिये जापानी जीत आवश्यक है (स) इस लिये, जापान की जीत के लिये रास्ता साफ़ करो।

यद्यपि जापान की जीत से उस समय आम .खुशी होती थी, लेकिन पं० नेहरू के शब्दों में "ऐसा इसलिये नहीं होता था कि लोग जापानी जीतों का सचमुच स्वागत करते थे। जापानी जीतों से लोगों को .खुशी इस लिये होती थी कि उसका अर्थ था अँग्रेज़ों की हार।" फ़ारवर्ड ब्लाक के लोग आम जनता की इस मनोदशा से लाभ उठाकर हिन्दुस्तान को आज़ाद करने के लिये जापानी जीतों का स्वागत करते थे।

(३) कम्युनिस्ट पार्टी की नीति बिल्कुल अलग थी। उसके अनुसार रूस पर हिटलर के हमले और जापान की बेगवती विजयों ने युद्ध का रूप बदल दिया। युद्ध साम्राज्यवादी न रह कर जनता का

"संसार भर की जनता के युद्ध में भारतीय जनता के सहयोग का तात्पर्य यह नहीं है कि साम्राज्यवादी सरकार के साथ गुलामों की भाँति सहयोग किया जाय अथवा वह जो कुछ कहे उसे चुप चाप मान लिया जाय। इसका तात्पर्य है प्रजातान्त्रिक अधिकारों और राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिये साम्राज्यवादी सरकार के विरुद्ध संघर्ष करना। यही एक तरीक़ा है जिससे भारतीय जनता अपने युद्ध-प्रयत्नों के रास्ते से साम्राज्यवाद द्वारा रखे गये रोड़ों को हटा सकती है।........विदेशी सरकार से बहस और तर्क नहीं, बल्कि स्वयं अपनी एकता ही हमें साम्राज्य-वाद के ऊपर ऐसी विजय दिलवा सकती है।

"इसलिये अगर इन युद्ध प्रयत्नों को भारतीय राष्ट्र की मर्यादा के योग्य और अनुकूल होना है तो इसका संचालन राष्ट्रीय सरकार द्वारा होना चाहिये, विदेशी सरकार द्वारा नहीं।"

पं० नेहरू ने भी एक वक्तव्य (१२ अप्रैल १९४२) दिया था जिसमें उन्होंने कहा था :—

"बुनियादी सवाल यह नहीं है कि ब्रिटिश सरकार हमारे साथ क्या करती है या हम उसके साथ क्या करते हैं। बुनियादी सवाल है हिन्दुस्तान के लिये खतरा और उस खतरे के सम्बन्ध में हम क्या करने जा रहे हैं। इसलिये, अब तक चाहे जो कुछ भी हो चुका है, हम अँग्रेज़ों के अथवा अमेरिकन दोस्तों के युद्ध-प्रयत्नों में रुकावट डालने नहीं जा रहे हैं।

इस प्रकार थोड़े में १९४२ की गर्मियों में हमारे देश की राज-नैतिक अवस्था यह थी:—(१) काँग्रेस नेतृत्व ब्रिटिश हुकूमत की चालबाज़ियों और निरंकुशता के बावजूद युद्धप्रयत्नों में बाधा नहीं पहुँचाना चाहती थी। वह जापानी आक्रमणकारियों का मुक़ाबिला

राजनैतिक अवस्था

असहयोग द्वारा करना चाहती थी। वह ब्रिटिश सरकार के मन मुताबिक़ गुलामों की हैसियत में रहकर लड़ाई लड़ना नहीं चाहती थी। यद्यपि बाबू जगत नारायण लाल का प्रस्ताव जल्दी जल्दी में आवेश के कारण पास हो गया था फिर भी अगर मुस्लिम लीग चाहे तो वह उससे बात-चीत करने को तैयार थी। वह स्वरक्षा के लिये स्वतंत्र रूप से स्वावलम्बन और स्वयं-पूरकता के आधार पर सारे देश का संगठन कर रही थी।

(२) मुस्लिम लीग अपने आसन पर अडिग बैठी थी और रास्ता देख रही थी कि काँग्रेस और सरकार की ओर से समझौते का हाँथ बढ़े।

(३) गाँधी जी को ब्रिटिश हुकूमत से किसी भी प्रकार की आशा नहीं रह गयी थी। वह 'भारत-छोड़ो' नारा बुलन्द कर रहे थे। उनका मत था कि जब तक अँग्रेज हिन्दुस्तान नहीं छोड़ देते तब तक राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय सरकार और राष्ट्र-रक्षा सभी असम्भव हैं।

(४) काँग्रेस समाजवादी दल का अपना स्वतंत्र दृष्टिकोण नहीं रह गया था। वह पूरी तरह पं० नेहरू के असर में था जिसका अर्थ था काँग्रेस वर्किंग कमेटी के इलाहाबाद वाले प्रस्ताव का अनुमोदन।

(५) फ़ारवर्ड ब्लाक के लोग जापानी जीतों से ख़ुश थे और उसी में उन्हें हिन्दुस्तान की आज़ादी की झलक दिखाई दे रही थी।

(६) कम्युनिस्ट पार्टी का रुख वर्किंग कमेटी से बहुत कुछ मिलता जुलता था। जिस नतीजे पर वर्किंग कमेटी केवल राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से पहुँची थी उसी नतीजे पर कम्युनिस्ट पार्टी अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से पहुँची थी। अन्तर केवल इतना था कि वर्किंग कमेटी बातचीत बढ़ाने के लिये मुस्लिम लीग और सरकार का इन्तज़ार कर रही थी, लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी आत्म-निर्णय के जन्म सिद्ध अधिकार को पूरी तरह मानता देकर लीग से समझौता करने और केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना कर राष्ट्र-रक्षा सम्बन्धी युद्ध को जनहित और स्वतंत्रता के लिये प्रयुक्त करने पर ज़ोर दे रही थी।

(७) जहाँ तक जनता का सम्बन्ध है वह अंग्रेज़ी शासन से बिल्कुल ऊब चुकी थी। उसे यह विश्वास नहीं था कि हिन्दुस्तान अपने बल पर ही आज़ाद हो सकता है। इसीलिये, वह जापान की जीतों पर ख़ुश थी, क्योंकि इससे अंग्रेज़ी सरकार की हार हो रही थी। युद्ध-प्रयत्नों से उसे स्नेह नहीं था, क्योंकि स्वेच्छा से उसे उसमें शामिल नहीं किया गया था—उसे ज़बरदस्ती घसीटा गया था। युद्ध-कालीन आर्थिक कठिनाइयों, भयानक महँगी, आर्डिनेन्सों की निरंकुशता आदि ने उसके हृदय में शासकों के प्रति कटुता भर दी थी। 'कन्धा बदलने' की साधारण मनोवृत्ति उसे जापानी विजयों की ओर अभिमुख किये दे रही थी। अंधकार, निराशा, किंकर्तव्य-विमूढ़ता, असहायावस्था और पराजयवादी मनोवृत्ति ने आत्म विश्वास की मात्रा बहुत घटा दी थी।

(८) जापान इस परिस्थिति से लाभ उठाकर तेज़ क़दम से

आगे बढ़ता आ रहा था। उसकी यह धारणा हो रही थी कि भारत में उसका स्वागत होगा।

(९) एमरी-चिचल और क्रिप्स बार बार नारा लगा रहे थे कि कांग्रेस के नेता फ़ासिस्टवाद के समर्थक हो गये हैं। इस प्रकार वे कोशिश कर रहे थे कि हिन्दुस्तानियों के प्रति जो सद्-भावना विदेशों में है वह समाप्त हो जाय और भारतीय राष्ट्रीयता पर टूट पड़ने का अवसर उन्हें मिल जाय।

(१०) हिन्दुस्तान में, अंग्रेज़ी शासकों ने आर्डिनेन्सों का राज क़ायम कर दिया था। जनसत्तात्मक शक्तियों पर धीरे धीरे रोक लगा कर उन्हें लुञ्ज पुञ्ज कर देने का अभद्र, असामयिक, अनावश्यक और क्रूर प्रयत्न जारी था।

सन् १९४२ की गर्मियों मे हमारे देश की यही अवस्था थी।

१२

युद्ध और भारत (२)

[अगस्त-आन्दोलन और उसके बाद]

[वर्धा से बम्बई—सरकार की तैयारियाँ—८ अगस्त का प्रस्ताव—गांधी जी का भाषण सरकारी हमला—गांधी जी के आदेश जिन्ना और सावरकर की आज्ञा—आन्दोलन का विस्तार गांधी जी का कार्यक्रम—दमन की चक्की—बम्बई और गुजरात बंगाल आसाम और उड़ीसा -महाकोशल —बिहार- संयुक्त प्रान्त आन्दोलन की विशेषता आन्दोलन का अन्त—गाँधी जी का उपवास बंगाल का अकाल—देश व्यापी अन्न-संकट आन्दोलन की समीक्षा ।]

वर्धा में, जुलाई के दूसरे हफ़्ते में, काँग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक हुई। उस समय तक गांधी जी द्वारा खोज निकाले गये 'भारत-छोड़ो' के नारों को प्रतिध्वनियाँ देश के कोने कोने से सुनाई पड़ने लगी थीं। ऐसा लग रहा था कि किसी न किसी प्रकार का संघर्ष चलने वाला है। वर्धा में दो सवाल सामने थे (१) क्या काँग्रेस के पास संघर्ष छेड़ने के अलावा और दूसरा कोई रास्ता नहीं है? (२) अगर काँग्रेस कोई संघर्ष छेड़े तो उसका असर देश और विदेशों में क्या होगा।

हम जानते हैं कि अभी तक पं० नेहरू और उनके साथी आसफ़ अली, पं० पंत आदि 'संघर्ष' छेड़ने की बात नहीं कहते थे। हमेशा वह जापानी हमले के ख़िलाफ़ बचाव का इन्तज़ाम अपने हाथों

में लेने के लिये केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की बात कहा करते थे; लेकिन इलाहाबाद और वर्धा की बैठक के बीच जो समय गुजरा उसमें शासकों के प्रति कटुता चरम सीमा तक पहुँच गई थी। उसकी प्रतिक्रिया इन नेताओं में हुई। वर्धा में इस दल ने संघर्ष के सम्बन्ध में 'हाँ' कह दिया। वर्धा प्रस्ताव (१४ जुलाई, १९४२) में कहा गया :—

"क्रिप्स-प्रस्ताव की असफलता और भारत में बने रहने की अँग्रेजों की स्पष्ट अभिलाषा ने अँग्रेजों के विरुद्ध कटुता को तीव्र गति से अत्यन्त अधिक बढ़ा दिया है। साथ ही, इसने जापानी जीतों के प्रति सन्तोष भी बढ़ा दिया है।...... वर्किंग कमेटी इस बात को बहुत खतरनाक समझती है; अगर इसे रोका न गया तो यह अनिवारणीय रूप से आक्रमण को चुपचाप स्वीकार करा देगी।

"इसलिये वर्किंग कमेटी को प्रसन्नता होगी अगर अँगरेज हमारे अत्यन्त उचित और न्यायपूर्ण प्रस्तावको भारत के हित में ही नहीं वरन् ब्रिटेन और स्वतन्त्रता के उस आदर्श की रक्षा के लिये भी, जिसे संयुक्त राष्ट्रों ने अपना ध्येय बनाया है, स्वीकार कर लेंगे।"

यह भी कहा गया कि अगर इस प्रस्ताव के बाद भी समझौता नहीं हो पाया तो काँग्रेस को मजबूर होकर सार्वदेशिक अहिंसात्मक आन्दोलन चलाना पड़ेगा। परन्तु :—

"यद्यपि काँग्रेस अपने आदर्शों की प्राप्ति के लिये बेताब है, फिर भी वह जल्दबाज़ी नहीं करना चाहती, बल्कि इस बात से बचना चाहती है कि कहीं उसके किसी क़दम से संयुक्त राष्ट्रों की परेशानी न बढ़ जाय।"

उसी दिन गाँधी जी ने युनाइटेड प्रेस आफ़ इण्डिया से मुला-

क़ात में कहा कि वह स्वतन्त्र भारत को हथियार इस्तेमाल करने से नहीं रोकेंगे क्योंकि ऐसा करना अनुचित होगा। एक बार भारत की आज़ादी मान ली जाय तो ब्रिटेन के प्रति कटुता सद्भावना में बदल जायेगी। अँग्रेज़ों के लिये यह अत्यन्त श्रेयस्कर होगा। इस प्रस्ताव के बाद ही राष्ट्रपति आज़ाद ने कहा था, "हम युद्ध-प्रयत्नों में बाधा नहीं डालना चाहते। हम आज़ादी के लिये लड़ने की आज़ादी चाहते हैं।"

वर्धा के प्रस्ताव के बाद काँग्रेस कमेटियों का रुख़ एक दम बदल गया। तरह तरह की अफ़वाहें उड़ने लगीं।

वर्धा से बम्बई

यह निश्चय होगया कि किसी न किसी प्रकार का जन आन्दोलन चलेगा। यद्यपि वर्धा प्रस्ताव में अहिंसात्मक आन्दोलन की बात कही गई थी, फिर भी लोगों का ख़्याल यह था कि आन्दोलन की रूपरेखा में मौलिक भेद होगा। कम से कम यह निश्चय था कि इस बार का आन्दोलन सत्याग्रह आदि का रूप न लेगा। वर्धा प्रस्ताव के बाद कई प्रान्तों में, जिनमें बिहार, यू० पी०, बम्बई और आन्ध्र विशेष महत्वपूर्ण हैं, यह चर्चा चली कि इस बार गुप्त संगठन, रेलवे की पटरियों को उखाड़ना, पुल आदि को तोड़ना सभी कुछ शामिल रहेगा। कहीं कहीं इसी प्रकार की तैयारियाँ भी शुरू हो गईं।

इसी समय बिहार में बा० राजेन्द्र प्रसाद ने एक भाषण में कहा कि "हमें इस बार गोली खाने और तोप का मुक़ाबिला करने के लिये तैयार रहना चाहिये।"

बम्बई में सरदार पटेल ने कहा कि "इस बार का आन्दोलन थोड़े दिनों का और बहुत तेज़ होगा।"

१ अगस्त को पं० नेहरू ने इलाहाबाद में तिलक दिवस पर पर कहा था :—

"हम आग के साथ खेलने जा रहे हैं। हम दोधारी तलवार इस्तेमाल करने जा रहे हैं जिसका वार उल्टे हमारे ऊपर पड़ सकता है। लेकिन हम क्या करें ? हम मजबूर हैं। मैं अपने सामने भयानक, गहरा, लहराता समुद्र देख रहा हूँ। मैं उसमें कूदने जा रहा हूँ। तैर कर पार निकल जाऊँगा या नहीं, यह मैं नहीं जानता, पर यह जरूर जानता हूँ कि मैं कूदने जा रहा हूँ।"

नेताओं के इस प्रकार के भाषणों ने परिस्थिति अधिक साफ़ कर दी। अब लोगों की समझ में यह आ गया कि भयानक संघर्ष अनिवार्य है। सब की आखें कांग्रेस नेतृत्व की ओर लग गईं।

लेकिन राजा जी चुप चाप नहीं बैठे थे। उनका समझौते वाला प्रयत्न जारी था। वर्धा प्रस्ताव के बाद फ़ौरन (१८ जुलाई, १९४२) ही उन्होंने एक पत्र गाँधी जी को लिखा जिसमें उन्होंने कहा :— (१) विदेशी सत्ता से देश की पूर्ण मुक्ति के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है, (२) लेकिन, एक सरकार का यों ही हट जाना और उसके स्थान पर दूसरी सरकार का आ जाना बिल्कुल असम्भव मालूम पड़ता है; (३) कोई भी जानेवाली सरकार स्वभावतः अपने बाद आने वाली सरकार के हाथ में शक्ति देकर ही जायेगी, (४) अस्थाई सरकार और विधान निर्मातृ-परिषद् तभी सम्भव है जब किसी प्रकार के शासन के चलते रहने की सम्भावना हो (५) इसलिये, ब्रिटिश

हुकूमत के रहते ही हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये बड़ी राजनैतिक पार्टियों को आपस में समझौता कर लेना चाहिये—यानी कांग्रेस और लीग को एक ऐसा खाका बना लेना चाहिये जिससे अस्थाई केन्द्रीय सरकार बन सके और हम भारत छोड़ने वाली ब्रिटिश सरकार से शासन सूत्र ले सकें। (६) अगर यह मान भी लिया जाय कि नैतिक दबाव से ही अँग्रेज़ चले जायेंगे तो भी हमारा विश्वास है कि उनके जाने के बाद इतनी गड़बड़ी मच जायेगी कि बहुत दिनों तक अस्थाई सरकार का बनना असम्भव हो जायगा। (७) आप की माँग मान लेने का अर्थ है कि मौजूदा सरकार चली जाय और हिन्दुस्तान में अस्थाई सरकार के आने तक फ़ौजी हुकूमत क़ायम रहे—यह तो और भी अधिक भयावह बात है। (८) संकट पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति को, जिससे हिन्दुस्तान का भी सीधा सम्बन्ध है, देखकर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि हमारे इस आन्दोलन से सबसे पहिले जापान को लाभ पहुँचेगा। अगर इस आन्दोलन से यह आशा होती कि ब्रिटिश सरकार को निकाला जा सकेगा और इसके स्थान पर ऐसी राष्ट्रीय सरकार फ़ौरन बनाई जा सकेगी जो जापान का सफल मुक़ाबिला कर सकेगी तो यह ख़तरा उठाना अर्थ पूर्ण भी होता, लेकिन चूँकि इसकी आशा बिल्कुल नहीं है, इसलिये नतीजे में ज़ुल्म और ज़्यादतियाँ बहुत अधिक बढ़ जायेंगी और जापानी आक्रमण तथा अधिकार अधिक सुगम हो जायेगा। (९) यह भी डर है कि बड़े नेताओं के गिरफ़तार हो जाने के बाद गड़बड़ी मचेगी और शत्रु (जापानी) इससे फ़ायदा उठायेंगे तथा सारा आन्दोलन उनकी ओर से पाँचवे दस्ते के कार्यों का रूप ले लेगा।

ऊपर की बातें कहने के बाद राजा जी ने कहा कि इन कारणों से वह इस कार्यक्रम का विरोध खुले आम करेंगे।

राजा जी के उत्तर में गाँधी जी ने कहा:—

"आप मुस्लिम दोस्तों के साथ मिल कर एक लीग बनाकर अपने विचारों का प्रचार क्यों नहीं करते? क्या आप को मेरे पत्र के उत्तर में लिखा क़ायदे आज़म का पत्र मिल गया? क्या आप उनकी पाकिस्तान वाली व्याख्या को स्वीकार करते हैं? स्वतंत्रता के बारे में दोनों दलों द्वारा स्वीकृत विचार कौन सा है? निश्चय ही आपसी समझौते के लिये बुनियादी सवालों पर आपसी समझ में एकता की नितान्त आवश्यकता है। ऐसा न हो कि जापान का डर आप को और भी अधिक ख़राब दशा में डाल दे।"

इसी सिलसिले में कम्युनिस्ट पार्टी ने राय देते हुये कहा कि काँग्रेस को संघर्ष नहीं छेड़ना चाहिये क्योंकि हमारे शासक नेतृत्व को जान बूझ कर नाराज़ कर रहे हैं। संघर्ष होने पर सरकार अपनी मनमानी कर सकेगी, जैसा कि वह चाहती है।

सरकार की तैयारियाँ

उधर सरकार की ओर तैयारियाँ पक्की हो चुकी थीं। ३० जून को एमरी ने आगाह कर दिया कि जो लोग काँग्रेस की बात मानेंगे सरकार उनके साथ उचित व्यवहार करेगी। लार्ड लिनलिथगो भी इस बात पर तुले बैठे थे कि मौक़ा पाते ही वे काँग्रेस के नेताओं के ऊपर चील की तरह टूट पड़ें। उन्होंने बम्बई वर्किंग कमेटी के ठीक पहिले रेलवे तथा दूसरे विभागों के मज़दूरों और क्लर्कों की तनख़ाहें बढ़ा दीं। चारों तरफ़ गुप्त आदेश पहुँच गये। ज़िले-ज़िले के तमाम राजनैतिक कार्यकर्ताओं, ख़ास तौर से

बाअसर काँग्रेस नेताओं, की लिस्ट बन ही चुकी थी। ५ अगस्त को ही उन लोगों के नाम वारन्ट निकल गये। कान्स्टेबिलों तक को यह अधिकार मिल चुका था कि जिसे भी चाहें शुबहे में गिरफ़ार कर सकते हैं। दफ़ा २६, और १२९ का मज़बूत हथियार इनके हाथ में पहिले से था ही। मामूली दारोग़ा को भी इतने अधिकार मिल गये थे कि वह जो चाहे कर सकता था। आई० सी० एस० के अफ्सरों, पुलिस के अधिकारियों और फ़ौज की टुकड़ियों को 'पूरी तैयारी की दशा' में रखा गया था। सरकार हमला करने के लिये तैयार बैठी थी। ३ अगस्त को भारत सरकार की आज्ञा निकली कि "प्रॉइवेट सेनाओं' को बन्द कर दिया जाय। सरकार उनका रहना बर्दाश्त नहीं कर सकती।"

५ अगस्त को सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स ने हिन्दुस्तान के मसले पर एक ब्रॉडकास्ट किया जिसमें उन्होंने काँग्रेस नेताओं को अवसरवादी, मित्रराष्ट्र विरोधी, जापान का समर्थक आदि कहा। उन्होंने अपने आगामी अक्रमण के लिये ज़मीन तैयार की और विदेशों में हिन्दुस्तान के समर्थकों का मुँह बन्द करने और हिन्दुस्तान को बदनाम करने में कोई भी कोशिश उठा नहीं रखी।

५ अगस्त के सबेरे सारी दुनियाँ के अख़बारों में सरकार द्वारा प्रचारित वह नोट छपा जो कि इलाहाबाद में (२७ अप्रैल १९४२) होने वाली वर्किंग कमेटी की बैठक में लिया गया था। नोट यों ही 'लांग हैण्ड' में पेन्सिल से लिया गया था और बाद में अनावश्यक समझ कर 'स्वराज भवन' में (ऑल इण्डिया काँग्रेस कमेटी का केन्द्रीय दफ़्तर) एक कोने में फेंक दिया गया था। २६ मई को

पुलिस ने 'स्वराज भवन' की तलाशी ली। उसी तलाशी में यह नोट भी मिल गया था। ठीक बम्बई वर्किंग कमेटी की बैठक के पहले यह नोट दुनिया भर में क्यों प्रचारित किया गया? नोट के कुछ टुकड़े देख लेने पर इसका उत्तर मिल जाता है:—

जवाहरलाल जी: गाँधी जी का ड्राफ़्ट ऐसा है जिस पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना होगा।......इस समय विदेशी फ़ौजों के हट जाने से और सिविल शासन की मशीन के खत्म हो जाने से ऐसा 'वैकुअम' हो जायेगा जो कि फ़ौरन भरा नहीं जा सकता।

कृपलानी जी:- ड्राफ़्ट हमारे रुख का एलान है। इंगलैण्ड और अमेरिका इसका जो भी अर्थ चाहें निकाल सकते हैं। हमारे दिल में उनके खिलाफ़ कोई बात नहीं है।

मौलाना साहब:—हमारी पोज़ीशन क्या है? क्या हम बृटिश हुकूमत से कहें कि वह चली जाय और जापनियों तथा जर्मनों को हिन्दुस्तान में घुस आने दें अथवा, क्या हम यह चाहते हैं कि यहाँ ब्रिटिश हुकूमत बनी रहे और नये आक्रमण की रोक थाम करे?

पंत जी: मैं आत्म-निर्णय का अधिकार चाहता हूँ। इसका उपयोग हम जिस प्रकार चाहेंगे करेंगे।

जवाहरलाल जी:—इस तरह के ड्राफ़्ट से अँग्रेज़ी सरकार की पोज़ीशन मज़बूत हो जाती है। वह हिन्दुस्तान को शत्रुदेश समझेगी और उसे धूल में मिला देगी। जो उसने रंगून में किया, वही वह यहाँ करेगी।

सरदार पटेल:—ड्राफ़्ट अँग्रेज़ों से कहता है, "तुमने अपनी पूर्ण अयोग्यता साबित की है। तुम भारत की रक्षा नहीं कर सकते। हम भी

उसकी रक्षा नहीं कर सकते क्योंकि तुम हमें उसकी रक्षा करने नहीं दोगे। लेकिन अगर तुम चले जाओ तो हम कुछ कर सकते हैं।"

आसफ़ अली :—ड्राफ़्ट हमको हमेशा के लिये अहिंसा स्वीकार करने को कहता है।

जवाहर लालः—ड्राफ़्ट की सारी पृष्ठ भूमि ऐसी है जिससे संसार यह सोचने पर मजबूर हो जायेगा कि हम दूसरी तरह से फ़ासिस्ट शक्तियों का साथ दे रहे हैं। अँग्रज़ों से कहा जा रहा है कि वे चले जाँय। उनके चले जाने के बाद हमें जापान से बातचीत करना होगा, और शायद उससे कुछ समझौता भी करना पड़े। समझौते की शर्तों में यह हो सकता है कि हमारे हाथ में नागरिक शासन बहुत हद तक रहे, उनके हाथों में फ़ौज़ी शासन रहे और फ़ौजों के हिन्दुस्तान से होकर जाने के लिये रास्ता भी माँगा जाय।

कृपलानी जीः—समझौते का अर्थ जापानी फ़ौजों का हिन्दुस्तान से हो कर जाना क्यों होगा। जिस प्रकार हम अँग्रेज़ी और अमेरिकन फ़ौजों को बाहर निकल जाने के लिये कहते हैं इसी प्रकार हम दूसरों से भी कह सकते हैं कि वे हमारी सीमा के बाहर रहें।

जवाहर लालः—आपको पसन्द हो या न हो, युद्ध-परिस्थितियाँ मजबूर कर देंगी कि वे हिन्दुस्तान को युद्ध-क्षेत्र बनायें। आत्मरक्षा के लिये ही सही, वे अलग नहीं रह सकते। वे देश के भीतर से होकर गुज़रेंगे। आप उन्हें अहिंसात्मक असहयोग द्वारा रोक नहीं सकते। अधिकतर लोगों पर इसका असर नहीं पड़ेगा। कुछ व्यक्ति तो प्रतीकात्मक ढंग से विरोध करेंगे। जापानी सेनायें ईराक़, फ़ारस आदि में घुस जाँयेगी, चीन को बर्बाद कर देगी और रूसी स्थिति को अधिक भयावह बना देगी।

दूसरे करणों के अलावा, केवल फ़ौजी कारणों से ही अँग्रेज़ हमारी माँग मानने से इन्कार कर देंगे। उनके इन्कार करने पर हमारे ऊपर असर पड़ेगा, वह है फ़ासिस्ट शक्तियों के साथ अक्रिय, विचारात्मक सहयोग। तब जापान को हमला करने का बहाना मिल जायेगा। इस प्रकार हम एक अजब चक्कर में फँस जायेंगे। धुरी-राष्ट्रों को छोड़ बाक़ी सभी हमारे दुश्मन हो जायेंगे। जापान के हाथ में परिस्थिति की कुञ्जी चली जायेगी। हमें जन सत्याग्रह का भी अवसर नहीं मिलेगा।

जहाँ तक ख़ास काम का सम्बध है, बापू के ड्राफ़्ट में कोई दिक़्क़त नहीं है। लेकिन ड्राफ़्ट के पीछे सारी विचार धारा, सारी पृष्ठ भूमि जापान के साथ पक्षपात करने की है। हो सकता है कि ऐसा अनजाने हो गया हो।

आज के संकट काल में तीन बातों का असर हमारे निश्चय पर पड़ेगा (१) हिन्दुस्तान की अज़ादी (२) कुछ महान उद्देश्यों के लिये सहानुभूति (३) युद्ध में किस पक्ष की विजय होती है। गाँधी जी का ख्याल यह है कि जापान और जर्मनी की जीत होगी। यही धारणा अनचेते ही उनके दिमाग़ में है। हमारे उनके रुख़ में यही अन्तर है।

अच्युत पटवर्द्धनः—अगर हम ब्रिटेन का साथ देते हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि हम जापान को निमन्त्रण भेजते हैं।

राजेन्द्र बाबूः—जब तक हम बापू का ड्राफ़्ट मान न लें, हम उचित वातावरण नहीं तैयार कर सकते।

पं० नेहरूः—हमने मित्र राष्ट्रों के प्रति जो रुख़ लिया है उसमें और बापू के ड्राफ़्ट में अन्तर है। कम से कम मैं तो उनसे सौ फ़ी सदी सहानुभूति के लिये निश्चित कर चुका हूँ। उस पोज़ीशन से हटना हमारे लिये

अपमान जनक होगा।......हम गुज़री हुई बात सोचते हैं। द्रुतगति से बदलने वाली परिस्थिति में यह बात भयावह है।

पंत जीः—हमें देश की रक्षा के लिये भरपूर कोशिश करनी चाहिये। हमें बहुतसी बातों को भुलाना पड़ेगा। अगर मैं अँग्रेज़ों को सहयोग नहीं दे सकता तो उसका कारण सिर्फ़ यह है कि ऐसा करना हमारी शान के खिलाफ़ है। लेकिन ड्राफ़्ट के माने यह होते हैं कि जितने सिपाही मेरे सामने आयें उन्हें मैं अपना शत्रु समझूं।

भूला भाई देसाईः—किसी प्रस्ताव की ज़रूरत नहीं है। हम कह चुके हैं कि अगर मौक़ा मिले तो हम मित्र राष्ट्रों का साथ देंगे।

राजा जी :—इस प्रस्ताव के बाद काँग्रेस की सारी नीतिका नया अर्थ निकाला जायेगा। वह अर्थ बिल्कुल हमारे खिलाफ़ पड़ेगा। जापान कहेगा, "बहुत खूब!" मैं यह नहीं मानता कि अगर अँग्रेज़ चले गये तो जापान के भीतर घुस आने पर भी हमें संगठित होने का अवसर मिल जायेगा। अँग्रेज़ों के जाने से जो स्थान रिक्त होगा, उसे जापान भरेगा। ब्रिटेन की बुराइयों की वजह से हमारी नज़रें धूमिल नहीं पड़नी चाहियें। छोटी-छोटी बातों से घबड़ा जाने से कोई लाभ नहीं। जापान की गोद में हमें नहीं घुस जाना चाहिये—लेकिन इस ड्राफ़्ट का यही अर्थ निकलता है।

सिरोजनी नायडूः—जापान से अपील करना बेकार है जापान ने। अपने विजय स्थलों का जो नक़्शा मनाया है, हिन्दुस्तान भी उसमें शामिल है।

बारदोलोईः—हम लोग खतरे के क्षेत्र में अभी से आ गये हैं। इस समय विचार-धारा सम्बन्धी बहस की गुंजायश नहीं है।

सरदार पटेलः—क्रिप्स चालाक आदमी है। वह अब भी ढिंढोरा

पीट रहा है कि उसका मिशन असफल नहीं हुआ है। यह ड्राफ़्ट उसके प्रचार का उचित उत्तर है। मैं जिन्ना से फिर बातचीत करने के पक्षमें नहीं हूँ। हमने कई बार प्रयत्न किया लेकिन हमेशा हमें असफल ही होना पड़ा। काँग्रेस इस समय दो आघातों को सह रही है—एक क्रिप्स दूसरे राजा जी का प्रस्ताव।......बारदोली प्रस्ताव में हमने कह दिया था कि हमारा दरवाज़ा खुला हुआ है और हमारी सहानुभूति मित्र राष्ट्रों के साथ है। इतनी बार अपमानित होने के बाद अब समय आ गया है कि हम अपना दरवाज़ा हमेशा के लिये बन्द कर दें।

नरेन्द्र देवः—मैं इस कथन से सहमत नहीं हूँ कि सम्पूर्ण युद्ध एक और अविभाज्य है। रूस और चीन तथा अमेरिका और ब्रिटेन के उद्देश्य एक नहीं है। अगर ये एक होते तो निश्चय ही हम ब्रिटेन का साथ देते...... मैं हिटलर के जर्मनी की हार में रुचि नहीं रखता। मेरी अधिक रुचि युद्ध और शान्ति के मन्तव्यों में है।

मौलाना आज़ाद—क्रिप्स ने हमें बहुत धोखा दिया। उन्होंने सब कुछ मिट्टी कर दिया। ब्रिटेन ने यह असम्भव कर दिया कि हम अपने देश की रक्षा कर सकें। हमें जापानी हमले के सम्बन्ध में कुछ न कुछ करना ही है। मेरा यह पक्का विश्वास है कि ग़ुलाम मुल्क के लिये देश भक्ति ही एक मात्र मज़हब है। अगर मुझे यक़ीन होता है कि जापान ब्रिटेन से अच्छा है और उसके हमले से हिन्दुस्तान का भला होगा, तो मैं इसका एलान जनता में कर देता। लेकिन ऐसा है नहीं।"

बाद में जैसा कि हम जानते हैं जवाहर लाल जी का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया। उधर ब्रिटिश सरकार का प्रचार-यन्त्र

द्रुतगति से चलने लगा और नेताओं को जेल में बन्द कर निहत्थी जनता को कुचलने का उपक्रम बनने लगा।

७ और ८ अगस्त को अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी की बैठक बम्बई में ग्वालिया टैंक के विशाल मैदान में हुई। लगभग दो लाख आदमी पण्डाल के भीतर बाहर मिला कर मौजूद थे। यहीं पर प्रसिद्ध अगस्त प्रस्ताव हुआ जिसके मुख्य अंश ये हैं :—

८ अगस्त का प्रस्ताव

"......भारत के भले और संयुक्तराष्ट्र की सफलता के लिये आवश्यक है कि हिन्दुस्तान में अँग्रेज़ी सरकार का फ़ौरन अन्त हो जाय। उसके क़ायम रहने से देश गिरता जा रहा है और कमज़ोर होता जा रहा है; वह धीरे धीरे अपनी रक्षा के लिये और विश्व स्वातन्त्र्य में सहायता देने के लिये नाक़ाबिल होता जा रहा है।

"कमेटी ने चीनी और रूसी जनता के बढ़ते संकट को दुख के साथ अनुभव किया है। वह अपनी आज़ादी की रक्षा के लिये उनकी वीरता की प्रशंसा करती है। यह परिस्थिति और आनेवाला खतरा उन लोगों को जो आज़ादी के लिये प्रयत्न कर रहे हैं, इस बात के लिये मजबूर करते हैं कि वे मित्र राष्ट्रों की नीतिं की मूल भितियों की परीक्षा फिर से करें। यह नीति आज़ादी के आधार पर नहीं है.........साम्राज्य एक बोझ और अभिशाप बन गया है। वर्तमान साम्राज्यवाद का प्रदेश भारत सारी समस्या का मुख्य विषय बन गया है, क्योंकि हिंन्दुस्तान की आज़ादी के माप दण्ड से ही ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्रों की परख की जा सकती है और एशिया तथा अफ्रीका के निवासियों के दिलों में आशा और उत्साह भरा जा सकता है।

"इस प्रकार अँग्रेज़ शासन का इस देश में समाप्त हो जाना महत्त्वपूर्ण और तात्कालिक प्रश्न है। इसी पर युद्ध का भविष्य आज़ादी तथा प्रजा-तन्त्र की सफलता निर्भर है। आज़ाद हिन्दुस्तान इस सफलता को निश्चित बना सकता है क्योंकि ऐसी हालत में वह अपने सारे साधन नाज़ीवाद, फ़ासिस्टवाद और साम्राज्यवाद को समाप्त करने में लगा देगा।

"आज के खतरे से हिन्दुस्तान की आज़ादी और साम्राज्यवाद का अन्त अत्यावश्यक हो गया है। भविष्य के वायदे आज की परिस्थिति पर असर नहीं डाल सकते, न ख़तरे को ही दूर कर सकते हैं। वे जनता के मस्तिष्क पर आवश्यक मनोवैज्ञानिक असर नहीं डाल सकते। केवल स्वतन्त्रता का प्रकाश ही अब जनता के उस उत्साह और शक्ति को संजीवन प्रदान कर सकता है जो फ़ौरन युद्ध की रूप रेखा को बदल देगी।

"इसलिये, अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी अपनी सारी शक्ति के साथ हिन्दुस्तान से अँग्रेज़ी शासन के निकल जाने की माँग को दोहराती है।............

"अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी फिर से, इस आख़िरी घड़ी में, संसार की स्वतन्त्रता के हित में, ब्रिटेन और संयुक्त-राष्ट्रों से, अपनी अपील को दोहराती है। लेकिन कमेटी अनुभव करती है कि वह उस साम्राज्यवादी, निरंकुश सरकार के विरुद्ध जो कि राष्ट्र को ग़ुलाम बनाये हुये हैं और उसे अपने तथा मानवता के हित में कार्य करने से रोकती है, राष्ट्र को अपनी इच्छा पूर्वक बढ़ने से अब नहीं रोक सकती। इसलिये, भारत की आज़ादी और मुक्ति के स्वाधिकार की रक्षा के लिये, विशाल से विशाल स्तर पर, अहिंसात्मक ढंग से जन संघर्ष छेड़ने के लिये कमेटी ने आज्ञा दे देने का निश्चय किया है, जिससे देश पिछले २२ सालों के शान्तिमय

संघर्ष से बटुरी हुई सारी अहिंसात्मक शक्ति इकट्ठा कर उसे काम में ला सके। निश्चय ही यह संघर्ष गाँधी जी के नेतृत्व में ही होगा, इसलिये कमेटी उनसे अपील करती है कि वे बागडोर अपने हाथ में लें और राष्ट्र को बतावें कि वह कौन सा अगला क़दम उठावे।

"कमेटी भारत की जनता से अपील करती है कि वह आने वाले ख़तरों और मुसीबतों का सामना हिम्मत और बहादुरी से करें और गाँधी जी के नेतृत्व में रहकर उनके आदेशों को हिन्दुस्तान की आज़ादी के सिपाहियों की तरह पूरा करे। उन्हें याद रखना होगा कि इस आन्दोलन का आधार अहिंसा ही है। ऐसा समय आ सकता है जब आदेश दे सकना और आदेशों का जनता तक पहुँच सकना असम्भव हो जायेगा। उस समय कोई भी काँग्रेस कमेटी अपना काम न कर सकेगी। जब ऐसा हो तो हर मर्द औरत को जो कि इस आन्दोलन में शामिल है, आम हिदायतों के अनुसार ही काम करना होगा। हर उस हिन्दुस्तानी को जो आज़ादी चाहता है और उसके लिये प्रयत्नशील है, स्वयं अपना मार्ग-प्रदर्शक बनना होगा और उस कठिन रास्ते पर चलते जाना होगा जिस पर आरामगाह नहीं है और जो अन्त में स्वतन्त्रता और भारत की मुक्ति तक हमें ले जाता है।

"अन्त में, वर्किंग कमेटी यह साफ़ कह देना चाहती है कि इस जन संघर्ष को आरम्भ करके वह काँग्रेस के लिये शक्ति संचय नहीं करना चाहती। शक्ति जब कभी आयेगी तो वह हिन्दुस्तान की सारी जनता की होगी।"

युद्ध कालीन अस्थाई सरकार और विधान निर्मातृ परिषद् की चर्चा करते हुये प्रस्ताव में कहा गया :—

"काँग्रेस की दृष्टि से, यह विधान संघ-शासन के आधार पर होना चाहिये, जिसमें शामिल होनेवाली प्रत्येक इकाई को अधिक से अधिक स्वायत्तशासन का अधिकार रहेगा और केन्द्र से बचे अधिकार भी इन्हीं इकाइयों के हाँथ में रहेंगे ।"

प्रस्ताव थोड़ी बहुत बहस के बाद स्वीकृत हो गया। इसके पास हो जाने के बाद गाँधी जी ने भाषण दिया।

गाँधी जी का भाषण

इसमें उन्होंने आगे आने वाले आन्दोलन के बारे में पूरी रोशनी डाली। उन्होंने कहा :—

"मेरी ज़िन्दगी की यह आखिरी लड़ाई है। देर करना अहितकर होगा। उससे हम सब का अपमान होगा। हमारी लड़ाई शुरू होने वाली है। लेकिन लड़ाई छेड़ने के पहिले मैं एक खत वाईसराय को लिखूँगा और उनके उत्तर का इन्तज़ार करूँगा। इसमें एक हफ़्ता, दो हफ़्ता अथवा तीन हफ़्ते लग सकते हैं। तब तक हम १३ नियमों के अलावा नीचे लिखा नियम मानेंगे। हर हिन्दुस्तानी आज से अपने को स्वतन्त्र समझे। वह आज़ादी प्राप्त करने अथवा उसके लिये प्रयत्न करने में मिट जाने के लिये तैयार रहे। ज़िन्दगी की तरफ़ उसका यही रुख होना चाहिये कि वह आज़ाद इन्सान है......आज़ादी की माँग में समझौता नहीं हो सकता। आज़ादी सबसे पहिले, उसके बाद और कुछ। कायर मत बनो क्योंकि कायरों को जीवित रहने का अधिकार नहीं है। आज़ादी ही तुम्हारा मन्त्र होना चाहिये, उसीका तुम जाप करो।"

भाषण समाप्त करते समय गाँधी जी ने फिर कहा :—

"इस क्षण से तुममें से हर मर्द और औरत अपने को स्वतन्त्र समझे। सब ऐसा ही व्यवहार करें जैसे कि वे स्वतन्त्र हैं और साम्राज्य की चक्की

में नहीं दबे हैं। विश्वास मानिये, मैं वाईसराय से मन्त्रि मण्डलों अथवा इस तरह की चीज़ों के लिये मोल भाव करने नहीं जा रहा हूँ। पूर्ण स्वतन्त्रता से कम में मुझे बिल्कुल सन्तोष नहीं होगा।...हम करेंगे, या मरेंगे। या तो हम हिन्दुस्तान को आज़ाद करेंगे अथवा उसी प्रयत्न में प्राण होम कर देंगे।"

इसी भाषण में गाँधी जी ने अपनी अहिंसा वाली परिपाटी के अनुकूल फिर चेतावनी दी कि, "संघर्ष में अगर आपने हिंसा की तो आप विश्वास करें आप मुझे जीवित नहीं पायेंगे।"

इसके बाद जलसे की कार्रवाई ख़त्म हुई। लेकिन उसके पहिले मौलाना आज़ाद को यह अधिकार दिया गया कि वे प्रेसिडेन्ट रूज़वेल्ट, मार्शल चियांग-काई-शेक और मार्शल स्तालिन को पत्र लिखें।

यद्यपि महात्मा गाँधी का भाषण खुले युद्ध का एलान था, फिर भी लोगों ने यह अन्दाज़ लगाया कि आन्दोलन अभी कुछ दिनों के लिये टल गया। पहिले महात्मा जी वाईसराय से पत्र व्यवहार करेंगे, सम्भव है उनसे मुलाकात भी करें; उसके बाद अखिल भारतीय भ्रमण का प्रोग्राम पूरा होगा, तब आन्दोलन शुरू होने की बारी आयेगी। स्वयं महात्मा जी ने बिड़ला हाउस पहुँच कर व्यक्तिगत बातचीत में कहा था, "सरकार अभी हम लोगों को नहीं पकड़ेगी, अगर वह पकड़ेगी तो बहुत बड़ी मूर्खाई करेगी।"

लेकिन जैसा कि हम जानते हैं सरकार ताक लगाये बैठी थी।

सरकारी हमला

७ तारीख़ को ही सरकारी एलान हो गया था कि आन्दोलन के सम्बन्ध में दूकानें बन्द न की जा सकेंगी। अगर कोई दूकान बन्द करेगा तो सरकार उसे ज़बरदस्ती खोलेगी और ख़ुद कारबार चलायेगी।

भारत रक्षा क़ानून के अनुसार दो आज्ञायें निकलीं—पहिली आज्ञा के अनुसार आन्दोलन के सम्बन्ध में केवल वही समाचार प्रकाशित हो सकते थे जो कि सरकार की ओर से मिले हों अथवा कुछ विशेष समाचार एजेन्सियों द्वारा प्राप्त हुये हों। दूसरी आज्ञा के अनुसार, सूबा सरकारों को अधिकार मिल गया कि जिन स्थानीय अधिकारियों पर यह सन्देह हो कि वे अपना धन अथवा आदमी ऐसे कामों में इस्तेमाल कर रहे हैं जो कि भारत की रक्षा, जनता की शान्ति अथवा युद्ध प्रयत्नों में बाधक हो रहे हों, उन्हें वह रोक सकती है, अथवा उनके सारे अधिकार ज़ब्त कर सकती है।

इसलिये जिस समय गाँधी जी का भाषण समाप्त हुआ अनिश्चित अवस्था ही थी। और जब, ९ अगस्त के ५ बजे सबेरे गाँधी जी और वर्किंग कमेटी के सारे सदस्य पकड़ लिये गये तो सभी को एक धक्का सा लगा। एक साथ सारे देश में गिरफ़ारियाँ शुरू हो गईं और दोपहर होते होते लगभग सारे देश में तमाम स्थानीय काँग्रेसी नेता और कार्यकर्ता पकड़ लिये गये। १४८ अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के सदस्य गिरफ़ार हो गये।

वम्बई में, तैयारी बिल्कुल पक्की थी। सबेरे ही, 'काँग्रेस हाउस' पर पुलिस का अधिकार हो गया। सभी स्थानों के फ़ोन कट गये। हर चौराहे पर पुलिस का पहरा हो गया।

ग्वालिया टैंक पर एकत्रित दो लाख जनता पर लाठियों, गोलियों और टियर गैस का प्रयोग किया गया। श्रीमती कस्तूरबा पहिले ही गिरफ़ार कर ली गईं। झण्डा हाथ में लिये कुमारी मृदुला सारा भाई स्थल पर पहुँची। पुलिस ने लाठियों से पीट कर उन्हें धाराशायी कर दिया। फ़ौरन ही सारे शहर में हल चल मच गई। ट्रामें-बसें फूँक दी गईं, डाकख़ाने जला दिये गये। स्टेशन फूँका गया। पुलिस की गोलियों का मुक़ाबिला सामने सामने किया गया।

उधर नेताओं की गिरफ़ारी का समाचार सारे देश में रेडियो के द्वारा पहुँच गया। साथ ही, एमरी साहब का एक ब्राडकास्ट भी आया जिसमें उन्होंने कहा कि काँग्रेस का प्रोग्राम है डाकख़ाना, स्टेशन आदि फूँकना, थाने आदि पर क़ब्ज़ा करना, रेल की पटरियों को हटाना, पुलों को तोड़ना आदि। उद्वेलित जनता ने एमरी के इस ब्राडकास्ट को सचमुच काँग्रेस का प्रोग्राम समझ लिया और कहीं कहीं इस तरह की घटनायें हुईं भी। लेकिन समाचार पत्रों के बन्द हो जाने और रेलों के रुक जाने से बहुत से स्थानों पर यह समाचार हफ़्ते दो हफ़्ते देर में पहुँचा।

जिस समय गाँधी जी गिरफ़ार हुये उस समय श्री प्यारे लाल ने उनसे पूछा कि आप क्या आदेश देते हैं। गाँधी जी

ने कहा कि पिछले दिनों में मैंने जो कुछ कहा है वही मेरा आदेश है। आज से हिन्दुस्तान का हर आदमी राष्ट्रपति है। वह जो उचित समझे करे। बाद में श्री प्यारेलाल ने १० आदेश तैयार किये। सभी आदेश गाँधी जी के पूर्व के कथनों के आधार पर थे। पहिले आदेश में कहा गया था कि पूर्ण अहिंसा का पालन होगा और गुप्तकार्य बिल्कुल नहीं होंगे। अन्त के आदेशों में रचनात्मक कार्यक्रम और हरिजन सेवा तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयत्नों पर ज़ोर दिया गया था।

गाँधी जी के आदेश

ये आदेश 'सकीना बिल्डिंगज़' में (जिसमें डा० राम मनोहर लोहिया उन दिनों रह रहे थे) जाकर बदल गये। उनकी संख्या भी बढ़ गई। बाद में, 'सरदार गृह' नामी होटल में सभी बचे हुये अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी के नेताओं की बैठक हुई। इस बैठक में इन्हीं आदेशों के आधार पर प्रोग्राम बना और सभी प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने अपने अपने लिये काम बाँटें। उसके बाद ये नेता अपने अपने प्रान्तों के लिये रवाना हो गये।

अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी के अधिवेशन के लिये बहुत सी रियासतों के प्रजामण्डल के प्रतिनिधि भी आये थे। इन प्रतिनिधियों ने भी आपस में बात चीत करके प्रोग्राम बनाया था।

१० अगस्त को सारी प्रान्तीय कॉंग्रेस कमेटियाँ ग़ैर क़ानूनी घोषित कर दी गई। मैसूर की स्टेट कॉंग्रेस भी अवैधानिक क़रार दे दी गई। उसी दिन अखिल भारतीय हिन्दू महा सभा के सभापति श्री

जिन्ना और सावरकर की आज्ञा

सावरकर ने हिन्दुओं से अपील किया कि वे इस आन्दोलन में शामिल न हों। इधर जिन्ना साहब ने मुसलमानों से अपील की कि वे इस आन्दोलन से कोई मतलब न रखें क्योंकि यह आन्दोलन मुसलमानों के ख़िलाफ़ छेड़ा गया है।

आंदोलन के साथ साथ होनी वाली हिंसा को रोकने की अपील करते हुये राजा जी ने १३ अगस्त को एक वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने कहा, "पागलपन की सीमा तक पहुँची हुई सत्यानाश की यह प्रवृत्ति जिसमें मनुष्यों की रक्षा की भी परवाह नहीं की जा रही है, संगठित रूप से संचालित मार पीट और हिंसा गाँधी जी और काँग्रेस के उज्ज्वल नाम पर कालिमा पोत रही है।"

आन्दोलन का विस्तार

बम्बई में आन्दोलन शुरू होकर शीघ्र ही मद्रास, मध्यप्रान्त, बिहार, यू० पी० और बंगाल तक पहुँच गया। सिन्ध, आसाम और उड़ीसा में भी इसकी लपटें धीरे धीरे पहुँचीं। ११ अगस्त से हालत अधिक ख़राब होने लगी। आन्दोलन द्रुत गति से शहरों की सीमाओं को पार कर देहातों में पहुँचने लगा। ज़िला और शहर के अधिकारियों के हाथ में इतनी शक्ति न थी कि वे इस बढ़ते दावानल की रोक थाम कर सकें। ईस्ट इण्डियन रेलवे को काफ़ी क्षति पहुँची और उसकी गाड़ियों का चलना बहुत दूर तक रुक गया। बी० ऐण्ड० एन० डब्लू रेलवे का तो सारा कारोबार रुक गया। जनता ने उस पर अधिकार कर लिया। कई स्थानों इन्जन पर झण्डे लगा दिये और सैकड़ों आदमियों को बग़ैर टिकट बिठा कर गार्ड और ड्राइवर को गाड़ी ले जानी पड़ी। पूरे बिहार प्रान्त

और यू० पी० के पूर्वी ज़िलों में इस आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा। बंगाल सारे उत्तरी हिन्दुस्तान से बिलकुल अलग हो गया। ध्यान रखने की बात है रेलवे में उन स्थानों पर आन्दोलन तेज़ था जहाँ से सारे हिन्दुस्तान को कोयला और लोहा मिलता था।

आन्दोलन की एक विशेषता यह भी थी कि प्रायः सभी स्थानों पर विद्यार्थियों ने आगे बढ़कर हिस्सा लिया। अपनी प्राचीन परिपाटी को छोड़ इस बार सचमुच विद्यार्थियों ने आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया। शिक्षालयों को छोड़ वे गाँवों में भी गये और आन्दोलन की ज्वाला वहाँ तक पहुँचाई। इसमें दर्जनों विद्यार्थी काम आगये। हज़ारों को जेल जाना पड़ा। प्रयाग में लाल पद्मधर सिंह विद्यार्थियों के जलूस में गोली खा कर मरे।

यू० पी० में यह आन्दोलन पूरबी ज़िलों में अधिक तेज़ था। आन्दोलन के दो प्रोग्राम ख़ास थे (१) थानों, रेलवे, स्कूलों, कचहरियों, अस्पतालों आदि पर झण्डा फहराना (२) जहाँ कहीं भी अवसर मिले अधिकारियों को अशक्त करना, शासन व्यवस्था बन्द करने का प्रयत्न करना, स्वयं पंचायती शासन की व्यवस्था करना आदि। बलिया में कहा जाता है कई दिनों तक स्वतन्त्र सरकार की आमलदारी थी। जेल और कचहरियों पर अधिकार मिल गया था। स्थानीय ज़िला धीश ने हथियार डाल दिये थे। सैकड़ों पुलिस चौकियों और थानों पर कुछ समय के लिये जनता का अधिकार हो गया था। जौनपुर, ग़ाज़ीपुर, आज़मगढ़, बनारस आदि में भी यही हुआ। लगभग १० दिन तक ऐसा लगा कि अँग्रेज़ी शासन की व्यवस्था ही टूट गई है, उसकी पुलिस और

फ़ौज में इस आन्दोलन का सामना करने का बल नहीं रह गया है।

यू० पी० की ही भाँति बिहार में भी पूरी तैयारी के साथ यह आन्दोलन चला। बिहार के प्रत्येक ज़िले में आन्दोलन की लपटें पहुँची और लगभग सब जगह पुलिस और शासक कुछ दिनों तक आन्दोलन पर अधिकार नहीं पा सके।

दक्षिण में, आन्ध्र में, यह आन्दोलन तेज़ी से चला। वहाँ की सूबा और स्थानीय काँग्रेस कमेटियों ने पहिले ही से सारा प्रबन्ध कर रखा था। संगठन, प्रचार तथा कार्य-संचालन सम्बन्धी सारी बातें हफ़्तों पहिले ही निश्चित हो चुकी थीं। वहाँ के आन्दोलन में क़ानून तोड़ना, कचहरियों और विद्यालयों को छोड़ना, ग़ैर क़ानूनी संस्थाओं का सदस्य बनना और उन्हें संचालित करना, सरकारी नौकरों से इस्तीफ़े दिलवाना, मज़दूरों की हड़ताल करवाना, पिकेटिंग करना, जंज़ीर खींचकर गाड़ी रोकना, बिना टिकट सफ़र करना, तार काटना आदि सभी कुछ शामिल था और सूबा काँग्रेस कमेटी की ओर से ज़िला और नगर काँग्रेस कमेटियों को इस प्रकार के आदेश २९ जुलाई को ही मिल चुके थे। इन्हीं आदेशों के आधार पर वहाँ का आन्दोलन चला और शीघ्र ही उसने भयंकर रूप धारण कर लिया।

आन्ध्र की भाँति ही देश के अन्य प्रान्तों में भी आन्दोलन चला। क्रुद्ध जनता ने जिस प्रकार भी उचित समझा अपना आन्दोलन चलाया। काँग्रेस कमेटियाँ क्षत विक्षत हो गई थीं। स्थापित स्थानीय नेतृत्व आन्दोलम का संचालन न कर सका। जनता ने अपनी ज़िम्मेदारी पर अपने ढंग से जो उचित समझा किया।

गाँधी जी ने ७ अगस्त को ही अपना कार्य-क्रम बना लिया था। लेकिन वह कार्य-क्रम प्रकाश में न आ सका था। उस कार्य-क्रम में गाँधी जी ने २४ घण्टे की हड़ताल का नारा दिया था, लेकिन उसी स्थान पर साफ़-साफ़ कहा था :—

गाँधी जी का कार्य-क्रम

"जो लोग सरकारी दफ़्तरों में काम कर रहे हैं, सरकारी कारखानों, रेलवे, डाकखानों आदि में नौकरी कर रहे हैं वे हड़ताल में न शामिल हों, क्योंकि हम साफ़ कह देना चाहते हैं कि हम कभी भी जापानी, नाज़ी, या फ़ासिस्ट आक्रमण को बर्दाश्त नहीं करेंगे, न हम अँग्रेज़ी राज को ही बर्दाश्त करेंगे।"

लेकिन गाँधी जी का आदेश लोगों तक पहुँच नहीं सका। जो आदेश लोगों को मिले वे स्थानीय अथवा प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी के नाम से मिले। यद्यपि इन आदेशों में अहिंसा पर हमेशा जोर दिया गया था, फिर भी अन्य आदेश ऐसे थे जिनमें फ़ौज में बग़ावत करना, पुल तोड़ना, रेल की पटरी हटाना आदि शामिल था। श्री युत मश्रूवाला ने "हरिजन" में (२३ अगस्त) एक लेख में लिखा:—

"यातायात के साधनों में तोड़-फोड़ मचाया जा सकता है...। ऐसे संघर्ष में तार काटने, रेल की पटरियाँ हटाने, छोटे-छोटे पुलों को तोड़ने से एतराज़ नहीं किया जा सकता, अगर ऐसा करने से जीवन को ख़तरा न हो। अहिंसात्मक क्रान्तिकारियों को चाहिये कि वे अँग्रेज़ी शासन को वैसा ही समझें वैसा वे धुरी राष्ट्रों को समझते हैं; और अँग्रेज़ों के साथ ऐसा ही समझ कर व्यवहार करें।"

श्री मश्रुवाला के इस लिखित आदेश को लोगों ने स्वयं गाँधी जी का आदेश माना, और इसी भावना के अनुसार काम किया। जनता के हृदय का ब्रिटिश-द्रोह और प्रतिहिंसा की भावना उमड़ पड़ी। जनता के प्रहार ने शासन व्यवस्था की चूलें हिला दीं। ज़िलाधीशों की सारी शक्तियाँ कुछ दिनों के लिये कुण्ठित हो गई। पटना, प्रयाग, बलिया आदि स्थानों पर कई दिनों तक पुलिस अथवा फ़ौज का पता न था।

धीरे-धीरे कॉंग्रेस कमेटियों ने थोड़ा बहुत काम छिपे-छिपे शुरू किया। कई शहरों में झण्डे फहराने, आज़ादी का एलान करने आदि का प्रोग्राम पूरा किया गया, परन्तु अधिकतर स्थानों में ऐसा नहीं हुआ। ज़्यादातर कॉंग्रेस कर्मी गुप्त दलों का संगठन करने, फ़ौज और मज़दूरों में पर्चे बाँटने, भर्ती और युद्ध के ख़िलाफ़ प्रचार करने, कुछ स्थानों पर हथियार सँजोने में लग गये। ऐसा उन लोगों ने किया जो अधिकतर युवक थे और आज़ादी प्राप्त करने के लिये कोई भी ढंग अपनाने को तैयार थे। और, इस प्रकार आन्दोलन कभी खुले कभी छिपे चलता रहा।

शासकों ने दमन की चक्की चलानी शुरू की तो उस पर कोई नियन्त्रण न रहा। एमरी और लिनलिथगो ने अपने पुराने एलान के अनुसार हमारी जनता पर बाभ की तरह हमला किया। जिस प्रकार हमला हुआ और जिस कट्टरता, नृशंसता और कायरता के साथ दमन की रक्त पिपासु चक्की भारतीय मानवता की रीढ़ की हड्डियों को चर चराती हुई चली उसका संक्षिप्त वर्णन हम यहाँ दे रहे हैं:—

दमन की चक्की

बम्बई में लाठियाँ बरसाई गईं, टियर गैस का प्रयोग हुआ, गोलियाँ चलाई गईं और दर्जनों वालण्टियर तथा जनता के आदमी पहिले हफ़्ते में ही काम आ गये। नदिया में छोटे-छोटे बच्चों ने गोलियों का सामना किया और प्राण दिये।

बम्बई और गुजरात

पूने में, घरों में घुस कर पुलिस ने औरतों पर हमले किये, उनका अपमान किया और गोलियाँ चलाईं। गुजरात में शुरू से ही सरकार ने हमले शुरू कर दिये। सशस्त्र पुलिस दलों ने लगान वसूल किये, लोगों का भीतर आना और बाहर जाना बन्द कर दिया और नंगे मज़ालिम ढाये। जनता ने विरोध किया। मिल मालिकों ने लाक आउट कर दिया था। छात्र हड़तालों की धूम मच गई। छात्रों ने नेतृत्व अपने हाथ में लिया। भड़ौच में ट्रेन पर प्रचार करते हुये वे पकड़े गये और मारपीट कर निचे उतार दिये गये। अडासा में ज़मीन पर बैठे हुये शांत विद्यार्थियों की छाती से लगाकर बन्दूक चलाई गयी। जलालपुर तालुका में पुलिस ने ८ ग्रामीणों की निर्मम हत्या की। हुबली में एक आदमी गोली से मरा और बेलहो गाँव में सात आदमी घायल हुये। कई जगह प्रदर्शनकारी गोलियों के शिकार हुये। हज़ारों आदमी बग़ैर वारंट गिरफ़ार किये गये।

मिदनापुर (बंगाल) में, दानीपुर में गोली चली और लोग घायल हुये। २९ अगस्त को कई स्थानों पर गोली चली। स्कूलों से छात्र निकाल दिये गये और उन्हें फ़ौज के लिये ठहरने का स्थान बना दिया गया। तामलूक में जलूस पर लाठियाँ

बरसीं, फिर गोलियाँ चलीं। शहर भर में गोरी फ़ौजें भर गई।

बंगाल में

एक थाने पर जनता और पुलिस से मुठभेड़ हुई। एक आदमी वहीं ढेर हो गया। थोड़ी देर दूसरी मुठभेड़ में ७३ वर्षीया एक महिला गोली से मारी गई। साथ ही अनेक पुरुष भी काम आ गये। एक तीसरे झुण्ड पर भी हमला हुआ और दो आदमी मारे गये। महिषादल में ४ या ५ आदमी मरे। सुताहाट और नंदीग्राम में भी जनता और पुलिस में मुठभेड़ हुई। पुलिस ने केवल महिषादल में ६ स्थानों पर ९ बार गोलियाँ चलाईं। तामलुक में चार स्थानों पर चार बार गोलियाँ चलाईं। लाठी-चार्ज, साधारण मारपीट का अंदाज़ नहीं लगाया जा सकता।

कोंटाई में ३९ आदमी गोलियों से मरे, १७५ घायल हुये, २२८ औरतों के साथ बलात्कार किया गया अथवा बलात्कार करने की चेष्ठा की गई। ९६५ घर जलाये गये। १९६१ आदमी गिरफ़्तार करके जेल में भेजे गये। ६७२ आदमियों को विभिन्न सज़ायें मिलीं। २०५९ घर लूटे गये। ६६८४ लाठियों से घायल हुये। ३०,००० रु० सामूहिक जुर्माना हुआ। १० महिलाओं को गुण्डों के हवाले कर दिया गया। भिन्न-भिन्न स्थानों पर फ़ौजी नियम लागू किये गये, कर्फ़्यूआर्डर जारी किये गये, विशेष पुलिस छावनियाँ अस्थाई रूप से बनाई गईं।

बेलूरघाट (दिनाजपूर) में भी इसी प्रकार के अत्याचार हुये। भीड़ को तितर-बितर करने, लोगों का मनोबल कमज़ोर करने और आतंक क़ायम करने का प्रत्येक सम्भव उपाय काम में लाया

गया। तिजोरियाँ तोड़ना, रुपया-पैसा, बर्तन कपड़ा तक लूट लेना, महिलाओं को अपमानित करना आदि आम बात थी। यहाँ तक कि अनेक गाँवों की औरतों और मर्दों को जंगलों में भागकर जान बचानी पड़ी थी।

आसाम और उड़ीसा

आसाम में परवश जनता पर लाठी, गोलियों का हमला, मिलीटरी का जुल्म, सामूहिक जुर्माने, आतंक फैलाने के सभी निर्मम ढंग अपनाये गये। लड़कियाँ भी गोलियों की शिकार हुईं मगर हाथ का झण्डा न छोड़ा। टेकिया जुली, कामरूप, कुसोर भग, नौगाँव, तिलक डेका, बरहमपुर आदि सभी स्थानों में लगातार जनता ने पुलिस की गोलियों का मुक़ाबिला शान से किया। फासियाँ, मारपीट के लिये बनीं टिकटियाँ, फ़ौजी मज़ालिम सबने मिलकर जनता की कमर तोड़ने की कोशिश की।

उड़ीसा में, बालासोर, कोरापूर, कनाल, नयागढ़, तालचर में दमन चक्र पूरी तेज़ी से चला। केवल कोरापुर में जिसे उड़ीसा का 'बेल्सन कैम्प' कहा जाता है ५० राजनैतिक बन्दी जेल ही में मर गये। इस प्रान्त में कुल मिलाकर ३२४ बार लाठी चार्ज हुये, और ४१ बार गोलियाँ चलीं जिनके फल स्वरूप २८ आदमी मर पीटे गये। ३ आदमी पेड़ से उल्टे लटकाये गये और बेत तथा लाठी से गये। १२ बार औरतों पर अत्याचार हुये।

जबलपूर में श्री गुलाबसिंह शहीद हुये। वैतूल में तीन स्थानों पर गोलियाँ चलीं। नतीजे में श्री वीरशाह गोण्ड का शरीरान्त हो गया। एक बच्चा केवल इस अपराध में मार दिया गया कि उसने

अधिकारियों से पूछा कि उसके पिता के साथ दुर्व्यवहार क्यों किया गया। नरसिंहपूर, सागर, मँडला, आदि

महाकोशल

में अमानुषिक बबेरता दिखाई गई। शरीर से छीनकर श्रीमती काशीबाई की साड़ी जलाई गई, गाँधो-टोपियाँ फेंक दी गईं। उदयचन्द ने बटन खोलकर सीने पर गोली खाईं। २० अगस्त को बारा वासिनी में गोली काण्ड हुआ। अनेक घायल हुये, एक आदमी मर गया।

सतारा, कोल्हापूर आदि की घटनायें भी रोमान्चकारीं थीं। सतारा में नमक मिलाये पानी में चमड़े को भिगोकर क़ैदियों पर प्रहार किया जाता। सतारा ने बहुत दिनों तक अपनी बग़ावत की सत्ता क़ायम रखी और पंचायत राज चलाया।

बिहार के लगभग सभी ज़िलों और यू० पी० के पूरबी ज़िलों में आन्दोलन कारी अधिक बलवान थे। उनका

बिहार

संगठन अच्छा था, साथ ही, उन्होंने सरकारी जायदाद को हानि भी अधिक पहुँचाई। सुदूर गाँवों तक पहुँचने वाली आन्दोलन की लहरों ने जनता को उद्वेलित किया। नतीजे में, लगभग २८० रेलवे स्टेशन बर्बाद कर दिये गये। इनमें से १८० सिर्फ़ बिहार और पूरबी यू० पी० में स्थित थे।

पटना कुछ दिनों के लिये संसार से अलग हो गया। यातायात के सारे साधन तोड़ फोड़ डाले गये। बड़े-बड़े अफ़सर या तो भाग गये या फँस जाने पर प्राण रक्षा की भीख माँगी। चारों तरफ़ आन्दोलन-कारियों का आतंक था। ज़िले-ज़िले में हज़ारों का

जत्था घूम-घूम आग लगाता, झण्डा फहराता, तोड़ फोड़ करता चला जाता।

थोड़े ही दिनों बाद शासकों की बारी आई। काउन्सिल आफ़ स्टेट के सदस्य माननीय श्री नारायण महथा ने एक बैठक में कहा:—

"मुझे पुलिस और फ़ौज के अत्याचारों, जनता की सम्पत्ति की लूट खसोट, गाँव जलाने, गिरफ़्तारी की धमकी देकर रुपये ऐंठने और इसी के लिये बर्बर अत्याचार की बहुत सी रिपोर्टें मिली हैं......बाज़ार की बड़ी-बड़ी दूकानें लूटी गईं और गाँव के गाँव जलाये गये।...ये दृश्य मरते समय तक मुझे याद रहेंगे।"

पटना, शाहाबाद, मुँगेर, गया, हज़ारी बाग़, पलामू, राँची, मान भूमि, सिंह भूमि, पूर्णिया, सारन, मुज़फ़्फ़रपुर, दरभंगा, चम्पारन आदि ज़िलों में पुलिस के अत्याचार हुये। जनता पर भाले से हमला किया गया, गोलियों से ११ बालक केवल एक घटना में मारे गये।

पटने में सेक्रेटेरियट के गुम्बद पर तिरंगा झण्डा लहराने के प्रयास में एकत्रित छात्र समूह पर गोली चली, ६ छात्र वहीं धाराशायी हो गये। १४ अगस्त को शहर टामियों के हाथ में दे दिया गया। दूकानदार, अध्यापक, वकील, डाक्टर सभी खुले आम पीटे जाने लगे। नगर के सम्मानित पुरुषों से नाली साफ़ कराई गई। पटने के अलावा बख्तियारपुर, बाढ़ विक्रम, हिलसा, और फुलवारी में गोलियों से १७ आदमी मरे। आरा में, अहितुखा में ३, सत पहाड़ी पर १, जमीरा में ३, कोईलवर में १, बिहिया में ४

और केटेया में ३ व्यक्ति मारे गये। डुमराँव में ३ आदमी मारे गये, सहसराम के जलूस पर गोलियाँ बरसाई गईं। ४ आदमी मरे, अनेकों घायल हुये। कुल मिलाकर शाहाबाद में ७५ आदमी मरे और सैकड़ों घायल हुये। २००० आदमी गिरफ़ार हुये, ५ आदमियों को फाँसी की सज़ा हुई। लगभग ७०,००० रु० सामूहिक और साधारण जुर्माने हुये।

मुँगेर में हवाई जहाज़ से बम बरसाये गये। ४९ आदमी वहीं मर गये और ३५ बुरी तरह घायल हुये। ज़िले में १६ स्थानों पर गोलियाँ चलीं, जिनमें ४० आदमी मरे। ज़िले पर १९७, ७०० रु० सामूहिक जुर्माना लगाया गया। ३८८ गिरफ़ार व्यक्तियों को सज़ायें मिली।

हज़ारी बाग़ में १३५०० व्यक्ति गिरफ़ार हुये जिनमें ७००० को सज़ा सुनाई गई। ८८ आदमी गोली से मरे, ४५० आदमी ज़ुल्मों से मर गये। १७७, २०० रु० सामूहिक जुर्माने में वसूल हुये।

पूर्णिया में १,४७५ आदमी गिरफ़ार हुये, ७०० को सज़ा हुई, ५०० घर जलाये गये, १, २८, ००० रु० जुर्माना हुआ।

भागलपुर में, २१८ आदमी मरे, २८० बुरी तरह घायल हुये। जेल के भीतर भी बग़ावत हुई और लगभग सवा सौ बन्दी गोलियों से मार दिये गये। १००० व्यक्तियों को सज़ायें हुईं और २, १८, ४८० रु० सामूहिक जुर्माना हुआ।

मुज़फ़्फ़रपूर में, १२ स्थानों पर गोली चलाई गईं। ५० आदमी मरे और लगभग १०० व्यक्ति घायल हुये। ३, ६९, ००० रु० सामूहिक जुर्माना हुआ।

दरभंगा ज़िले में, ३८ आदमी मरे और सैकड़ों घायल हुये। ४, ८८, ६०० रुपया जुर्माना हुआ।

चम्पारन में, २२ मरे, ५५ आदमी घायल हुये। १,०३,३५० रु० सामूहिक जुर्माना हुआ।

इस प्रकार थोड़े में बिहार प्रान्त के कुछ ज़िलों में होने वाले जुल्मों का एक मामूली चित्र हमारी आँखों के सामने आ जाता है। अब यू० पी० के कुछ ज़िलों का चित्र देखिये।

संयुक्त प्रान्त

बलिया शहर में गोली चली तो ९ आदमी मारे गये। रसड़ा में ३ आदमी बाड़े में बन्द कर गोलियों से मारे गये। बैरिया थाने के हाते में शान्त भाव से बैठी हुई जनता पर गोलियां चलाई गईं। २२ आदमी मारे गये। कौशल्या कुमार नामी किशोर झण्डा फहराते हुये संगीन से मारा गया। २२ और २३ अगस्त को नेदर सोल और मार्शस्मिथ दलबल के साथ वहाँ पहुँचे। लूट, खसोट, मारपीट का बाज़ार गर्म हो गया। खुले आम बेत लगाये गये, किरचें भोंकी गईं। हाथी के पाँव में बाँध कर लोग घसीटे गये।

बलिया पर १२ लाख रुपया जुर्माना हुआ। कहा जाता है २९ लाख से अधिक रुपया वसूल किया गया। ४९ आदमी गोलियों के शिकार हुये। १०५ मकान जलाये गये। १०० से अधिक मकान गिरा दिये गये जिनसे लगभग ३० लाख के नुक़सान का अन्दाज़ा लगाया जाता है। पूरी रिपोर्ट प्राप्त करना असम्भव है। महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार तो आम चीज़ थी। इस तरह से जुल्म करके अँग्रेज़ी राज्य फिर से स्थापित हुआ। एक सरकारी अधिकारी ने

दिल्ली तार दिया, "बलिया पर फिर से अधिकार हो गया है। (Ballia reconquered) ।"

गोरखपुर में, उरुवा क़स्बा के बनिये लूटे और पीटे गये। परसा गाँव में सभी घर लूट लिये गये। लोग बन्दूक के कुन्दों और बेतों से पीटे गये। ३ दिन की प्रसूता स्त्री को घर से बाहर निकाल दिया गया। उरूवा, खोपापार, सिसई, देवघाट, भाटपार आदि स्थानों पर अनेकों बार आदमी बाँध कर मारे गये, गड्ढों में ढकेल दिये गये, अन्न, बर्तन, कपड़ा, सब कुछ ले लिया गया।

आज़मगढ़ में, मधुबन थाने में, लगभग ४० आदमी मारे गये। जुल्मों के कारण लगभग, ४० आदमी और मरे। मऊ में, गोरों ने निहत्थी जनता पर गोलियाँ चलाईं। बीसों आदमी घायल हुये, १ मर गया। गोरों के बलात्कार से राम नगर गाँव की हरिजन युवती तत्काल मर गई। छोटी-छोटी लड़कियों के साथ भी यह दुष्कर्म किया गया। परवध गाँव में ३ आदमी गोली से मरे। अतरौलिया में २ मरे, अनेकों घायल हुये। गोरखपूर ज़िला काँग्रेस कमेटी ने बताया कि लगभग १०७ आदमी ज़िले भर में मारे गये। १ लाख, ६० हज़ार जुर्माना हुआ। मि० हार्डी की ख्याति इसी गोरखपूर में बढ़ी थी।

गाज़ीपूर में, सादात थाने पर भीड़ पर गोलियाँ बरसाई गईं। मुहम्मदाबाद में, ६ आदमी मारे गये। शेरपुर में गोलियाँ चलीं। नेदरसोल और हार्डी की देख-रेख में इसी गाज़ीपूर में बीसों आदमी पेड़ों से लटकाकर मारे गये, कोड़ों से पीटे गये, स्त्रियों के गहने छीने गये और उन पर बलात्कार हुआ, बच्चों की टाँगें चीरी

की तायदाद सैकड़ों तक पहुँचती है। हवालात की कोठरियों में जो ज़ुल्म हुये उसके लिये कोई भी सभ्य सरकार शर्मिन्दा हो जायेगी।

हमने ऊपर बहुत थोड़े में, केवल कुछ स्थानों पर होने वाले ज़ुल्मों का वर्णन संक्षेप में किया है। पुलिस के अत्याचारों और फ़ौजी शासन से जनता का आन्दोलन गुप्त हो गया। उसका बाहरी प्रदर्शन क़ायम रह सका। धीरे-धीरे यह आन्दोलन जनता का न रह कर कुछ पार्टियों का हो गया। उसकी रूप रेखा बदल गई, उसका नेतृत्व बदल गया, उसकी कार्य प्रणाली बदल गई। गुप्त रूप से चलने वाला यह आन्दोलन भी धीरे-धीरे ख़त्म हो गया।

आन्दोलन की विशेषता

आरम्भिक अवस्था में यह आन्दोलन जिस तरह चला और जिस प्रकार जनता ने पुलिस और फ़ौजों का मुक़ाबिला किया उससे ये बातें साबित हो गईं:—

(१) जनता निर्भीक और निडर थी। उसे अब पुराने शुद्ध सत्याग्रह वाले ढंग पर विश्वास न था, बल्कि वह डटकर पुलिस के ज़ुल्मों का मुक़ाबिला करने को तैयार थी। वह लुक छिपकर हमला करने और बचकर निकल जाने आदि के ढंग को अपना रही थी। उसने सामने आकर मुक़ाबिला किया, साथ ही गुरिल्ला नीति भी अपनाई।

(२) पुलिस और शासकों ने पूरी शक्ति लगाकर जनता को दबाने का प्रयत्न किया। आई० सी० एस० और आई० पी० एस० के अफ़सरों ने भी जी खोलकर नादिरशाही की। फिर भी जनता

का विरोध, उसका संगठित प्रतिषोध, उसकी वीरता और निपुण कार्य शैली ने नौकरशाही के दिल को दहला दिया। उसे लगा कि अब वह हमेशा के लिये जनता को दबाकर रख न सकेगी। उसे यह भी अनुभव हुआ कि उसका रोब-दाब, उसकी ख्याति, उसकी पोजीशन सभी कुछ काफ़ूर हुये जा रहे हैं। अपने नंगे ज़ुल्मों के लिये उसे जिस नैतिक आधार और बल की ज़रूरत थी, उसे लगा कि वह भी धीरे-धीरे पिघलता जा रहा है। यद्यपि जनता पर नौकरशाही का हमला नृशंस से नृशंस रूप में होता रहा फिर भी मन में नौकरशाही के अलमबरदार यह समझ रहे थे कि उनका अन्तिम समय आगया है। इस भावना ने उन्हें कायर बना दिया और उन्होंने निर्मम हो कायरता पूर्ण हमलों के द्वारा जनता को कुचलना चाहा। यद्यपि कुछ समय के लिये जनता दब गई, फिर भी बाद के इतिहास ने यह प्रमाणित कर दिया कि नौकरशाही का अन्तिम प्रयत्न सचमुच ही अन्तिम बनकर रह गया।

(३) यद्यपि गांधी जी ने साफ़ साफ़ कह दिया दिया था कि उनके प्रोग्राम में हिंसा तथा गुप्त प्रयत्नों का कोई स्थान नहीं था, फिर भी जनता ने हिंसा और गुप्त प्रयत्न—दोनों का सहारा लिया। इस बात ने प्रमाणित कर दिया कि नेतृत्व के गिरफ़्तार हो जाने के बाद जनता स्वयं अपने हाँथों में नेतृत्व ले सकती है और नौकरशाही के दमन का सामना कर सकती है।

(४) आन्दोलन के आरम्भ के दिनों में यद्यपि जापानी हमले हो रहे थे, फिर भी जनता की निगाहें जापान की ओर नहीं लगी हुई

थीं। उसे विश्वास था कि शीघ्र ही वह शासन की बागडोर अपने हाथों में लेकर जापान का मुक़ाबिला करेगी।

आन्दोलन का अन्त

लेकिन फ़ारवर्ड ब्लाक और काँग्रेस समाजवादी दल के हाँथ में जब इस आन्दोलन की बागडोर गई तो इसने करवट बदली और अब आन्दोलन का रूप बदल गया। निश्चित रूप से अब लोगों की आँखें जापान की ओर लगीं। फ़ारवर्ड ब्लाक के पर्चों और बहु से कांग्रेस समाजवादी दल के पर्चों के द्वारा जापान का स्वागत किया गया। नवम्बर में श्री जयप्रकाश नारायण हजारीबाग़ जेल से निकल भागे। जेल से बाहर आकर उन्होंने कई पर्चे निकाले। आजादी के लिये लड़नेवाले तमाम सिपाहियों के नाम वक्तव्य देते हुये उन्होंने कहा :—

"निस्सन्देह कुछ समय के लिये आन्दोलन दब गया है। लेकिन इससे हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये। सच तो यह है कि अगर हमारा पहला हमला ही कामयाब हो गया होता और अगर उसने साम्राज्यवाद को नष्ट कर दिया होता तो हमें आश्चर्य होता।......हमारा आन्दोलन इसलिये नाकामियाब रहा कि राष्ट्रीय क्रान्तिकारी शक्तियों का संगठन इतना पक्का नहीं था कि वह अपना काम करती रहे और उभरती हुई नई ताक़तों को बलशाली नेतृत्व प्रदान कर सके।......दूसरे, हमारा आन्दोलन इसलिये भी नाकामियाब रहा कि संघर्ष के पहिले हिस्से के समाप्त होने के बाद जनता को कोई प्रोग्राम ही नहीं दिया जा सका।......इसलिये अब हमें चाहिये कि हम अपने और जनता के दिलों की उदासी को खत्म करें।......साथ ही हम इस क्रान्ति की रूप रेखा को सदा अपने सामने रखें।...हम अपने

को अगले बड़े हमले के लिये तैयार करें। इसलिये हमारा नारा है, संगठन करो, अनुशासन पैदा करो।......

"लेकिन तैयारी से हमारा यह मतलब नहीं है कि मौजूदा समय की लड़ाई बिल्कुल बन्द हो जानी चाहिये। छोटी मोटी लड़ाइयाँ, अपनी-अपनी सीमाओं पर मुठभेड़, इत्यादि तो चलती ही रहनी चाहिये। ये चीज़ें स्वयं आक्रमण की तैयारी में सहायक होंगी।"

जयप्रकाश बाबू के इस वक्तव्य के बहुत पहिले ही आल इण्डिया काँग्रेस कमेटी के नाम से कभी डा० राममनोहर लोहिया कभी दूसरे काँग्रेस समाजवादी नेता इसी से मिलते जुलते वक्तव्य अथवा सर-कुलर निकालते रहे।

उधर फ़ारवर्ड ब्लाक के बचे खुचे नेता अथवा कार्यकर्त्ता कभी-कभी तोड़ फोड़ करने, बम मारने अथवा जापानी सेनाओं का स्वागत करने के लिये नारे देते रहे।

लेकिन इन प्रयत्नों का फल कुछ नहीं निकला। सारा का सारा आन्दोलन—प्रत्यक्ष तथा गुप्त—केवल कुछ महीनों में ही दब गया। नौकरशाही ने अपनी पूरीशक्ति लगाकर उसे कुचल दिया और ऐसा मालूम पड़ने लगा कि अब बहुत दिनों तक भारतीय जनता अपनी कमर सीधी न कर सकेगी।

कम्युनिस्ट पार्टी ने काँग्रेस नेताओं के गिरफ़ार होते ही नारा दिया, "नेताओं को रिहा करो, काँग्रेस लीग को मिलाकर केन्द्रीय-सरकार क़ायम करो और जापानी आक्रमणकारियों का मुक़ाबिला करो।" जनता और मज़दूरों के बीच उसका यही प्रचार चलता रहा।

लीग के बहुत से सदस्यों ने मि० जिन्ना से यह प्रार्थना की कि वे कांग्रेस नेताओं की रिहाई की माँग करें। लेकिन मि० जिन्ना ने ऐसा करना उचित नहीं समझा।

इस प्रकार राजनैतिक ज़िच चलती रही। भयानक महँगी, युद्ध, आक्रमण के ख़तरे और नौकरशाही के ज़ुल्मों के बोझ से दबी, कुचली, उदास, जनता निराश होकर बैठ रही। जेलों के भीतर बन्द नेता भी निराश होने लगे। मालूम होने लगा कि सारे देश पर ऐसा मोटा काला पर्दा पड़ गया है जिसे भेदकर उम्मेद की एक किरण का भी आना असम्भव है।

गाँधी जी का उपवास

अगस्त आन्दोलन की प्रारम्भिक अवस्था में क्या हुआ यह हम बता चुके हैं। आरम्भ काल में जनता ने किस प्रकार सरकारी मज़ालिम का विरोध किया और किस प्रकार उसने नये ढंग अपना कर लड़ाई लड़ी यह हम देख चुके हैं। हम यह भी जानते हैं कि कांग्रेस नेतृत्व की ग़ैरहाज़िरी में कांग्रेस समाजवादी दल और फ़ारवर्ड ब्लाक ने किस प्रकार आन्दोलन को चलाने का प्रयत्न किया और दोनों असफल रहे। दिसम्बर १९४२ तक पहुँचते पहुँचते आन्दोलन प्रायः समाप्त सा हो गया था। इधर उधर कहीं छिट पुट गुप्त कार्य अवश्य होते थे। परन्तु सार्वदेशिक स्तर पर कोई आंदोलन नहीं चल रहा था। सन् १९४३ की जनवरी में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। राजनैतिक ज़िच ज्यों की त्यों बनी रही।

देश की आर्थिक अवस्था ख़राब होती जा रही थी। महँगी तो

थी ही, अब चीज़ों का बाज़ारों से ग़ायब होना भी आरम्भ हो गया। सबसे पहिले छोटे सिक्कों की कमी हुई। इससे ग़रीबों को बहुत कष्ट हुआ। छोटे सिक्कों की कमी के कारण लोगों को ज़रूरत की चीज़ें ख़रीदना मुश्किल हो गया। धीरे-धीरे अनाज की महँगी ने भयावह रूप धारण करना शुरू किया। बाज़ार में चार पाँच सेर के भाव से भी गेहूँ मिलना मुश्किल हो गया। गेहूँ की महँगी के कारण दूसरे अनाजों के भी भाव चढ़े। चावल की महँगी से लोगों को अधिक कष्ट होने लगा। ख़ास तौर से बंगाल और उड़ीसा के प्रदेश में स्थिति चिंताजनक होने लगी।

इसी आर्थिक संकट और राजनैतिक ठहराव के बीच एकाएक समाचार आया कि गाँधी जी ने २१ दिन का उपवास शुरू कर दिया है। ९ फ़रवरी को गांधी जी का उपवास शुरू हुआ। उसी समय वाईसराय ने गाँधी जी के पत्रों को प्रकाशित किया और उपवास के लिये गांधी जी को ही ज़िम्मेदार ठहराया। इससे देश भर में आतंक छा गया। गाँधी जी का मूल्यवान जीवन ख़तरे में था। सरकार उन्हें किसी प्रकार छोड़ने को तैयार न थी। १३ वें दिन गाँधी जी की दशा शोचनीय हो गई। डा० विधानचन्द्र राय ने एलान कर दिया कि अब उनके बचने की कोई आशा नहीं है। सरतेज बहादुर सप्रू ने भी कहा कि अब केवल ईश्वर का ही भरोसा है। लेकिन गाँधी जी जीवित रह गये और धीरे-धीरे उपवास की पूरी अवधि कुशल-मंगल से बीत गई।

उपवास आरम्भ होने के पहिले वाईसराय ने गाँधी जी के पत्रों को प्रकाशित किया था। उनमें से एक दो अंश देख लेना ठीक

होगा। गिरफ़्तार होने के ठीक ५ दिन बाद (१४ अगस्त १९४२) गाँधी जी ने वाईसराय को एक पत्र लिखा। जिसमें उन्होंने कहा :—

"ऐसा संकट उत्पन्न करके सरकार ने ग़लती की......। अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी में दिये गये भाषणों से आप जान सकते थे कि मैं फ़ौरन ही कुछ करने नहीं जा रहा था। भाषण में जिस अवधि की बात कही गई थी उसे आप इस्तेमाल करके काँग्रेस की माँग पूरी करने की प्रत्येक सम्भावना को काम में ला सकते थे।......मैं कहना चाहता हूँ कि यह समझना कि काँग्रेस की माँग को पूरी करने से हिन्दुस्तान भर में अशान्ति फैल जाती, मानव मस्तिष्क का मज़ाक़ उड़ाना है। हाँ, उस माँग के अस्वीकार कर देने से निश्चय ही राष्ट्र और सरकार दोनों संकट में फँस गये हैं। काँग्रेस तो हिन्दुस्तान को मित्र राष्ट्रों के साथ मिला देने का पूरा प्रयत्न कर रही थी।

"अगर हिन्दुस्तान और मित्र राष्ट्रों के ध्येय की समानता के बावजूद भी काँग्रेस की माँग का जवाब सरकार तीव्र दमन से ही देना चाहती है तो मेरे यह नतीजा निकाल लेने पर, कि उसे मित्रराष्ट्रों के आदेशों की उतनी परवाह नहीं है जितनी इसकी कि साम्राज्यवादी नीति के अनुसार हिन्दुस्तान उसके अधिकार में रहे, उसे आश्चर्य नहीं होना चाहिये। इसी इरादे के कारण उसने काँग्रेस की माँग को ठुकरा दिया और सारे देश पर दमन की चक्की चलानी शुरू कर दी।"

२३ सितम्बर १९४२ को फिर गाँधी जी ने एक ख़त भारत सरकार के गृह-मंत्री को लिखा जिसमें उन्होंने कहा :—

"लगता है कि तमाम नेताओं की गिरफ़्तारी के कारण जनता क्रोध से पागल हो गई है, यहाँ तक कि उसका आत्मनियन्त्रण भी छूट

गया है। मैं समझता हूँ कि जो कुछ ध्वंस कार्य हो रहा है उसके लिये सरकार ज़िम्मेदार है, काँग्रेस नहीं।

"मेरे अनुसार सही मार्ग केवल यह है कि सरकार सभी काँग्रेस नेताओं को फ़ौरन रिहा कर दे। तमाम दमनकारी क़ानूनों को वापिस ले ले और समझौते के रास्ते ढूढ़ निकाले। निस्सन्देह ही सरकार के पास इतनी शक्ति है कि वह हिंसात्मक कार्यों को फ़ौरन दबा सकती है। दमन से असंतोष और घृणा का ही सृजन हो सकता है।"

इन पत्रों ने यह साफ़ कर दिया कि गाँधी जी अथवा काँग्रेस के ऊपर अगस्त आंदोलन की ज़िम्मेदारी नहीं है। अगस्त आंदोलन काँग्रेस अथवा गांधी जी की ओर से शुरू किया ही नहीं गया बल्कि यह कि लीडरों को गिरफ़्तार कर सरकार ने जनता के क्रोध को उभारा। जब क्रोधित होकर जनता ने आंदोलन किया तो पूरी प्रतिहिंसा के साथ सरकार ने उस पर हमला किया और उसे कुचलने की कोशिश की। अगर बात ऐसी नहीं थी तो सरकार ने गाँधी जी का १४ अगस्त वाला पत्र पहिले ही क्यों नहीं प्रकाशित किया? उसी ख़त में गाँधी जी ने लिखा था कि जनता की ग़रीबी और फ़ाक़ाकशी देखकर मेरा दिल रो रहा है और अगर मैं बाहर होता तो मैं इस समय जनता की इन दिक्क़तों को दूर करने का प्रयास करता। लेकिन सरकार अगर गाँधी जी का पत्र प्रकाशित कर देती तो जनता का वह आंदोलन उस रूप में न चलता और सरकार को हमला करने का अवसर भी न मिलता।

गाँधी जी के पत्रों का एक असर यह भी हुआ कि जो लोग तोड़-फोड़ आंदोलन चलाने के लिये काँग्रेस का नाम इस्तेमाल करते

थे उनके लिये ऐसा करना असम्भव हो गया। साथ ही, आंदोलन के नाम पर जो तरह तरह के अनैतिक कार्य, चोरी, डाके वग़ैरह हो रहे थे उनमें कमी आने लगी क्योंकि जनता के सामने भी काँग्रेस की नीति का कुछ कुछ सही ख़ाक़ा आने लगा।

लेकिन, जो गुप्त पार्टियाँ अभी तक काम कर रही थीं, वे चुप बैठ नहीं सकीं। एकबार काँग्रेस समाजवादी दल के एक पर्चे में कहा गया कि भूख हड़ताल में अगर गाँधी जी का देहांत हो जाय तो अच्छा है क्योंकि इसके फलस्वरूप जनता में क्रांति हो जायेगी। गुप्त कार्यों के लिये जब कोई मसाला न मिला तो इन पार्टियों ने एक दूसरे की बुराई ढूँढ़ना अथवा ग़द्दार कहना ही अपने कार्य-क्रम का मुख्य अंग बना लिया।

अगस्त आंदोलन के फ़ौरन बाद ही इस प्रकार का आपसी तू तू मैं मैं उस अवस्था विशेष की राजनैतिक उदासी, अक्रियता और निराशा का ही परिचायक था।

इस बीच काँग्रेस और लीग के बीच समझौता कराने का प्रयत्न जारी रहा। कम्युनिस्ट पार्टी ने इस बात के लिये सबसे अधिक प्रचार किया। गाँधी जी के अनशन के ज़माने में उसकी ओर से सारे देश में प्रचार किया गया और गाँधी जी की रिहाई की माँग रखी गई। इसी पार्टी ने मुस्लिम लीग के अनेक महत्त्वपूर्ण नेताओं को राज़ी किया कि वे गाँधी जी की रिहाई की माँग करें। यू० पी०, बंगाल, उड़ीसा, आसाम, बिहार, महाराष्ट्र आदि के प्रमुख नेताओं ने गाँधी जी की रिहाई की माँग पेश की। लेकिन इन माँगों का कोई असर सरकार पर नहीं पड़ा।

धीरे-धीरे देश की आर्थिक अवस्था अत्यंत ख़राब हो गई और जुलाई आते आते बंगाल, उड़ीसा और मालाबार में अकाल के चिन्ह स्पष्टतर होने लगे। सड़कों पर भूखे लोगों की लाशें दिखाई पड़ने लगीं।

बंगाल का अकाल

चावल का दाम २० रु० और २५ रु० मन हो गया। लोगों के पास इतना पैसा नहीं था कि जिसे देकर वे अपना पेट भर सकें। अनाज चोरों और मुनाफ़ा ख़ोरों ने अपनी ख़त्तियों में अनाज चुरा लिया और जनता को भूखों मार दिया। बंगाल के अकाल में ३० लाख से अधिक मर्द, औरत, बूढ़े, बच्चे, दानों के लिये तरस कर मर गये। उड़ीसा, मालाबार, काठियावाड़ आदि स्थानों में भी हज़ारों आदमी भूखों मर गये। सरकारी बद इन्तजामी और निकम्मेपन के कारण इजारेदारों और मुनाफ़ाख़ोरों को चोरबाज़ारी की खुली छुट्टी मिल गई और जनता के प्राण गये।

यही अवस्था कपड़ों की भी हुई। बाज़ार में कपड़ों की भी कमी हुई और मामूली दर के कपड़े भी सिल्क के भाव बिकने लगे। ग़ैर ज़िम्मेदार केन्द्रीय सरकार कपड़े अथवा अनाज के व्यापार पर कुछ भी नियन्त्रण नहीं लगा सकी और व्यापारियों ने मन माना धन कमाया। इस तरह बंगाल का मंत्रिमण्डल देखता रहा और लाखों बँगालियों को अपनी जानों से हाथ धोना पड़ा।

इस अकाल के प्रचार पर नियंत्रण लगा दिया गया। केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारों ने ऐसे नियम बना दिये जिससे अकाल संबन्धी सही समाचारों और चित्रों के छापने की मनाही कर दी गई। केवल कम्यूनिस्ट

पार्टी के पत्र, लोकयुद्ध' और 'स्टेट्स मैन' (अर्धगोरी अखबार) ने इस नियम की पर्वाह नहीं की और देश के सामने बंगाल तथा अन्य प्रांतों के अकाल का सही खाका खींचा। जनता और राष्ट्र इस मानवरचित अकाल की कहानी सुन तड़प उठा और फिर एकबार लीग-कांग्रेस समझौते की बात लोगों की जबान पर आने लगी। साथ ही, विभिन्न राजनैतिक दलों ने मिलकर अकाल पीड़ितों की सहायता की। संयुक्त सहायक समितियाँ बनी और दवायें बाँटने का भी प्रबन्ध हुआ। उस समय तक श्रीमती सरोजिनी नायडू जेल के बाहर आ चुकी थीं और उन्होंने बंगाल तथा अन्य स्थानों के अकाल के सम्बन्ध में जनता में प्रचार करने में सहयोग प्रदान किया।

कम्यूनिस्ट पार्टी ने सारे देश में भूखा बंगाल प्रदर्शिनी का संगठन किया। उसने नारा दिया; "बंगाल का अकाल सारे देश का अकाल है और बंगाल की सेवा और रक्षा ही देश की सच्ची सेवा और रक्षा है।" अक्टूबर १९४२ में ही श्री बी० टी० रणदिवे ने कहा था :—

"संकट का हल निकालने के लिये सरकार के पास कोई प्रोग्राम नहीं है। अपने दिवालियेपन और निकम्मेपन के कारण वह जनता को उसके भाग्य के सहारे छोड़ देती है।......जनता को इसलिये, मुनाफ़ाखोरी के खिलाफ़, सही मूल्य निर्धारण की नीति के पक्ष में, उत्पादन को बढ़ाने के लिये......पूरी शक्ति लगा देनी होगी।"

आगे चलकर दिसम्बर १९४२ में अन्नसंकट के हल करने के लिये मूल्य पर नियन्त्रण, स्टाक पर कन्ट्रोल आदि की माँग की

गई। गाँधी जी के अनशन के समय (फ़रवरी १९४३) फिर एक प्रस्ताव में कहा गया :—

"सरकार और जनता के बीच संघर्ष ने देश की सभी समस्याओं को गम्भीर बना दिया है। आर्थिक अस्तव्यस्तता और संकट ने जनता के लिये अन्न-संकट पैदा कर दिया।"

देश व्यापी अन्न संकट

इसलिये कम्यूनिस्ट पार्टी ने सभी स्थानों पर, सभी मुहल्लों में सर्वदली अन्न समितियाँ बनाने की अपील की और कहा कि इन समितियों का काम होगा कि वे छिपे हुये अनाज की खत्तियों का पता लगावें, खाने के सम्बन्ध की चीज़ों के आँकड़े इकट्ठे करें और कण्ट्रोल तथा राशनिग की मांग।

अन्न संकट की इस परिस्थिति पर काँग्रेस समाजवादी दल ने बिलकुल दूसरा रुख लिया। उसके नेता श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि "ग़रीबों को चाहिये कि जहाँ कहीं अनाज मिले वे लूट लें। हमें इस काम में उनकी सहायता करनी चाहिये।"

डाक्टर राममनोहर लोहिया ने कहा :—

"शहर के ग़रीबों को समझ लेना चाहिये कि अनाज चोरी और मुनाफ़ाखोरी का सरकारी नारा बिल्कुल झूठा है।......जो लोग कन्ट्रोल और राशनिग आदि की माँग करते हैं वे युद्ध-प्रयत्नों के लिये नया टैक्स लगाने की माँग भी कर सकते हैं। जनता को चाहिये कि जब तक उसमें सरकारी गोदामों को छीन लेने की शक्ति न आ जाय, वह प्रदर्शनों और कभी-कभी जेल यात्रा के द्वारा कन्ट्रोल तथा राशनिंग के नाम पर चलने वाले सरकारी मुनाफ़ाखोरी का भण्डा फोड़ करे।"

इन नेताओं के अनुसार बंगाल का अकाल और देश-व्यापी अन्न संकट को खूब बढ़जाने देना चाहिये था, क्योंकि उससे सारे देश में विद्रोह और क्रांति का वातावरण तैयार होता और बृटिश सत्ता को उखाड़ फेंका जा सकता। इसलिये जिन लोगों ने अन्नसमितियाँ बनाईं अथवा बंगाल के अकाल में सहायता देने का प्रयत्न किया उन्हें इन लोगों ने सुधारवादी और अवसरवादी कहा।

इस काल में पुराना राजनैतिक और सामाजिक व्यवहार हो जैसे बदल गया था। राजनैतिक दृष्टि से यद्यपि अँग्रेज़-विरोधी होने का दावा सभी सम्पन्न लोग कर रहे थे, लेकिन सामाजिक दृष्टि से सभी अपने अपने स्वार्थ और हितों की बात करते थे। आज़ादी के स्वर में व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा तथा धन लिप्सा के स्वर भी मिले हुये थे। सहजीवन, सहयोग, सहधर्म की युग-अर्जित थाती लुप्त हुई जा रही थी और उसके स्थान पर मुनाफ़ाखोरी, चोरबाज़ारी, धनअर्जन और व्यक्तिगत लाभ का बोलबाला हो रहा था।

आन्दोलन की समीक्षा

अगस्त आंदोलन यद्यपि सही अर्थ में नवम्बर १९४२ में ही दब गया था, लेकिन उसके साथ चलनेवाले सहयोगी ध्वंसात्मक और हिंसात्मक आंदोलन साल भर बाद तक किसी न किसी रूप में चलते रहे। और, अन्न संकट के दिनों में, सही नेतृत्व न मिलने, जनता का सहयोग प्राप्त न होने और सरकारी आतंक से परेशान हो जाने के कारण छिपे छिपे फिरनेवाले अनेकों नौजवानों को डाके आदि का आश्रय लेना पड़ा था। यह दुरावस्था इस सीमा तक पहुँच गई थी कि जेल से छूटने के बाद महात्मा गाँधी को कहना

पड़ा था कि ऐसे लोगों के साथ किसी को कोई भी सहानुभूति नहीं हो सकती।

अगस्त-आंदोलन का मूल्यांकन करना सहज नहीं है। फिर भी मोटे तौर से उसके दो पक्ष हो सकते हैं :—

(१) अ—जनता ने पहिली बार डटकर सरकार का मुक़ाबिला किया। ब—इस बार, सत्याग्रह अथवा अन्य वैधानिक मार्गों को छोड़ जनता ने रेल, तार आदि शासन के साधनों पर हमला किया। स—बृटिश शासन के प्रति विद्वेष और प्रतिशोध की भावना अपनी चरम सीमा तक पहुँच गई। पता लगा कि जनता समझौते के मार्ग हमेशा के लिये छोड़ चुकी है।

(२) अ—क्रांति के विज्ञान और कला के ज्ञान से काम नहीं लिया गया। ब—राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों और उनके सामञ्जस्य की अवहेलना की गई। सफल जन-क्रांति के लिये जिस बाह्य और आन्तरिक परिस्थिति तथा वातावरण और तैयारी की आवश्यकता और नितान्त रूप से होती है उसकी ओर ध्यान नहीं दिया गया। स—सदा ही समझौते और दबाववाली नीति का अनुसरण करने के कारण राष्ट्रीय नेतृत्व ने संघर्ष का नारा तो दे दिया परन्तु उस नारे का पूरा अर्थ न वह स्वयं समझ सकी और न जनता को समझा सकी। नतीजे में भावुकता के आधार पर कार्य करनेवाले व्यक्तियों और दलों ने सारे आन्दोलन को ग़लत रूप दे दिया और फलतः आन्दोलन असफल हो गया। द—आन्दोलन की असफलता के बाद सार्वदेशिक उदासी, उलझन और क्रोध का उभरना स्वाभाविक होता है। बुनियादी ग़लतियों को नज़र अन्दाज़ कर विभिन्न पार्टियों

और दलों को कोसना, बुराभला कहना, सरकारी एजेन्ट बताना और ख़त्म कर देने की धमकी देना भी स्वाभाविक बात है। अगस्त-आन्दोलन की असफलता के बाद यही हुआ। दूसरा नतीजा, जनता की आर्थिक और सामाजिक विशृंखलता है। बंगाल, उड़ीसा, मालाबार और काठियावाड़ का जनभक्षी अकाल, कपड़ों तथा अन्य आवश्यक पदार्थों की कमी से नंगपन भी इसी असफलता का आवश्यक नतीजा है। सही नीति का अनुसरण करने से प्रतिनिधि केन्द्रीय तथा सम्मिलित प्रान्तीय सरकारों की स्थापना हो सकती थी, जिसके नतीजे में देश की राजनैतिक अवस्था ही मूल रूप से न बदल जाती, बल्कि भयानक अकाल और नंगपन से देश को बचा लिया जाता। साथ ही, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारतीय जन-आन्दोलन अपना सही और जनतन्त्रात्मक 'रोल' अदा कर सकता और युद्ध के बाद के काल में अपना सही स्थान पाने का हक़दार बन जाता।

थोड़े में, अगस्त-आन्दोलन और उसके प्रभाव की यही समीक्षा है।

—:o:—

१३

आज का हिन्दुस्तान

[पाकिस्तान का प्रस्ताव—आत्मनिर्णय का प्रस्ताव—सी० आर० फ़ारमूला—गाँधी जी की रिहाई—जेल्डर का वक्तव्य—गाँधी जिन्ना मिलन—लियाक़त-देसाई समझौता—शिमला सम्मेलन—लेबर पार्टी की विजय-दिल्ली वार्ता—अस्थाई राष्ट्रीय सरकार—बढ़ती जनता]

पिछले अध्याय में हमने यह बताया कि किस प्रकार गाँधी जी के अनशन के बाद अगस्त आन्दोलन की परिशिष्टि भी धीरे-धीरे समाप्त हो चली थी। देश के सामने जब गाँधी जी द्वारा लिखे गये वाईसराय के नाम पत्र आये तो बहुत-सी मिथ्या धारणायें समाप्त हो गईं और आम जनता के दिमाग़ से यह बात उठ चली कि अगस्त आन्दोलन काँग्रेस द्वारा संचालित आन्दोलन था, लेकिन विभिन्न पार्टियों की ओर से अब भी प्रचार चलता रहा कि गाँधी जी के ये पत्र केवल राजनीतिक दाँव पेंच के द्योतक हैं और वस्तुतः गाँधी जी का मन्तव्य वह नहीं है जो कि उनके पत्रों से ज़ाहिर होता है। बाद में जेल्डर नामी पत्र प्रतिनिधि को अपना बयान देते हुये (जुलाई १९४४) गाँधी जी ने इस पर काफ़ी प्रकाश डाला था।

यह भी याद रखने की बात है कि गाँधी जी ही नहीं स्वयं काँग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य आन्दोलन आरम्भ होने के कुछ

ही महीनों बाद उसके उत्तरदायित्व को अस्वीकार करने लगे थे। राष्ट्रपति आज़ाद ने सभी सदस्यों की ओर से एक पत्र वाईसराय के नाम १३ फ़रवरी १९४३ को लिखा था। उस पत्र में उन्होंने कहा था :—

"आप कहते हैं कि आपके पास इस बात के काफ़ी सबूत हैं कि तोड़ फोड़ का आन्दोलन अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के गुप्त आदेशों के अनुसार चला था। आपको यह कैसे पता चला यह हम नहीं जानते। लेकिन यह हम जानते हैं और इसे हम अधिकार के साथ कह सकते हैं कि अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी ने किसी भी समय तोड़ फोड़ आन्दोलन के सम्बन्ध में विचार नहीं किया, न उसने गुप्त अथवा अन्य प्रकार के आदेश ही निकाले।"

गाँधी जी के अनशन के बाद उदारदल वालों तथा दूसरे नेताओं ने बार-बार प्रयत्न किया कि किसी प्रकार देश का राजनैतिक गतिरोध टूट जाय, परन्तु वे असफल रहे। क़ायदे-आज़म जिन्ना ने भी यह कहा कि अगर गाँधी जी मेरे पास ख़त लिखें तो सरकार उसे रोक नहीं सकती। गाँधी जी ने उन्हें ख़त लिखा, सरकार ने उस ख़त को रोक भी लिया परन्तु मि० जिन्ना ने कुछ नहीं किया। उन्होंने गाँधी जी पर दोष लगाया कि वह उन्हें सरकार से लड़वाना चाहते थे। राजा जी का प्रयत्न जारी था और वे वक्तव्यों आदि द्वारा काँग्रेस-लीग एकता का नारा दे रहे थे। यह सब कुछ तो हो रहा था लेकिन सरकार अपने स्थान पर अडिग बैठी थी और राजनैतिक गतिरोध के टूटने के आसार नज़र नहीं आ रहे थे।

अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध-क्षेत्र में मित्र राष्ट्रों की विजय हो रही थी और लग रहा था कि जिस विजय को रूस ने स्टालिन-ग्राड में (दिसम्बर १९४२) शुरू किया था वह सारे युद्ध क्षेत्र में फैल जायेगी और, शीघ्र ही फासिस्टों की हार हो जायेगी। साथ ही, यह भी आशा हो रही थी कि ज्यों-ज्यों जर्मनी और जापान की हार होती जायेगी, त्यों-त्यों मुक्त क्षेत्रों की जनता अपना सिर संगठित रूप से उठायेगी और प्रजातन्त्रवादी सरकार क़ायम करके शान्ति तथा पुनः संगठन के काम शुरू करेगी।

इस ओर शासकों का रुख़ धीरे-धीरे बदलने लगा था। लिनलिथगो के स्थान पर जब लार्ड वेवेल वाईसराय बन कर आये तो लोगों ने सोचा कि शायद यह आदमी सिपाही होने के नाते कुछ सच्चाई और ईमानदारी से काम ले। गाँधी जी ने, इसीलिये, नये वाईसराय के पास पत्र भी लिखा था। पहिले तो लार्ड वेवेल ने गाँधी जी की बातों पर ध्यान नहीं दिया और इधर-उधर के बहाने करके गतिरोध तोड़ने से इन्कार कर गये। बाद में, लन्दन के इशारे पर, उन्होंने अपने रुख़ में कुछ परिवर्तन किया।

केन्द्रीय असेम्बली में काँग्रेस के सदस्यों ने जाना शुरू किया। श्री भूला भाई देसाई और नवाब ज़ादा लियाक़त अली खाँ ने सहयोग कर सरकार को कई बार हार भी दी। काँग्रेस-लीग एकता का प्रयत्न जारी रहा और देसाई-लियाक़त पैक्ट भी हुआ। यद्यपि इस पैक्ट के सम्बन्ध में, बहुत बाद में, काफ़ी चर्चा चली और

राजनैतिक दृष्टि से इसका महत्व भी बहुत था, फिर भी, नवाब जादा लियाक़त अली ने बाद में इस पैक्ट की स्थिति से इन्कार कर दिया। कहा जाता है कि कॉंग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों को जब इस पैक्ट का पता चला तो वे बहुत नाराज़ हुये थे क्यों कि भूला भाई देसाई को इस प्रकार पैक्ट करने का अधिकार नहीं था, यद्यपि श्री भूला भाई ने इसके लिये गाँधी जी से लिखित अधिकार ले लिया था।

राजा जी ने १९४२ में ही कॉंग्रेस-लीग समझौते की बाद कही थी जिसके फलस्वरूप उन्हें वर्किंग-कमेटी की सदस्यता से इस्तीफ़ा देना पड़ा था। परन्तु अगस्त आन्दोलन के बाद भी उनका प्रयत्न जारी रहा। मार्च १९४३ में उन्होंने अपना 'फ़ारमूला' गाँधी जी को दिखाया और ५ मिनट में गाँधी जी ने उसे स्वीकार कर लिया। अपने 'फ़ारमूला' के सम्बन्ध में राजा जी ने ८ अप्रैल १९४४ को क़ायदे आज़म जिन्ना को एक पत्र लिखा था। लेकिन क़ायदे आज़म ने वह 'फ़ारमूला' स्वीकार नहीं किया। कुछ बात चीत और पत्र व्यवहार के बाद यह प्रयत्न भी समाप्त हो गया।

यहाँ, सी० आर० 'फ़ारमूला' को देख लेना आवश्यक है।

पाकिस्तान प्रस्ताव

सी० आर० 'फ़ारमूला' में मुस्लिम लीग की पाकिस्तान वाली माँग (मार्च १९४०) और कॉंग्रेस वर्किंग कमेटी के (२ अप्रैल १९४२) प्रस्ताव को ध्यान में रख कर उनकी मुख्य बातों को शामिल कर लिया गया था। लाहौर अधिवेशन द्वारा स्वीकृत मुसलिम लीग का पाकिस्तान प्रस्ताव इस प्रकार है :—

"इस देश में ऐसा कोई विधान कार्यान्वित नहीं सकेगा, अथवा मुसलमानों को स्वीकृत नहीं होगा, जिसमें निम्नलिखित बुनियादी सिद्धान्त-भौगोलिक आधार पर आपस में बिल्कुल अविभाज्य इकाइयों के खण्ड बना दिये जाँय, जिनका विधान ऐसा हो और जो इस प्रकार के पुनर्वितरण के आधार पर बने हों, जिससे कि जिन क्षेत्रों में मुसलमान संख्या की दृष्टि से बहुमत में हों, यानी, भारत के उत्तर-पश्चिम और पूर्वी ख़ित्ते-वे आपस में मिल कर स्वतन्त्र 'स्टेट' बना सकें, ऐसा राज्य जिसमें शामिल होने वाली इकाइयाँ स्वतन्त्रा और स्वाधीनता पूर्ण हों—स्वीकृत न किया गया हो।

"यह कि, इन इकाइयों के भीतर बसने वाली अल्पसंख्यक जातियों को ऐसे संरक्षण दिये जाँय जिनसे उनके धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा शासन सम्बन्धी अधिकारों और हितों की रक्षा के सम्बन्ध में उनसे राय लेकर प्रबन्ध हो; हिन्दुस्तान के उन हिस्सों में जहाँ मुसलमान अल्प संख्या में हैं, अथवा जहाँ कहीं भी दूसरे अल्पमत वाले रहते हों उनके लिये विधान में ऐसे काफ़ी, ज़ोरदार, आवश्यक संरक्षण हों जिससे उनकी धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, शासन सम्बन्धी अधिकारों और हितों की रक्षा उनकी सम्मति से हो।"

क्रिप्स प्रस्ताव पर विचार विनिमय के समय अल्पमत वालों के सम्बन्ध में काफ़ी वादा विवाद छिड़ा था। उस समय कॉंग्रेस वर्किंग कमेटी ने आत्म निर्णय के अधिकार के सम्बन्ध में यह प्रस्ताव पास किया था :—

आत्म निर्णय का प्रस्ताव

"किसी प्रान्त का केन्द्रीय संघ में न शामिल होने का नवीन सिद्धान्त

पहिले ही से स्वीकार कर लेने से भारतीय एकता की धारणा को गहरा धक्का लगेगा। यह ऐसा फूट का बीज होगा जिससे प्रान्तों में झगड़े बढ़ेंगे और जिससे हिन्दुस्तानी रियासतों के भारतीय युनियन में शामिल होने के रास्ते में कठिनाई होगी।

"काँग्रेस भारतीय स्वतन्त्रता और एकता की विचार धारा से बँध चुकी है। आज कल के ज़माने में जब कि लोग बड़े से बड़े संघों के बारे में विचार कर रहे हैं उस एकता को तोड़ना सबके हितों के लिये हानिप्रद है जिसका विचार ही कष्ट प्रद है।

"फिर भी, कमेटी किसी भी स्थानीय इकाई को यह मजबूर करने का विचार नहीं कर सकती कि वे अपने उद्घोषित और स्वीकृत मन्तव्यों के विरुद्ध भारतीय युनियन में शामिल हो जाँय।

"इस सिद्धान्त को स्वीकार करने के बाद, कमेटी समझती है कि ऐसे प्रत्येक प्रयत्न होने चाहियें जिससे सयुंक्त राष्ट्रीय जीवन के बनाने में विभिन्न इकाइयों की मदद करने के लिये उचित वातावरण तैयार हो सके। इस सिद्धान्त को स्वीकार करने का आवश्यक अर्थ है कि अब कोई ऐसे परिवर्तन न किये जाँय जिससे बखेड़ा बढ़े, या उन इकाइयों में बसने वाले अल्पसंख्यकों के साथ ज़ोर ज़बरदस्ती हो।"

दोनों प्रस्तावों का अध्ययन करने से पता चला है कि स्थानीय इकाइयों से अलग हो जाने की माँग को काँग्रेस ने स्वीकार कर लिया, और इस प्रकार मुस्लिम लीग की पाकिस्तान वाली माँग का मुख्य अंश मान लिया। राजा जी के 'फ़ारमूला' में इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया। उसमें स्थानीय इकाइयों में बसने वाली जनता का मत लेने पर भी जोर दिया गया था। साथ

ही, स्थानीय इकाइयों में बसने वाले लोगों के स्थान छोड़ कर चले जाते की बात भी कही गई थी।

राजा जी का फ़ारमूला इस प्रकार है :—

सी० आर० फ़ारमूला

"(१) आज़ाद हिन्दुस्तान के लिये विधान के सम्बन्ध में नीचे लिखी बातों को ध्यान में रख मुस्लिम लीग भारतीय स्वतन्त्रता की माँग को स्वीकार करती है। वह बीच के समय के लिये अस्थायी सरकार के बनाने में काँग्रेस के साथ सहयोग करेगी।

(२) युद्ध समाप्त होने पर एक कमीशन बिठाई जायेगी जो कि भारत के उन उत्तर-पश्चिम और पूरबी क्षेत्रों की सीमा बाँधेगी जिसमें मुसलमान आबादी बहुसंख्यक है। ऐसे सीमाबद्ध क्षेत्रों में, बालिग़ मताधिकार के आधार पर तमाम बसने वालों का मतसंग्रह किया जायेगा। अथवा इसी प्रकार का कोई और ढंग निकाला जायेगा जिससे हिन्दुस्तान से अलग प्रभुत्व पूर्ण 'स्टेट' क़ायम करने के प्रश्न पर मत जाना जा सके। अगर बहुमत चाहता है कि हिन्दुस्तान से अलग प्रभुत्व-पूर्ण 'स्टेट' क़ायम किया जाय तब इस निर्णय को अमल में लाया जावेगा, लेकिन उस समय सीमान्त के ज़िलों को अधिकार रहेगा कि वे जिस 'स्टेट' में शामिल होना चाहें, हो सकें।

(३) हर एक पार्टी को जन-मत संचय के पूर्व प्रचार करने का पूर्ण अधिकार रहेगा।

(४) अलग होते समय रक्षा, वाणिज्य और यतायात तथा दूसरे आवश्यक मामलों के सम्बन्ध में आपसी समझौता हो जायेगा।

(५) आबादी का स्थान-परिवर्तन पूर्ण स्वेच्छा पर निर्भर होगा।

(६) ऊपर लिखी बातें तभी लागू होंगी जब कि ब्रिटेन भारत के शासन के लिये पूर्ण शक्ति और ज़िम्मेदारी दे दे।

राजा जी का प्रस्ताव मि० जिन्ना ने स्वीकार नहीं किया। प्रस्ताव के पहिले अंश पर उन्हें एतराज़ तो था; लेकिन उससे अधिक एतराज़ उन्हें जन-मत वाले अंश पर था। सब लोगों को मत-प्रकाशन का अधिकार वे नहीं देना चाहते थे। इसी लिये, राजा जी-जिन्ना वार्ता भी समाप्त हो गई।

इस असफलता से राजा जी को बड़ी निराशा हुई।

गाँधी जी की रिहाई

महात्मा गाँधी ६ मई १९४४ में रिहा हो गये थे। रिहाई के समय उनका स्वास्थ्य बहुत ख़राब था। सरकारी बयान में कहा गया कि गाँधी जी की अवस्था चिन्ता जनक थी, इस लिये उनको रिहा कर दिया गया। लेकिन देश ने गाँधी जी की रिहाई को जनता की जीत समझा।

जेल से छूट कर गाँधी जी ने कुछ भी बयान देने से इनकार यह कह कर कर दिया कि मैं अपने डाक्टरों के हाथों में हूँ। लग भग डेढ़ महीने तक गाँधी जी देश की राजनीति का अध्ययन करते रहे, इसके बाद उन्होंने जुलाई के दूसरे हफ़्ते में 'न्यूज़ क्रानिकल' के प्रतिनिधि मि० जेल्डर को एक बयान दिया। उन्होंने हिन्दुस्तान और ब्रिटेन के बीच समझौता कराने, काँग्रेस और मुस्लिम लीग में मेल कराने, और १९४२ के बाद विभिन्न पार्टियों के कारनामों की जाँच पड़ताल करने की ओर नया क़दम उठाया।

जेल्डर को बयान देते हुये गाँधी जी ने अत्यन्त ज़ोरदार ढंग से अगस्त के तोड़ फोड़ आन्दोलन की ज़िम्मेदारी से काँग्रेस को बरी किया। साथ ही उन्होंने इस बात पर भी प्रकाश डाला किस तरह बेजा ढंग से काँग्रेस का नाम दूसरे लोग इस्तेमाल कर रहे थे। काँग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों से भी गाँधी जी मिलना चाहते थे क्योंकि नये सिरे से सारी परिस्थिति पर ग़ौर करना था। यह जानना था कि गाँधी जी ने अपनी रिहाई के बाद जो कुछ देखा, सुना, कहा, उसके बारे में उनका क्या रुख़ है। आन्दोलन फिर से छेड़ने के बारे में गाँधी जी ने कहा :—

जेल्डर का वक्तव्य

"सरकार ने जिस धागे को १६४२ में तोड़ दिया, वहीं से मुझे फिर शुरू करना है।......मुझे अब सत्याग्रह आन्दोलन नहीं चलाना है। मुझे देश को सन् १६४२ तक वापस नहीं ले जाना है। इतिहास की पुनरावृत्ति कभी नहीं हो सकती। काँग्रेस मुझे अधिकार न दे तो भी जनता में मेरा इतना असर है कि मैं आन्दोलन शुरू कर सकता हूँ, लेकिन ऐसा करने से ब्रिटिश हुकूमत की परेशानी ही केवल बढ़ेगी। इस लिये मैं ऐसा करना नहीं चाहता।"

अँग्रेज़ी सरकार से फ़ौरन बात चीत करने के लिये आधार रूप से उन्होंने ६ बातें रखीं।

(१) आज हिन्दुस्तान को अगर ऐसी राष्ट्रीय सरकार जो केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यों में से चुनकर बनी हो और जिसे नागरिक शासन पर पूरा अधिकार हो, मिल जाय तो उसे सन्तोष हो जायेगा। इसका यह अर्थ है कि अभी एलान

कर दिया जाय कि युद्ध के बाद हिन्दुस्तान को पूरी आज़ादी दे दी जायगी।

(२) हालाँ कि, रेलगाड़ी, डाकख़ाना और यातायात के अन्य साधन केन्द्रीय सरकार के अधिकार में हैं फिर भी उन्हें फ़ौज के हाथों में दे दिया जायेगा।

(३) वाईसराय और प्रधान सेनापति को फ़ौज के ऊपर पूरा अधिकार रहेगा।

(४) जहाँ तक सिविल शासन का सम्बन्ध है वाईसराय इँगलैण्ड के बादशाह की तरह रहेगा और ज़िम्मेदार मंत्रियों की सलाह से काम करेगा।

(५) राष्ट्रीय सरकार फ़ौजी मामलों में सम्मति और आलोचना देगी। राष्ट्रीय सरकार के हाथ में रक्षा विभाग रहेगा, जो देश की रक्षा में पूरी दिलचस्पी रखेगा और वह नीति-निर्माण में पूरी सहायता प्रदान कर सकेगा।

(६) इसलिये, उन्होंने वाईसराय से मुलाक़ात करनी चाही। वे युद्ध-प्रयत्नों में बाधा नहीं पहुँचाना चाहते थे, बल्कि उसमें मदद करना चाहते थे।

इस प्रकार गाँधी जी ने, राजा जी के आत्मनिर्णय वाले प्रस्ताव का समर्थन करके और जेल्डर के ज़रिये वाईसराय के सामने अपने प्रस्ताव को रखकर, राजनैतिक गतिरोध के विरुद्ध संघर्ष में पहल क़दमी की। एमरी और लिनलिथगो ने हिन्दुस्तान को फ़ासिस्ट-वाद का समर्थक और पराजयवादी कहा था। उनके इस षड़यन्त्र को गाँधी जी ने अन्तिम गहरा धक्का दिया।

गाँधी जी ने १५ जुलाई १९४४ को वाईसराय को पत्र लिखा। लेकिन वाईसराय ने कोरा जवाब दे दिया। फिर भी गाँधी जी ने अपना प्रस्ताव सामने रखा। वाईसराय ने विवरण सहित उत्तर दिया और अन्त में कह दिया कि बात चीत से कोई लाभ नहीं होगा। गाँधी जी को इससे बड़ा क्षोभ हुआ।

गाँधी-जिन्ना मिलन

इसके बाद गाँधी जी ने जिन्ना से बात चीत करने का प्रस्ताव रखा। जिन्ना ने प्रस्ताव मंजूर कर लिया और सारे देश में ख़ुशी की लहर दौड़ गई। इस समय काँग्रेस और मुस्लिम लीग के कार्यकर्ता तथा सभी हिन्दू-मुसलमान यही कामना कर रहे थे कि किसी प्रकार इन दो महान नेताओं में समझौता हो जाय और देश का राजनैतिक गतिरोध रुक जाय।

९ सितम्बर और २७ सितम्बर (१९४४) के बीच गाँधी जी १४ बार मि० जिन्ना से मिले। शुरू में १९ अगस्त को मुलाक़ात होने वाली थी, परन्तु मि० जिन्ना के बीमार पड़ जाने से मुलाक़ात ९ सितम्बर के पहिले नहीं हो सकी। बात चीत के साथ पत्र व्यवहार और नोटों की अदला बदली भी होती रही। लेकिन जैसा कि हम जानते हैं, गाँधी-जिन्ना मिलन असफल रहा और देश में निराशा का अँधकार छा गया।

असफलता के क्या कारण थे ?

(१) गाँधी जी ने यह नहीं माना कि स्वयं पाकिस्तान की माँग कुछ दूर तक मुसलमानों की आज़ादी की भावना का द्योतक है।

(२) लीग द्वारा आयोजित आन्दोलन अपने क्षेत्रों में मुसलमानों की पूर्ण स्वाधीनता के लिये है। यह गाँधी जी ने नहीं देखा।

(३) सवाल यही नहीं था कि मि० जिन्ना क्या चाहते या कहते हैं। असली समस्या यह थी कि देश की चौथाई आबादी को स्वातन्त्र्य संग्राम में कैसे शामिल किया जाय। इस ओर गाँधी जी का ध्यान नहीं गया। साथ ही, लीग की यह भावना कि वह अन्य अल्पमतवालों अथवा जातियों के ऊपर अनुचित सत्ता क़ायम रखे, गाँधी जी को मान्य नहीं थी ?

मिस्टर जिन्ना ने क्या नहीं समझा ?

(१) अँग्रेज़ी साम्राज्यवादी पाकिस्तान की माँग कभी भी पूरी नहीं करेंगे। पाकिस्तान की माँग तभी पूरी हो सकती है जब कि उसके चाहने वाले स्वातन्त्र्य संग्राम में संयुक्त रूप से शामिल हों।

(२) कांग्रेस आन्दोलन हिन्दुओं का नहीं सारे राष्ट्र का आन्दोलन है

(३) पाकिस्तान के सहयोगी अपने भाई हिन्दू ही हो सकते हैं और जब तक उनके हृदयों को, उनके नेताओं को और उनकी संख्या को जीत न लिया जाय तब तक पाकिस्तान की माँग पूरी नहीं हो सकती।

समझौते के टूटने के बाद दोनों नेताओं ने पूर्ण शान्ति की अपील की और सब्र रखने के लिये जनता से कहा।

गाँधी जी ने कहा :—

"हम मित्र की हैसियत से ही अलग हुये हैं। हमारे ये दिन नष्ट नहीं

हुये। मुझे विश्वास हो गया कि मि० जिन्ना अच्छे आदमी हैं। मुझे आशा है कि हम लोग फिर मिलेंगे।"

लियाक़त-देसाई समझौता

इसके बाद जनवरी, १९४५ में लियाक़त—देसाई समझौता हुआ। दोनों नेताओं ने कॉंग्रेस-लीग में एकता कराने के लिये समझौते के एक मसौदे पर दस्तख़त किये। समझौता वेवेल को दिखाया गया जिसे लेकर वह विलायत गये और वहाँ चर्चिल तथा एमरी आदि से आदेश लेकर हिन्दुस्तान वापस आये। समझौते की शर्तें इस प्रकार थीं

(१) नीचे लिखे आधार पर कॉंग्रेस और लीग एक अस्थाई राष्ट्रीय सरकार बनायेगी जो वर्तमान विधान के अन्तर्गत रह कर काम करेगी :—

अ —वाईसराय की नई कार्य कारणी में कॉंग्रेस और लीग को बराबर सीटें मिलेंगी।

आ —नई सरकार बनाते समय अछूतों और सिक्खों के हितों को नहीं भुलाया जायगा।

इ—कमाण्डर-इन-चीफ़ वाईसराय की कार्य कारिणी के एक्स-आफ़ीशियो सदस्य रहेंगे।

(२) इस प्रकार जो कार्य कारिणी बनेगी वह ऐसे किसी प्रस्ताव को नहीं मानेगी जिसका केन्द्रीय धारा सभा के निर्वाचित सदस्यों का बहुमत समर्थन नहीं करेगा।

(३) पद-ग्रहण करने के बाद नई सरकार तुरन्त कॉंग्रेसी कार्य-कारिणी के तमाम सदस्यों और दूसरे कॉंग्रेस जनों को रिहा कर देगी।

(४) केन्द्र में सरकार बन जाने के बाद उन तमाम प्रान्तों में भी जिनमें धारा ६३ के अनुसार शासन चलाया जा रहा है, काँग्रेस और लीग के संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनाये जायेंगे।

(५) वाईसराय से कहा जाय कि वह उपरोक्त आधार पर हिन्दुस्तान के सामने एक नया प्रस्ताव रक्खें।

१४ जून १९४५ को वाईसराय ने काँग्रेस कार्य कारिणी के सदस्यों की रिहाई का एलान किया और हिन्दू-मुस्लिम समस्याओं को सुलझाने और केन्द्रीय सरकार को क़ायम करने के लिये हिन्दू-मुसलिम प्रतिनिधियों की संख्या में समानता की चर्चा की। गाँधी जी ने फ़ौरन चेतावनी दी कि अगर काँग्रेस-लीग समानता (Parity) के स्थान पर हिन्दू-मुस्लिम समानता का प्रश्न उठाया गया तो सारा प्रस्ताव बेकार हो जायेगा। १५ जून १९४५ को एक वक्तव्य में गाँधी जी ने कहा :-

"श्री भूला भाई के प्रस्ताव में वह रंग ज़रा भी नहीं है जो वाईसराय के ब्राडकास्ट में नज़र आता है। श्री भूला भाई ने अपने प्रस्ताव के बारे में मेरी राय ली थी, और मैंने उन्हें जो राय दी उसके लिये मुझे शर्म नहीं है। साम्प्रदायिक त्रिकोण को सुलझाने की दृष्टि से मुझे उनका प्रस्ताव आकर्षक लगा। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि काँग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों पर मेरा जो कुछ प्रभाव है मैं उसका उपयोग करूँगा और उन्हें बताऊँगा कि किन कारणों से प्रेरित होकर मैंने श्री देशाई का प्रस्ताव स्वीकार किया है। और, मुझे इस बात में सन्देह नहीं है कि यदि समझौता करने वाले दोनों पक्ष अपने अनुयायिओं का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं

और दोनों का उद्देश्य हिन्दुस्तान की आज़ादी है तो भविष्य सुखद सिद्ध होगा।"

इसीलिये गाँधी जी वेवेल-योजना की हिन्दू-मुस्लिम समानता वाली शर्त को काँग्रेस-लीग समानता में बदलवाना चाहते थे। लेकिन वाईसराय के ब्राडकास्ट में यही कमी—जोकि ख़तरनाक थी—गाँधी जी को दिखाई दी। गाँधी जी ने १७ जून को वाईसराय को लिखा :

"यदि सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों की समानता के प्रस्ताव में परिवर्तन नहीं किया गया, तो आप अनजाने में परन्तु निश्चय ही सम्मेलन का उद्देश्य असफल कर देंगे। हाँ, काँग्रेस और लीग की समानता समझ में आती है।"

इसके बाद शिमला सम्मेलन हुआ। शिमला सम्मेलन में काँग्रेस के छूटे हुये सदस्य शामिल हुये। सम्मेलन प्रायः तीन हफ़्ते चलता रहा, लेकिन अन्त में वह असफल हो गया। असफलता का कारण था राष्ट्रीय मुसलमानों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न। पहिले काँग्रेस ने २ सीटें राष्ट्रीय मुसलमानों के लिये माँगी। बाद में वह एक सीट के लिये भी तैयार हो गई। लेकिन मि० जिन्ना ने काँग्रेस की माँग पूरी करने से इन्कार कर दिया।

शिमला सम्मेलन

शिमला सम्मेलन में शामिल होने के पहिले काँग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों ने इस बात की गम्भीरता को नहीं समझा कि अगर काँग्रेस-लीग के स्थान पर हिन्दू-मुसलमानों की समानता का प्रश्न रखा जायेगा तो सम्मेलन सफल न हो सकेगा।

उनकी धारणा थी कॉंग्रेस लीग समानता की बात न कही जाय बल्कि लीग को पीछे छोड़ कर सुलहनामे की बात चीत की जाय। हिन्दू-मुस्लिम समानता की माँग रखी जाय और मुसलमानों में दो सीटें राष्ट्रीय मुसलमानों को दी जाँय।

वर्किंग कमेटी के सदस्यों का यह रुख देख कर गाँधी जी चुप हो गये। गाँधी जी मि० जिन्ना से मिलना चाहते थे, लेकिन काँग्रेस कार्य कारिणी ने फ़ैसला किया कि ऐसा नहीं हो सकता।

उधर मि० जिन्ना ख़ामोश बैठे रहे। उन्होंने एक बार भी यह नहीं कहा कि वह काँग्रेस-लीग समानता को स्वीकार करेंगे। इससे गाँधी जी और राजा जी का हाथ कमज़ोर होने लगा और दूसरे लोगों को बल प्राप्त हुआ। मि० जिन्ना की चाल यह थी कि अगर काँग्रेस हिन्दू-मुस्लिम समानता को स्वीकार कर लेगी तो लीग मुसलमानों की एक मात्र संस्था बन जायेगी, नतीजे में काँग्रेस को केवल हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार होगा। लेकिन मि० जिन्ना के ध्यान में यह बात नहीं आई कि इसी कारण से सारा सम्मेलन असफल हो जायेगा।

इस प्रकार वेवेल का प्रस्ताव काँग्रेस और लीग दोनों संस्थाओं के नेताओं को लियाक़त-देसाई समझौते से अच्छा लगा। मौ० आज़ाद को यक़ीन था कि वह वेवेल पर ज़ोर डाल कर काँग्रेस के राष्ट्रीय स्वरूप की रक्षा करने में सफल होंगे। मि० जिन्ना यह सोचते थे कि वह वेवेल को समझा-बुझा कर लीग को मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था और काँग्रेस को हिन्दू संस्था मनवा लेंगे।

अन्त में जैसा कि हमने ऊपर कहा है सम्मेलन असफल हुआ। सम्मेलन की असफलता से लोगों को बहुत कष्ट हुआ। काँग्रेस और लीग दोनों संस्थाओं में ऐसे लोग थे जो कि किसी भी क़ीमत पर काँग्रेस-लीग एकता चाहते थे। ऐसे लोगों के हाथ टूट गये। केवल १ सीट के लिये शिमला सम्मेलन असफल हो गया।

सम्मेलन के असफल होने के बाद मौलाना आजाद ने श्री नगर (काश्मीर) से एक बयान दिया जिसमें नये सुझाव रखे गये और काँग्रेस तथा लीग को बहुत निकट लाने का प्रयत्न किया गया। लेकिन कुछ समय बाद जब बम्बई में अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी की बैठक हुई तो मौलाना को अपना रुख़ बदलना पड़ा। उसी के बाद काँग्रेस-लीग एकता चाहने वाले पंजाब काँग्रेस कमेटी के सभापति को काँग्रेस से इस्तीफ़ा देना पड़ा था।

लेबर पार्टी की विजय

उधर पाँच जुलाई को लेबर पार्टी की विजय का एलान हो गया और एमरी जैसे पुराने कट्टर पन्थी हार गये। यह विजय महत्वपूर्ण थी क्योंकि जिन लोगों के अधिनायकत्व में युद्ध में जीत हुई थी और जिन्हें इसी कारण से फिर भी चुन लिये जाने का पूरा भरोसा था वही लोग मुँहकी खा गये। लेबर पार्टी की जीत को एक शान्ति पूर्ण-क्रान्ति माना गया और लोगों को आशा बंधी कि ब्रिटेन की स्थानीय नीति में ही नहीं बल्कि भारतीय नीत में भी परिवर्तन होगा और तमाम औपनिवेशिक प्रदेशों के साथ वही व्यवहार होगा जिसके लिये चुनाव के घोषणा-पत्र में लेबर पार्टी ने एलान किया था।

एमरी की हार से हिन्दुस्तानियों को अधिक प्रसन्नता हुई। उनके विरोधी श्री रजनी पाम दत्त को हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय नेताओं की शुभ-कामना प्राप्त थी। इसलिये दत्त की विजय से हिन्दुस्तानियों को सन्तोष हुआ। साथ ही, यह भरोसा भी हुआ कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ बृटिश जनता की सक्रिय सहानुभूति दिनों दिन बढ़ती जायेगी।

लेबर पार्टी ने अपने घोषणा पत्र में हिन्दुस्तान की आज़ादी के समर्थन का एलान किया था। इसी घोषणा के अनुरूप हिन्दुस्तान की राजनैतिक परिस्थिति की जाँच करने तथा राष्ट्रीय नेताओं से सम्पर्क स्थापित करने के लिये लेबर मन्त्रिमण्डल ने कुछ प्रतिनिधियों को हिन्दुस्तान भेजा। इस प्रतिनिधि-मण्डल में सभी दलों के लोग शामिल थे।

प्रतिनिधि-मण्डल ने सभी दलों के नेताओं से भेंट की और उनके विभिन्न मतों को जानने—समझने का प्रयत्न किया। पूरी जानकारी हासिल कर मण्डल वापस लौट गया। इसके बाद राजनैतिक क्षेत्रों में फिर आशा बँधने लगी कि समझौते की कोई नई सूरत निकल सकेगी।

शिमला सम्मेलन की असफलता के बाद ही यह कहा गया था कि प्रान्तीय असेम्बलियों तथा केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा का चुनाव फिर से होगा, जिससे यह पता चल जाय कि विभिन्न पार्टियों का जनता से ऊपर कितना असर है। इसके बाद इसका अन्दाज़ लग सकेगा कि किस पार्टी की कितनी शक्ति है और उसे किस प्रकार का और कितना प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये। जाड़ों में

असेम्बली का चुनाव हो गया और उसके बाद प्रान्तीय सीटों का चुनाव भी हुआ। मुसलमानों का एक मात्र बहुमत मुस्लिम-लीग को मिला और हिन्दुओं का काँग्रेस को। उसके बाद समझौते के लिये रास्ता फिर साफ़ हो गया।

गर्मियों में फिर एलान हुआ कि बृटिश कैबिनेट की ओर से प्रतिनिधि मण्डल हिन्दुस्तान की राजनैतिक ज़िच समाप्त करने के लिये आयेगा। पहिले हिन्दुस्तान के विभिन्न राजनैतिक पार्टियों ने जनमत हासिल करते समय विधान निर्मातृ परिषद्, आत्म-निर्णय के अधिकार, केन्द्रीय शासन में विभिन्न जातियों के प्रति-निधित्व आदि के बारे में अपना मत बताया था और उसी के अनुसार वोट माँगे थे। इसलिये अब प्रतिनिधि मण्डल के सामने इन तमाम समस्याओं का हल निकालने का सवाल था। इसलिये, जिस समय दिल्ली में नेताओं का सम्मेलन हुआ तो यही बुनियादी सवाल समाने आये। हफ़्तों बातचीत चलती आई।

कैबिनेट मिशन ने एलान किया कि वह फ़ैसला करके ही वापस जायेगा। उसे हिन्दुस्तान इसीलिये भेजा गया था। काँग्रेस इस बार मुस्लिम लीग को ५ सीट देने पर तैयार हो गई और अपनी ६ सीटों में राष्ट्रीय मुसलमानों को शामिल करने का प्रस्ताव किया। मि० जिन्ना इस पर तैयार नहीं हुये। बहस फिर आगे बढ़ी। फिर हफ़्तों बात-चीत चलती रही। लेकिन आपस में समझौता नहीं हुआ। मिशन बीच में काश्मीर चला गया और कुछ दिनों का अवसर नेताओं को दिया कि वे आपस में समझौता करलें। फिर भी समझौता नहीं हुआ।

इसके बाद मिशन ने एलान किया कि वह अपना निर्णय देगा। जो पार्टी अथवा पार्टियाँ उस निर्णय को स्वीकार करेंगी; उनके सहयोग से अस्थायी केन्द्रीय सरकार बनाई जायेगी। मिशन के एलान के दो हिस्से थे—(१) थोड़े दिन वाले (२) बीच के समय के बाद के लिये। काँग्रेस ने पहिला हिस्सा नामंजूर कर दिया और दूसरे हिस्से को कार्यान्वित करने का एलान किया। लीग ने दोनों हिस्सों को स्वीकार कर लिया था।

इसके बाद कुछ समय और बीता। वाईसराय की कौंसिल के सस्दयों ने इस्तीफ़ा दे दिया और उनके स्थान पर काम चलाऊ आई० सी० यस० के अफ़सर रखे गये। इन लोगों ने बाद में होने वाले परिवर्तनों के लिये सारी तैयारियाँ शुरू कीं; साथ ही, विधान निर्मातृ परिषद के लिये ज़मीन तैयार की।

अस्थाई राष्ट्रीय सरकार

जब लीग ने देखा कि कैबिनेट मिशन के एलान के दोनों हिस्सों के स्वीकार कर लेने के बावजूद भी आई० सी० यस० के अफ़सरों की सरकार बना दी गई और उसे निमन्त्रित नहीं किया तो उसने अपना रुख़ बदल दिया और 'डाइरेक्ट-ऐक्शन' का एलान कर दिया जिसके लिये १६ अगस्त (१९४६) का दिन निश्चित किया।

उधर काँग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक वर्धा में हुई। उसी समय वाईसराय ने पं० जवाहर लाल नेहरू को अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बनाने के लिये आमन्त्रित किया। पं० नेहरू ने यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। दिल्ली जाने के पहिले पं० नेहरू ने मि० जिन्ना

से फिर मुलाक़ात की और उनसे कहा कि अस्थाई राष्ट्रीय सरकार के निर्माण में वह सहायता करें। मि० जिन्ना ने इन्कार कर दिया। इसके बाद २ सितम्बर १९४६ को पं० नेहरू और उनके सहयोगियों ने पद-ग्रहण की शपथ ली और केन्द्र में अस्थाई राष्ट्रीय सरकार क़ायम हो गई।

२ सितम्बर १९४६ को अस्थाई राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई और ७ तारीख को पं० जवाहरलाल नेहरू ने मंत्रि मण्डल की ओर से अपना पहिला राजनैतिक भाषण दिया जिसमें उन्होंने कहा कि भारतीय जनतंत्रवाद किसी पराये देश को अपने अधिकार में नहीं रखना चाहता। वह संसार की जनता के साथ अपनी एकता का इज़हार करता है। वह एशिया के देशों के साथ भाई चारा और समानता का व्यवहार करेगा और उनके दुख-सुख में काम आयेगा। आन्तरिक नीति की चर्चा करते हुये पं० नेहरू ने कहा कि मन्त्रिमण्डल का पहिला काम होगा जनता के खाने कपड़े का इन्तज़ाम करना, सब जातियों और वर्गों में एकता बनाये रखना, अल्पमत वालों के साथ पूरा न्याय करना और सब जातियों तथा वर्गों को मिला कर संयुक्त राष्ट्रीय जीवन का निर्माण करना। इसी आधार पर उन्होंने मुस्लिम लीग से अपील की कि वह अस्थाई राष्ट्रीय सरकार तथा विधान-निर्मातृ परिषद् में पूरा हिस्सा ले जिससे शीघ्र से शीघ्र पूर्ण राष्ट्रीय आज़ादी हासिल करने में कामियाब हो सके।

इस प्रकार पं० जवाहरलाल नेहरू के भाषण के बाद अगस्त आन्दोलन के उत्तर काल का वह वैधानिक आन्दोलन अपनी पूर्णता

तक पहुँच गया जिसकी ओर जेल से छूटते ही हमारे नेता संलग्न थे। मुस्लिम लीग को छोड़ कर भी केन्द्रीय राष्ट्रीय सरकार का निर्माण देश के लिये मंगलकारी हुआ अथवा नहीं यह आगे का इतिहास बतायेगा।

लेकिन अगस्त आन्दोलन के बाद के राजनैतिक गतिरोध को एक ढंग से और भी तोड़ने की कोशिश की गई थी। वह कोशिश आम जनता और किसानों, मज़दूरों तथा विद्यार्थियों की ओर से स्वतन्त्र रूप से हुआ था।

बढ़ती जनता

राष्ट्रीय नेताओं की रिहाई के बाद ही जनता में एक नया जीवन और जोश तथा उत्साह पैदा हुआ। ३ साल की राजनैतिक उदासी और निराशा ख़त्म हो गई। लगा, अब देश की नैया किसी किनारे लग जायेगी। लेकिन शिमला सम्मेलन की असफलता से फिर निराशा फैल गई। लोगों की समझ में यह बात आ गई। कि जब तक काँग्रेस और मुस्लिम लीग का समझौता नहीं हो जाता तब तक देश का वर्तमान अथवा भविष्य सभी अनिश्चित है।

उसी समय आज़ाद हिन्द फ़ौज के अफ्सरों पर कोर्ट मार्शल शुरू हुआ। इस मुक़दमे ने देश को इस किनारे से उस किनारे तक छू लिया। आज़ाद हिन्द फ़ौज के सिपाहियों ने जिस आपसी व्यवहार के द्वारा साम्प्रदायिक समस्या को हलकर लिया वह आदर्श सक्रिय रूप से लोगों के सामने आया। इसका बहुत अच्छा असर हिन्दू-मुस्लिम रिश्ते के ऊपर पड़ा। देश के कोने-कोनेमें लाखों हिन्दू-मुसलमानों के जलूस निकले और सभायें हुईं। इन जलूसों और

का ताँता बँध गया ! कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद और कानपूर के मजदूरों ने अपने प्रदर्शनों से राजनैतिक वातावरण ही बदल दिया। रेलवे, डाक, तार, आदि के कम तनख़ाह पाने वाले मजदूरों ने हफ़्तों-महीनों तक की सफल हड़तालें कीं। इन हड़तालों में पढ़े लिखे मध्यम श्रेणी के बाबू भी शामिल हुये और अखिल भारतीय स्तर पर चलने वाली इन हड़तालों ने शासन की इन शाखाओं का सारा काम बिल्कुल बन्द कर दिया।

विद्यार्थियों ने भी जहाँ कहीं भी अवसर आया आगे बढ़ कर संघर्षों में हिस्सा लिया और अपने भीतर की राजनैतिक चेतना का पर्याप्त प्रमाण दिया।

इसी प्रकार, हिंदुस्तानी रियासतों में बसने वाली प्रजा ने अपने प्रजामण्डलों के द्वारा अपना संगठन बढ़ाया। ग्वालियर, फ़रीदकोट, आमलनेर, काश्मीर आदि में बड़े-बड़े संघर्ष हुये। यद्यपि बड़े-बड़े नेताओं ने समझौते का ही पल्ला पकड़ा, और जन आन्दोलन को पूर्णता तक नहीं पहुँचने दिया, फिर भी यह बात अब निश्चित हो चुकी है कि देशी रियासतों की जनता राजनैतिक संघर्षों और आज़ादी के आन्दोलन से अलग नहीं रह सकती, बल्कि वह आगे बढ़ कर उसमें हिस्सा लेने को प्रस्तुत है। यद्यपि राजे रजबाड़े दिल्ली के राजनैतिक वातावरण से लाभ उठाकर इस बढ़ते दावानल को रोकने की फ़िराक में हैं, फिर भी रियासती जनता की राजनैतिक चेतना और संगठित आन्दोलन इस बात की गारण्टी है कि सामन्त-वादी अवशेष इन रियासती रजवाड़ों के अन्तिम दिन निकट हैं।

लेकिन हमारे राष्ट्र की इस संघर्षालु मनोदशा को कमज़ोर

करने वाली साम्प्रदायिक समस्या अब भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। जिस संयुक्त मोर्चे का निर्माण मिलों-फैक्टरियों में काम करने वाले मजदूरों, खेतों में काम करने वाले किसानों, रियासतों में पिसने वाली प्रजा ने अपने खून से तैयार किया था उसे मुस्लिम-लीग की प्रतिक्रिया वादी नेता-शाही और कांग्रेस नेतृत्व के आपसी ग़ैरज़िम्मेदाराना झगड़े तोड़ फोड़ रहे हैं। कलकत्ते में १६ अगस्त से २० अगस्त तक जो संगठित नरमेध हुआ है, उसने प्रत्येक जिम्मेदार स्वाभिमानी देश भक्त को कुछ सोचने और करने के लिये मजबूर कर दिया है। अब यह समस्या साम्प्रदायिक नहीं है। इसका रूप अब राजनैतिक हो गया है। इस लिये खतरा और बढ़ गया है। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के नाम पर होने वाले ये झगड़े हमारी देश भक्ति पर कलंक ही नहीं हैं, हमारे शासकों द्वारा परिचालित तथा नेताओं द्वारा पोषित वह विषैले साँप हैं जो हमारे स्वस्थ राजनैतिक जीवन को डस रहे हैं। इन समस्याओं का हल राजनैतिक ही होगा। जब तक एक दूसरे को नीचा दिखाने की नीति समाप्त नहीं होती और भरोसा तथा आत्म निभरता के आधार पर आपसी समझौता नहीं होता तब तक राष्ट्र का कल्याण नहीं होगा। वैधानिक तथा अवैधानिक सभी प्रगति रुक जायेगी। इससे हमारे शासकों का ही लाभ होगा।

आज देश के समाने तीन खतरे हैं। (१) देशी राजे-रजवाड़े, पूँजी पति और मुनाफ़ा खोर देश की बदलती वैधानिक अवस्था से लाभ उठा कर अपना काम पूरा करने तथा जनता को अपने शासन-शोषण की चक्की में पीसते रहने का प्रोग्राम दिल्ली की अस्थाई

राष्ट्रीय सरकार के इर्द गिर्द चक्कर काट काट कर बना रहे हैं (२) कांग्रेस-लीग द्वन्द अब राजनैतिक द्वन्द बन कर सारे देश को दो हिस्सों में बाँटे दे रहा है, ऐसे हिस्से जो एक दूसरे को समाप्त कर देना ही अपना मुख्य आदर्श मानते हैं। (३) विभिन्न राजनैतिक पार्टियों में संयुक्त जन आन्दोलन के कारण जो काम चलाऊ एकता आ रही थी वह टूटने सी लगी है। अगर दंगों के कारण जन-आन्दोलनों की प्रगति रुकी तो निश्चय ही देश का राजनैतिक जीवन विश्रृंखलित हो जायेगा। नतीजे में, सभी पार्टियों को एक करने वाली शक्तियाँ भी बिखर जायेंगी। कुछ वैधानिक पचड़ों में फंस कर और कुछ आपसी दंगों-फसादों के कारण कमजोर होकर देश की राजनैतिक शक्तियाँ क्षीण हो जायेंगी, और इससे भला केवल शासकों का होगा।

हमारा राष्ट्र इस समय चौराहे पर खड़ा है। हमेशा की भाँति इस समय भी दो शक्तियाँ काम कर रही हैं—एक समझौतावादी विधान वादी और दूसरी, क्रान्तिकारी-प्रगतिवादी। दोनों में संघर्ष भी चल रहा है। हमेशा की भाँति इस बार भी जब कि विधान वाद के चक्कर में फंसने का पूरा इन्तजाम हो चुका है, देश की क्रान्तिकारी परम्परा के अनुसार संघर्षालु जनता को आज़ादी के मार्ग पर आगे ले चलने की जिम्मेदारी प्रगतिशील शक्तियों, पार्टियों तथा दलों द्वारा आयोजित मजबूत, श्रेणी सजग, पुष्ट तथा संगठित और दृढ़-मत जन-आन्दोलनों पर ही है। अपना यह ऐतिहासिक कर्तव्य वे किस प्रकार पूरा करेंगी यह तो उनकी आपसी एकता,

कर्तव्य शीलता, राजनैतिक सूझ बूझ, आदर्श-प्रियता तथा संगठन के ऊपर निर्भर है।

और, इस बीच, देश की जनता अपने नायकों की ओर आशा भरी आँखों से देख रही है।

—:o:—